चौमासा

वर्ष-33, विशेषांक 104
जुलाई-अक्टूबर, 2017

प्रधान सम्पादक
वन्दना पाण्डेय

सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल का प्रकाशन

ISSN 2249-5479
© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

सम्पर्क
आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मध्यप्रदेश जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स
भोपाल-462002
फोन/ फैक्स : 0755-2661948, 2661640
E-mail : mplokkala@rediffmail.com,
mptribalmuseum13@gmail.com
web. : www.mptribalmuseum.com

मूल्य
एक प्रति बीस रूपये
वार्षिक सदस्यता - पचास रूपये
आजीवन सदस्यता - पन्द्रह सौ रूपये
चौमासा का वार्षिक शुल्क अनुषंग पुस्तिका के साथ सौ रूपये

प्रचार/प्रसार
प्रवीण गावण्डे - (मो. 9827351093)

शब्दांकन
आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्

मुद्रण
मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल

- चौमासा में प्रकाशित सामग्री लेखकों के अपने कार्य और विचार हैं। आवश्यक नहीं कि अकादमी उससे सहमत हो।
- पत्रिका और प्रकाशन से संबंधित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल रहेगा।

निदेशक, आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्- भोपाल मुद्रक, प्रकाशक द्वारा मध्यप्रदेश माध्यम, भोपाल से मुद्रित कराकर आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, जनजातीय संग्रहालय, श्यामला हिल्स- भोपाल से प्रकाशित।

सम्पादक-अशोक मिश्र

जननायक महाराजा विक्रमादित्य एक शासक के साथ ही अत्यंत उदार चरित्र के धनी थे, जिसके कारण लोक में उनका बहुत समादर रहा है। उनके व्यक्तित्व और गुणों को मिथकीय रूप प्रदान करने का काम सदियों से लोकजनों ने किया है। एक शासक के दृष्टि की समग्रता का अनुभव उनके साथ सम्बद्ध कथाओं /मिथकों और घटनाओं /कल्पनाओं से सहज किया जा सकता है।

चौमासा के पूर्व कई अंकों में छुटपुट आलेख विक्रमादित्य केन्द्रित प्रकाशित हुए है, पर उसके लोक विस्तार को देखकर यह महसूस हुआ कि एक विशेषांक ही इस पर केन्द्रित प्रकाशित किया जाय। इस अंक में प्रकाशित आलेखों के लेखकों के हम हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने 'चौमासा' के अनुरोध को स्वीकार कर हमारे लिए आलेख भेजे । यह विशेषांक अब आपके पास आपकी प्रतिक्रिया के लिए है।

सभी लेखकों के प्रति आभार। आशा है कि लोक में रूचि रखने वाले पाठकों /अध्येताओं को इसमें संकलित सामग्री उपयोगी लगेगी।

- अशोक मिश्र
सम्पादक

अनुक्रम

कथा वाङ्मय और विक्रमादित्य / विजय वर्मा / 7
मुकुट मणि महाराजा विक्रमादित्य / डॉ. पूरन सहगल / 19
कठपुतली और सिंहासन बत्तीसी / डॉ. महेन्द्र भानावत / 52
सुन्दरसी के मानस में राजा विक्रमादित्य / मायापति मिश्र / 59
विक्रमादे री वीर कथा - वारता /चम्पादास कामड़ 'फव्वारा' / 64
लोकतंत्रवादी वीर विक्रमादित्य / सर्वोत्तम त्रिवेदी 'लघु' / 70
मालवी कथाओं में विक्रमादित्य / निर्मला राजपुरोहित / 74
राजा विक्रमादित्य / डॉ. मीना साकल्ले / 93
बुन्देली में विक्रमादित्य सम्बन्धी कथाएँ / हरिविष्णु अवस्थी / 107
सिंहासन बत्तीसी और विक्रमादित्य / शिवप्रसाद 'कमल' / 120
महाराजा विक्रमादित्य / जीवनसिंह ठाकुर /123
राजा विक्रमादित्य / डॉ. प्रभा पहारिया /126
विक्रमादित्य के नव रत्न /सुधा तेलंग /130

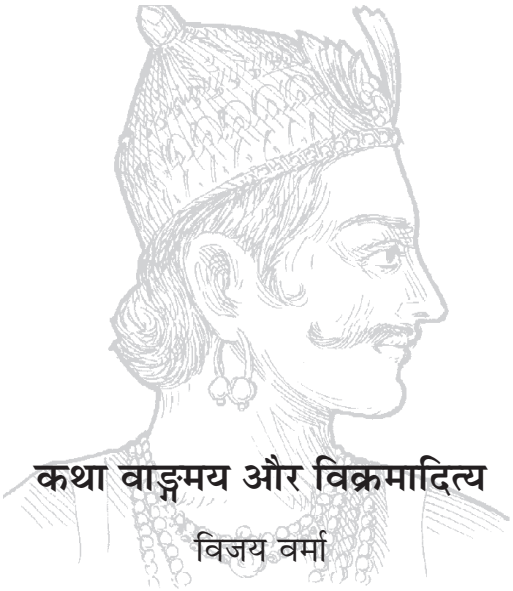

कथा वाङ्मय और विक्रमादित्य

विजय वर्मा

राजा विक्रमादित्य भारतीय कथा-लोक के शलाकापुरुषों में से एक हैं, हालांकि ऐतिहासिक विक्रमादित्य की पहचान कठिन है, विक्रमादित्य एक उपाधि थी, जिसे अनेक प्राचीन भारतीय राजाओं ने धारण किया। शायद विक्रमादित्य के नाम से प्रचलित किंवदंतियाँ प्रारम्भ से वह उपाधि धारण करने वाले कई राजाओं से संबद्ध थीं और बाद में एक अर्ध पौराणिक (सेमी मिथिकल) पात्र से जोड़ दी गई। जो नवरत्न विक्रमादित्य के साथ संयुक्त किये जाते हैं, वे निश्चय ही किसी एक शासक के शासनकाल में नहीं हुए। विक्रमादित्य उपाधि अनेक शक्तिशाली सम्राटों ने धारण की यथा गुप्तवंश के चंद्रगुप्त द्वितीय (380-414 ई.) उसके पुत्र स्कन्दगुप्त (455-67 ई.) और बादामी तथा बाद में कल्याणी के अनेक चालुक्य राजाओं यथा विक्रमादित्य प्रथम (655-80 ई.) विक्रमादित्य द्वितीय (733-46 ई.), विक्रमादित्य पंचम (1008-14 ई.) और विक्रमादित्य षष्ठ (1076-1127) जो विक्रमांक के नाम से भी विख्यात है और जिसका चरित्र कवि विल्हण ने विक्रमांक -चरित नाम से लिखा था ।

एक मत के अनुसार इन राजाओं में तृतीय गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त द्वितीय जिसने शक क्षत्रपों को परास्त किया। उज्जैन जिसकी राजधानी थी और जिसका शासनकाल बौद्धिक उपलब्धियों तथा चतुर्दिक समृद्धि के कारण प्रसिद्ध है और जिसके काल में सम्भवत: कालिदास भी हुआ था, उसी को मूल राजा विक्रमादित्य मानना अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

(भारतीय इतिहास कोश, सच्चिदानन्द भट्टाचार्य, हिन्दी समिति-लखनऊ, 1976, पृ.148, 431)

पारम्परिक मत के अनुसार ईसा पूर्व 58-57 में प्रारम्भ विक्रम संवत भी राजा विक्रमादित्य का चलाया माना जाता है। इसके विपरीत कहा जाता है कि इतिहास में ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पश्चिमी भारत में शासन करने वाले ऐसे किसी पराक्रमी राजा का उल्लेख नहीं प्राप्त होता, जिसने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की हो। इस मत के अनुसार तथाकथित विक्रमी

संवत की स्थापना एक सीथियर-पार्थियन राजा ने की थी लेकिन बाद में, शायद ईसा की आठवीं शताब्दी में शकारि विक्रमादित्य का आख्यान रूढ़ होने पर उसे विक्रमादित्य के साथ संयुक्त कर दिया गया। इन विपरीत धारणाओं के बीच मध्यम मार्ग अपनाने की सलाह देते हुए प्रो. आर.सी. मजूमदार की राय है कि जब तक स्थिति और स्पष्ट न हो जाय, तब तक कोई गताग्रही (डौगमैटिक) दृष्टिकोण न अपनाया जाए और खास तौर पर, जैन साहित्य में उपलब्ध कुछ साक्ष्यों के मद्देनजर ईसा पूर्व पहली शताब्दी में किसी विक्रमादित्य की उपस्थिति सम्बन्धी पारम्परिक धारणा के लिए भी कुछ गुंजाइश रखी जाए। (दृष्टव्य: द् हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ द् इंडियन पीपल, श्रृँखला के अंतर्गत प्रकाशित भारतीय विद्या भवन, मुंबई का प्रकाशन, द् एज ऑफ इपीरियल यूनिटी, 1953, पृ. 125, 127, 144, 154-8)

बेताल-पचीसी

भारतीय कथा वाङ्मय के महानायकों में से एक इस विक्रमादित्य के बारे में एक ओर तो कुछ कथा श्रृँखलाएँ जैसे बेताल पचीसी और सिंहासन बत्तीसी मिलती हैं और दूसरी ओर स्वतंत्र कथाएँ। शुरूआत बेताल-पचीसी से की जा सकती है।

बेताल-पचीसी (बेताल पंचविशतिका) का समावेश कथा सरित्सागर के शशांकवती नामक बारहवें लम्बक में हुआ है। हालांकि शायद वह मूल बृहत्कथा, जिसका कथा सरित्सागर सार-मात्र है, का भाग नहीं थी। 'कथासरित्सागर' की रचना काश्मीर में पं. सोमदेव ने ईसवीं सन् 1063 से 1081 के बीच की थी। काश्मीर के ही क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथा' पर ही आधारित 'बृहत्कथा' मंजरी (1029-64 ई.) में भी बेताल पचीसी का समावेश हुआ। इन दो के अलावा, बेताल-पचीसी के और भी अनेक संस्करण मिलते हैं, जिसमें से दो, क्रमश: शिवदास व जम्मलदत्त कृत प्रमुख हैं। ये दोनों शायद 12 वीं शती ईसवीं के हैं। शिवदास का संस्करण मिश्रित गद्य व पद्य में है, जबकि जम्मलदत्त वाला केवल गद्य में है, वास्तव में देश-विदेश में इस रचना का व्यापक प्रचार रहा है और इसके अनेक रूपांतर हुए हैं। प्रतिलिपिकार भी अपनी ओर से क्षेपक जोड़ते रहते हैं। (विस्तार के लिए उदाहरणार्थ, राजस्थान प्राच्यविद्या, प्रतिष्ठान, जोधपुर राजस्थान, द्वारा प्रकाशित व पुरुषोत्तमलाल मेनारिया द्वारा सम्पादित 'बेताल-पचीसी' ग्रंथ की प्रस्तावना देखी जा सकती है। इस ग्रंथ का आधार 18 वीं शती में बीकानेर के देईदान कृत राजस्थानी रूपांतर हैं।)

कथासार इस प्रकार है- आज के महाराष्ट्र के गोदावरी नदी के तट पर स्थित पैठण (प्रतिष्ठान) नामक नगर पर त्रिविक्रमसेन नामी राजा राज्य करता था। यहाँ राजा का नाम त्रिविक्रम है, लेकिन बाद के संस्करणों जैसे- उदाहरणार्थ ऊपर उल्लेखित देईदान कृत राजस्थानी रूपांतर में राजा का नाम विक्रमादित्य दिया हुआ है, यह भी उदाहरण है। पौराणिक विक्रमादित्य के आभामण्डल में विभिन्न राजपुरुषों के सिमट आने का अस्तु, हम कथासरित्सागर में दी गई इस कथा श्रृँखला को विक्रमादित्य से संबद्ध मानकर और त्रिविक्रम में विक्रम की भावना रखते हुए चलेंगे।

तो त्रिविक्रम के राज्य में शांतिशील नाम का एक कुटिल भिक्षु विद्याधरों के इन्द्रपद को पाने के उद्देश्य से एक भयानक श्मशान में एक अनुष्ठान कर रहा है, जिसमें वह एक बेताल श्रेष्ठ के लिए उस नृप-श्रेष्ठ को बलि चढ़ाना चाहता है। भिक्षु राजा को प्रसन्न करके उसे अपना सहयोगी बनने और श्ममान से कुछ दूर एक शीशम के पेड़ पर लटके उस शव को, जिसमें बेताल वास किया हुआ था, अनुष्ठान स्थल तक ले आने के लिए राजी कर लेता है। राजा बेताल द्वारा अतिक्रमित उस शव को पेड़ से उतार कर और कंधे पर लादकर चलने के लिए तत्पर होता है। लेकिन वह बेताल श्रेष्ठ, जिसे उस भिक्षु का महत्त्व ज्ञात है, राजा को उस उद्यम से डिगाना चाहता है। वह राजा को एक कथा सुनाता है, जिसके अंत में एक प्रश्न एक समस्या आन उपस्थित होती है और बेताल का शाप है कि यदि राजा जानते हुए भी उस प्रश्न का उत्तर- उस समस्या का निदान नहीं बतायेगा, तो उसके सिर के टुकड़े हो जाएंगे, लेकिन दूसरी ओर शर्त है कि यदि राजा बेताल को ले जाते हुए कुछ भी बोला तो बेताल, शव समेत, तत्क्षण वापस जाकर उस पेड़ पर लटक जाएगा। (इससे कहावत बनी फिर बेतालवा डाल पर) ऐसा तेइस बार होता है, लेकिन पराक्रमी, परोपकारी अडिग और अमित धैर्यधारी वह राजा उस कार्य से विरत नहीं होता, जिसे करने की उसने ठान ली है, चौबीसवीं कथा द्वारा

समुपस्थित समस्या ऐसी है कि उसका कोई समाधान नहीं है, इस पर राजा चुपचाप गंतव्य की ओर बढ़ता जाता है। इस बीच वह योगेश्वर बेताल राजा के गुणों पर रीझकर उसका मुरीद बन चुका है, वह दुरात्मा भिक्षु को उपायपूर्वक वंचित करना और राजा को उपकृत करना तय करके राजा को बता देता है कि भिक्षु की योजना उस शव में बेताल का आह्वान करके राजा को बेताल के लिए बलि चढ़ाने की है। इसके बाद इस संकट से निबटने की विधि राजा को बताकर वह बेताल उस शव को छोड़कर चला जाता है। अंतिम पचीसवीं कथा में राजा के शवसहित श्मशान में पहुँचने पर भिक्षु शांतिशील उसका अभिनंदन करते हुए अनुष्ठान की विधियाँ सम्पन्न करता है और राजा से, बेताल द्वारा पुन: आवेष्टित उस मृत शरीर को, भूमि में पड़कर साष्टांग प्रणाम करने के लिए कहता है। इस पर राजा, बेताल के बताये अनुसार भिक्षु को वैसा प्रणाम करके बताने के लिए कहता है, क्योंकि उसे (राजा को) वह करना नहीं आता। इस पर वह भिक्षु ज्योंही भूमि पर पड़ा, राजा ने तलवार के वार से उसका मस्तक काट डाला। संतुष्ट होकर बेताल बोला- राजन् यह भिक्षु विद्याधरों के जिस इन्द्र पद की कामना करता था, वह अब भूमि साम्राज्य का भोग कर लेने के बाद, तुम्हें प्राप्त होगा। त्रिविक्रम को विक्रम से संयुक्त करते हुए कथावली के अंत में भगवान शिव स्वयं प्रकट होकर राजा से कहते हैं- 'म्लेच्छ रूप से अवतीर्ण असुरों को शांत करने के लिए, पहले मैंने अपने अंश से विक्रमादित्य के रूप में तुम्हें सिरजा था और अब फिर दुर्वजनों के दमन के लिए, मैंने ही त्रिविक्रम सेन नामक राजरत्न के रूप में, तुम्हें सिरजा है।

इस प्रकार जब लोक में विक्रमादित्य की महिमा का प्रसार हुआ तो उत्तर-विक्रमादित्य भी विक्रमादित्य बना लिए गए।

यह कथावली 11वीं शताब्दी ईसवी के भारत के बारे में हमें बहुत कुछ बताती है। यक्ष, बेताल, डाकिनी, राक्षस इत्यादि में विश्वास सामान्य था। स्त्री की स्थिति, बाद के काल के मुकाबले, कुछ बेहतर थी, लेकिन स्त्रियों को समाज हेय मानकर ही चलता था। तीसरी कथा के अंत में बेताल राजा से पूछता है- स्त्रियाँ निन्दित होती हैं या पुरुष? इस पर राजा का उत्तर है- योगेश्वर, निन्दित तो स्त्रियाँ ही होती हैं, लेकिन स्त्रियाँ प्राय: सभी जगह और सदा ही वैसी होती हैं। कथा संख्या 14 में टिप्पणी है, स्त्री का चित्त बड़ा विचित्र होता है। यौन सम्बन्धों में, बाद के मुकाबले ज्यादा लचीलापन था। और इन कथाओं में कामातुरता के प्रसंग आम हैं। गांधर्व विवाह के 'शार्ट-कट' को अपनाया जाना बहुत सहज था। वर्ण व्यवस्था काफी कठोर थी। नवीं कथा के अंत में राजा व्यवस्था देता है कि क्षत्रिय की कन्या शूद्र जुलाई, पशु-पक्षियों की भाषा का निरूपयोगी ज्ञान रखने वाले वैश्य और अपना काम छोड़कर वीरता का अभिमान रखने वाले ब्राह्मण को नहीं ब्याही जा सकती, उसका विवाह तो क्षत्रिय से ही करना उचित है। भाग्यवाद में विश्वास बद्धमूल था। कर्मों के फल को विधाता भी नहीं टाल सकता। अंत: दैवयोग से जिसके लिए जहाँ जो और जैसा भवितव्य है, उसे वह नहीं और उसी प्रकार प्राप्त करने लिए विवश हैं (बारहवीं कथा) 'सब कुछ विधाता ही करता है, मनुष्य के किये तो यहाँ कभी कुछ भी नहीं हो सकता....,' यदि विधाता वाम होता है तो यत्नपूर्वक सीखे हुए गुण भी सुखकर नहीं होते..। (बाइसवीं कथा)। सम्भोग सुख के कई बेहिचक प्रसंग है- स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को दबा ढांककर रखने का प्रयत्न नहीं है। कहा गया है कि कामदेव का शासन कितना अलंघनीय होता है। मानव-बलि, आत्म-बलि परकाया प्रवेश, आकाशवाणी, भगवान शिव के प्रकट होने आदि के अनेक प्रसंग हैं।

प्रो. ए.बी. कीथ इंगित करते हैं कि जैसा हम कल्हण की (राजतरंगिणी) से जानते हैं। काश्मीर में उस समय बौद्ध धर्म के एक विकृत या भ्रष्ट संस्करण का काफी दबदबा था और 'बेताल पचीसी' में हमें बौद्ध धर्म के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। ('अ हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर', मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली 1996 पृ.285) इसके प्रकाश में यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि 'बेताल पचीसी' का अभिचारी भिक्षु कोई बौद्ध भिक्षु था। लेकिन जहाँ तक सवाल देवताओं का है, इस कथा श्रृँखला में सर्वोपरि स्थान भगवान शिव का है।

सिंहासन बत्तीसी

अब थोड़ी चर्चा विक्रम का यशगान करती एक और कथावली 'सिंहासन बत्तीसी' की।

संस्कृत साहित्य के लोकप्रचलित आख्यानकों में सिंहासन 'द्वात्रिशिका', 'द्वात्रिंशपुत्तलिका', विक्रम चरितं आदि नामों से प्रसिद्ध यह रचना गद्य और पद्य दोनों रूपों में पाई जाती है। हिन्दी में भी इसके दोनों रूप मिलते हैं। (हिन्दी साहित्य कोश भाग-2 ज्ञान मण्डल, वाराणसी, 1986 पृ. 626)

उज्जैन के प्रतापी राजा भोज के शासनकाल में एक दिन एक विचित्र घटना घटी, एक खेत में एक चौकी थी, जिस पर बैठते ही उस खेत के मालिक किसान का लड़का ऐसे व्यवहार करने लगा, मानो वह भोज से बड़ा कोई चक्रवर्ती सम्राट हो। खोद कर देखा गया तो वहाँ बत्तीस पुतलियों वाला एक विलक्षण सिंहासन निकला। स्वाभाविक था कि राजा भोज की इच्छा उस सिंहासन पर बैठने की हुई, लेकिन जैसे ही वह इस इरादे से सिंहासन की ओर बढ़ा, सिंहासन की पहली पुतली बोल पड़ी और उसने भोज को यह कहते हुए कि यह सिंहासन महाप्रतापी विक्रमादित्य का है। राजा को विक्रम के यश की एक कथा सुनाई और कहा कि यदि वह (राजा भोज) अपने को विक्रम जैसा ही यशस्वी और शूरवीर समझता है तो ही उस सिंहासन पर बैठने की चेष्टा करे, वरना यह इरादा छोड़ दे। भोज के हर दिन के ऐसे प्रयास और हर दिन, क्रम से सिंहासन की एक पुतली द्वारा उसे बरजने और लौट जाने पर मजबूर कर देने का क्रम ही इस कथा श्रृँखला की कथावस्तु बनाते हैं।

पहली कथा में बताया गया है कि विक्रम ने भगवान शिव का दिया वह दिव्य सिंहासन कैसे प्राप्त किया था। दूसरी कथा में भर्तृहरि और अमरफल वाला प्रसिद्ध प्रसंग देते हुए विक्रमादित्य द्वारा भर्तृहरि के राज्य को निष्कंटक बनाने और अपने लिए दो बेताल -दास प्राप्त करने का विवरण है, पाँचवी में एक स्त्री द्वीप के प्रसंग के परिप्रेक्ष्य में सवाल उठाया गया है कि भाग्य बड़ा कि पुरुषार्थ और व्यवस्था दी गई, भाग्य और पुरुषार्थ एक ही रथ के दो पहिए हैं। इन दानों के साथ के बिना सफलता का रथ नहीं चल सकता। छठी में सूर्य द्वारा अपने कुंडल विक्रम को देने और विक्रम द्वारा उन्हें दान में दे देने का प्रसंग है। सातवीं से चौदहवीं कथाओं में भी विक्रम की वीरता, दानशीलता और परोपकार के प्रसंग हैं।

पंद्रहवीं कथा में विक्रम एक बोधकथा को सुनकर अपनी भूल सुधारता है, (ऐसे ही एक और अपवाद के रूप में बारहवीं कथा में विक्रम को अपनी दानवीरता का घमण्ड होता है और दयासेन नामी राजा की दानशीलता देखकर इस विकार का शमन करता है।) अठारहवीं कथा का सम्बन्ध भी विक्रम द्वारा अपनी गलती मानकर उसको सुधारने से है।

बाईसवीं कथा विक्रम, सुरताल के ज्ञाता ब्राह्मण माधवानल का उसकी प्रेयसी कामकन्दला से पुनर्मिलन कराने सम्बन्धी प्रसिद्ध मध्ययुगीन आख्यान से सम्बन्ध रखती है। तेईसवीं में समस्या है कि मनुष्य बुद्धि अपने कर्म से पाते हैं या उनके माता-पिता सिखाते हैं। चौबीसवीं में लोक में प्रचलित स्त्री के चरित्र सम्बन्धी धारणाओं का निदर्शन है, छब्बीसवीं में भगवान शिव विक्रम को एक फूल देते हैं और कहते हैं कि जब यह फूल मुरझा जाएगा, तब तू जान लेना कि तेरी मृत्यु में छः माह घट रहे हैं। तीसवीं कथा में वह फूल मुरझा जाता है और अपनी मृत्यु को सन्निकट जान राजा ने अपना सर्वस्व दान कर दिया। इकतीसवीं कथा में विक्रम की मृत्यु होने के बाद उसका उत्तराधिकारी विक्रम की इच्छा के अनुसार उज्जैन तथा धार छोड़कर शासन करने अम्बावती चला जाता है और विक्रम के सिंहासन को धरती में गड़वा देता है। अंतिम बत्तीसवीं कथा में अंततः भोज मान जाता है कि वो इस सिंहासन पर बैठने योग्य नहीं है और उसे पुनः धरती में गड़वा कर वहाँ इतना ऊँचा टीला बनवा देता है कि फिर कोई उसपर चढ़ न पाए।

इस कथा समुच्चय से भी नारी के बारे में कोई अच्छी राय नहीं बनती। विक्रम को कई विवाह करते हुए दिखाया गया है। अलौकिक घटनाओं की भरमार है, विक्रम पाताल-नागलोक जाता है तो इंद्रलोक भी और सूर्य से उपहार में कुण्डल प्राप्त करता है। तांत्रिक, अघोरी, राक्षस, डायन सब मौजूद हैं। इधर उड़न खटोला है तो उधर धनदायी शंख और भोजन देने वाली थैली। आत्मबलि और पुनर्जीवित कर दिए जाने के कई प्रसंग हैं, सती होने को आदर की मृत्यु कहा गया है। यहाँ भी देवताओं में सर्वाधिक माहात्म्य भगवान शिव का है।

प्रो. कीथ 'सिंहासन बत्तीसी' को बेताल पचीसी के बाद की रचना बताते हैं। हालांकि कोई निश्चित तिथि नहीं देते, फिर भी इतना लगभग तय बताते हैं कि वह धार के राजा भोज

के लिए या उनके अधीन नहीं लिखी गई थी। ('अ' हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ.292)

प्रश्न उठ सकता है 'बेताल पचीसी' और 'सिंहासन बत्तीसी' की कथाएँ शास्त्र के पाले में रखी जानी चाहिए या लोक के? स्पष्ट ही इन कथाओं की संकल्पना और संरचना मूल रूप से शास्त्रीय है और वे लिखी भी संस्कृत में गई हैं। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि उनमें बहुत से लौकिक विश्वासों और कथा-सूत्रों का संश्लेष है और यह तथ्य एक बड़ी हद तक इस साहित्य को लोक और शास्त्र के बीच की संधिरेखा का साहित्य बनाता है।

दूसरा प्रश्न क्या इन कथा समुच्चयों से ऐतिहासिक विक्रमादित्य के बारे में कुछ जानकारी मिलती है? इसका स्पष्ट उत्तर है नहीं। ये कथाएँ किसी भी प्रतापी, प्रजावत्सल, दृढ़ प्रतिज्ञ राजा-नायक के साथ जोड़ी जा सकती हैं। किसी विशेष विक्रमादित्य नामी राजा या विरूद धारण करने वाले किसी राजा का परिचय वे नहीं देती। यहाँ भी भारतीय मनीषा की इतिहास सम्बन्धी उदासीनता का परिचय हमें मिलता है। 'सिंहासन बत्तीसी में इतिहास सम्बन्धी एक सूत्र हमें मिलता है, दूसरी कथा में विक्रमादित्य को भर्तृहरि का समकालीन और मित्र या भाई बताया गया है। भर्तृहरि का काल ईसा की सातवीं शताब्दी बताया जाता है, लेकिन उन आख्यानों से जो भर्तृहरि को प्रसिद्ध विक्रमादित्य का भाई बताती हैं। इतिहास और कालक्रम के पक्ष में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।' (अ हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ. 178)

विक्रमादित्य के पराक्रमों का विवरण देने वाले कुछ और ग्रंथों यथा 'विक्रमाचरित्रं', 'शालिवाहन कथा', माधवानल-कथा', विक्रमोदय' तथा 'पचडंऽछत्रप्रबन्ध' का उल्लेख भी प्रो. कीथ ने किया है (पृ.292), लेकिन उनके विवरण में हम यहाँ नहीं जा पायेंगे। हाँ, यहाँ विक्रमादित्य का विरूद धारण करने वाले गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय के दरबार के नवरत्नों की स्वयं में बाद की बनाई हुई और अविश्वसनीय, सूची दी जा सकती है-धन्वंतरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बेताल भट्ट, घटकर्पर, कालिदास, वाराहमिहिर तथा वररूचि।

दो कथा समुच्चयों की बात हमने की। अब बात कुछ फुटकर लोक कथाओं की।

लोक कथाएँ

स्व. गोविन्द अग्रवाल द्वारा तैयार किये गए राजस्थानी लोक कथा-कोश (गीता प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005) भाग दो में विक्रमादित्य से जुड़ी चार कथाएँ हमें मिलती हैं। पहली 'राजा तो राम हैं' में विक्रमादित्य एक योगी से लगलग घोटा और झर-झर कथा प्राप्त कर एक दानी राजा को उपकृत करता और एक मृत ब्राह्मणी को पुनर्जीवित करता है। दूसरी 'सुग्गे' को मारकर आततायी राक्षस का अंत करने सम्बन्धी सामान्य कथा है। शीर्षक है 'राजा वीर विक्रमादित्य', तीसरी 'राजा वीर विक्रमादित्य और खापरिया चोर' विक्रमादित्य से ज्यादा खापरिये की यश गाथा है। इसमें 'बेताल पचीसी' की उस कथा का जिसमें प्रस्तुत समस्या का कोई उत्तर नहीं है, का भी उपयोग कर लिया गया है। चौथी 'राजा वीर विक्रमादित्य और चौबोली' राजस्थान की मशहूर लोककथा है। उसके महत्त्व को देखते हुए यहाँ हम उसे लोक संस्कृति शोध संस्थान, नगर श्री चरू राजस्थान के प्रति सहित, उसकी सम्पूर्णता में उद्धृत कर रहे हैं-

राजा विक्रमादित्य के पास एक दिन शनिदेव ने आकर कहा कि राजन्! मैं तुम्हारे पास सात वर्ष के लिए आया हूँ। चाहे तुम सात वर्षों के लिए अपनी प्रजा पर कष्ट ले लो, चाहे तुम रानी सहित सात वर्ष का 'देसूंटा' (देश निकाला) ले लो। राजा ने रानी से सलाह की और प्रजा को कष्ट न देकर वे दोनों साधारण वेश में अपने राज्य से बाहर चले गये।

चलते-चलते वे दोनों एक दूसरे राजा के नगर में पहुँचे। वह राजा हमेशा सदावर्त बाँटा करता था। विक्रमादित्य ने राजा से कहा कि मैं सदावर्त लेने नहीं आया हूँ, नौकरी चाहता हूँ। राजा ने विक्रमादित्य को अपने महल की ड्यौढ़ी पर पहरेदार नियुक्त कर दिया। राजा ने पहरेदार को सख्त हिदायत कर दी कि मेरी अनुपस्थिति में किसी 'मर्द' को महल की ड्यौढ़ी के अन्दर नहीं घुसने देना। एक बार राजा शिकार खेलने गया। रानी के महल के नीचे से एक इत्र बेचने वाला बनजारा गुजरा। बनजारे के पास इतना बढ़िया इत्र था कि उसकी सुगन्ध से सारा वातावरण महक उठा। रानी बनजारे और उसके इत्र पर मोहित हो गई। उसने दासी को भेजकर बनजारे को बुलवाया, लेकिन पहरेदार ने बनजारे को महल में नहीं जाने दिया। दासी

ने रानी से जाकर कहा। रानी कामान्ध हो रही थी, उसने पहरेदार को बहुत डराया-धमकाया, लेकिन वह टस से मस नहीं हुआ। जब रानी वहाँ से नहीं टली तो पहरेदार ने बनजारे को बेंत लगाकर बाहर निकाल दिया। फिर उसने दासी और रानी को भी दो-दो चार-चार बेंत लगा दिये। रानी क्रुद्ध नागिन की तरह फुफकार उठी। रानी ने अपना सारा श्रृँगार उतार फेंका और मैले वस्त्र पहनकर महल में लेट गई। राजा आया तो उसने शिकायत की, ऐसा भी निगोड़ा क्या पहरेदार रखा है जो मेरी इज्जत लूटने के लिए उतारू हो गया। राजा ने रानी को धीरज दिया और कहा कि सबेरा होते ही उस नालायक को मरवा डालूँगा। उस राजा के पास चार 'वीर' थे, जिनकी सहायता से वह जब चाहता इच्छानुसार वेश बना लेता था। राजा साँप बनकर विक्रमादित्य के डेरे पर पहुँचा और विक्रमादित्य के जूते में छिपकर बैठ गया। उधर विक्रमादित्य की स्त्री ने अपने पति से उदासी का कारण पूछा तो विक्रमादित्य ने सारी घटना कह सुनाई और बोला कि राजा तो रानी की ही बात मानेगा और मुझे अवश्य प्राण दण्ड देगा। रानी बोली कि तुम भी राजा विक्रमादित्य हो, तुमने भी तो बहुत फैसले किये हैं। तुमने तो राजा की इज्जत बचाई है, यदि यहाँ का राजा मूर्ख तथा अन्यायी नहीं होगा तो तुम्हें प्राण-दण्ड के बजाय पुरस्कार देगा। राजा साँप बना हुआ सारी बातें सुन रहा था। उसने जान लिया कि यह राजा विक्रमादित्य है और इसने मेरी इज्जत बचाई है।

दूसरे दिन उसने पहरेदार को दरबार में बुलाया। पहरेदार डर रहा था, लेकिन राजा ने उसे धैर्य बंधाया। फिर उसने दरबारियों से पूछा- कि यदि कोई आदमी किसी की इज्जत बचाये तो उसे क्या देना चाहिए? आज इस पहरेदार ने मेरी इज्जत बचाई है, अत: इसे क्या पुरस्कार देना चाहिए?

किसी ने कहा कि इसे दो गाँव देने चाहिए, किसी ने कहा कि इसे चार गाँव देने चाहिए। राजा ने सोचा कि विक्रमादित्य मुझ से बड़ा राजा है और इसके पास मुझसे अधिक गाँव हैं, तब भला इसे दो चार गाँव क्या दिये जाएँ। अंत में सोच-विचार कर उसने अपनी बेटी का विवाह राजा विक्रमादित्य से करने की घोषणा कर दी।

विवाह हो गया। कुछ दिन बाद विक्रमादित्य ने सोचा कि मैं देश निकाला भोगने के लिए निकला हूँ, लेकिन यहाँ तो अपने घर से भी अधिक आनंद में हूँ। अत: यहाँ से अन्यत्र चलना चाहिए। उसने राजा से कहा कि मैं अब दूसरी जगह जाऊँगा। राजा ने कहा कि आपको जो वस्तु चाहिए, वह मुझसे माँग लें। विक्रमादित्य ने कहा कि कल मागूँगा। विक्रमादित्य ने नई रानी से यह बात कही तो उसने कहा कि मेरे पिता के पास चार 'वीर' हैं, तुम वे ही माँग लेना लेकिन पहले उसे वचनबद्ध कर लेना, नहीं तो वह किसी हालत में अपने 'वीर' नहीं देगा। विक्रमादित्य ने वैसा ही किया। दूसरे दिन जब राजा ने विक्रमादित्य से माँगने के लिए कहा तो विक्रमादित्य ने राजा से 'बाचा' ले लिया। बाचा लेने के बाद विक्रमादित्य ने राजा से कहा- कि अपने चारों 'वीर' मुझे दे दीजिए। विक्रमादित्य की बात सुनकर राजा भौंचक्का रह गया। उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि विक्रमादित्य को उसके 'वीरों' का पता भी है। फिर उसने सोचा कि हो न हो उसकी बेटी ने ही यह भेद विक्रमादित्य को बतलाया है। उसने विक्रमादित्य से कहा- कि मैं तुम्हें वचन दे चुका हूँ, इसलिए 'वीर' तुम्हे दूँगा, लेकिन पहले 'वीरों' से पूछ लेता हूँ कि वे तुम्हारे पास जाना भी चाहते हैं या नहीं। फिर उसने चारों 'वीरों' को बुलाकर पूछा। 'वीरों' ने कहा कि हम एक शर्त पर इसके साथ जाने को तैयार हैं कि राजा के पहले हमारा नाम आये। अब तक यह राजा विक्रमादित्य है, आज से वीर विक्रमादित्य कहलाये। विक्रमादित्य ने 'वीरों' की शर्त स्वीकार कर ली और राजा ने चारों 'वीर' उसे दे दिये।

राजा अपनी दोनों रानियों और चारों 'वीरों' को लेकर वहाँ से चल पड़ा। चलते-चलते वह चौबोली के नगर में आया। राजा कुएँ पर बैठा था, इतने में चौबोली की दासी कुएँ से पानी लेने के लिए आई। उसने कुएँ से कहा कि कुएँ! चौबोली के नाम उछल जा। कुएँ का पानी उमड़ कर बाहर आ गया, दासी ने पानी भर लिया और चली गई। राजा इस बात को देखकर चकित रह गया। उसने अपने 'वीरों' से पूछा तो 'वीरों' ने कहा कि गाँव की राजकुमारी का नाम चौबाली है, वह बड़ी चतुर चालाक है, इसका प्रण है कि जो उसे रात भर में चार बार बुलवा देगा, उसी से विवाह करेगी। न बुलवा सकने पर वह उस आदमी को कैद में डलवा देती है। उसके नाम से कुएँ का पानी भी ऊपर उठ जाता है। राजा ने 'वीरों' से कहा कि मैं

चौबोली से अवश्य शादी करूँगा। 'वीरों' ने कहा कि यह काम इतना आसान नहीं है, इसमें धैर्य और युक्ति से काम लेना पड़ेगा।

दूसरे दिन चौबोली की दासी पानी भरने के लिए आई तो 'वीरों' ने विक्रमादित्य से कहा कि हम कुएँ की सतह पर लेट जाएँगे और पानी नहीं उछलने देंगे। तुम दासी से कह देना कि अब तक कुआँ चौबोली के नाम से उछलता था, लेकिन अब से यह 'वीर' विक्रमादित्य के नाम से उछलेगा। दासी ने कई बार कुएँ से कहा लेकिन कुआँ नहीं उछला, तब विक्रमादित्य ने कुएँ से कि कुएँ विक्रमादित्य के नाम से उछलो। तुरन्त पानी ऊपर आ गया। दासी आश्चर्यचकित होकर लौट गयी और उसने चौबोली से सारी घटना कह सुनाई।

इधर 'वीरों' ने विक्रमादित्य से कहा कि हम चौबोली को अवश्य बुलवा देंगे, लेकिन इसके पहले तीन परीक्षाएँ और होंगी। जब तुम चौबोली के महल में जाओगे तो तुम्हारे आगे एक बकरी खड़ी की जाएगी और तुमसे कहा जाएगा कि इस बकरी का दूध निकालो। बकरी का दूध तुम कदापि नहीं निकाल सकोगे, अत: तुम केवल बकरी के थन पकड़कर बैठ जाना, हम स्वयं उस बरतन को दूध से भर देंगे। फिर एक शेर तुम्हारे सामने दिखलाई पड़ेगा। वह शेर यद्यपि देखने में असली शेर जैसा ही होगा, लेकिन वास्तव में वह नकली शेर है, तुम उससे जरा भी भय न करना और निधड़क आगे बढ़ जाना। आगे जाने पर तुम्हें पानी का एक दरिया दिखलाई पड़ेगा, लेकिन वास्तव में वह उस बड़े शीशे की करामात है, जो चौबोली ने अपने महल पर लगाया है। पानी की एक बूंद भी वहाँ नहीं है, अत: तुम निडर होकर आगे बढ़ते जाना। चौबोली तुमसे कदापि नहीं बोलेगी, हम चारों उसके ढोलिए, दीपक, झारी और हार में अदृश्य होकर घुस जाएँगे और चौबोली को बोलने के लिए विवश करेंगे।

'वीरों की बतलाई हुई युक्तियों के सहारे चौबोली के महल में बिना किसी बाधा के पहुँच गया। रात्रि का पहला पहरा हुआ। राजा ने चौबोली को बुलवाने की हर कोशिश की, लेकिन उसने होठ भी नहीं हिलाया, तब राजा ने पलंग से कहा कि ढोलिए, तू ही कुछ बोल जिससे ये रात तो किसी प्रकार कटे। ढोलिया बोला कि राजा! तू यहाँ कहाँ आ फँसा? यह और बड़ी क्रूर है। ढोलिये को बोलता देख चौबोली को बड़ा आश्चर्य हुआ। ढोलिया बोला कि राजा-राजा, तुम्हें एक बात कहता हूँ, जिससे तुम्हारी एक पहर रात कट जायेगी। यों कहकर ढोलिये ने अपनी कहानी प्रारंभ की- 'एक साहूकार के लड़के और राजकुँवर दोनों में बड़ी दोस्ती थी। छुटपन से ही वे साथ रहते थे और उन्होंने आपस में तय कर लिया था कि दोनों में से जो भी पहले अपनी ससुराल जाये, वह दूसरे को साथ ले जाये। संयोग से साहूकार का लड़का पहले मुकलावा करके बहू लाने के लिए अपनी ससुराल चला। उसने राजा के कुँवर को भी साथ चलने के लिए कहा। राजा का कुँवर बहुत सारे घुड़सवार आदि साथ लेकर राजसी ठाठबाट से साहूकार के लड़के के साथ चला। साहूकार के लड़के को अब यह चिन्ता हुई कि यदि कुँवर का स्वागत-सत्कार उसके योग्य नहीं हुआ तो बहुत शर्म की बात होगी। रास्ते में देवी का एक मन्दिर आया। साहूकार के लड़के ने मंदिर में जाकर देवी से यह मनौती मानी कि यदि राजकुँवर का स्वागत-सत्कार बहुत उत्तम हो जाएगा तो मैं लौटती बार अपना सिर तुम्हारे चरणों में चढ़ा दूँगा।

साहूकार के लड़के की ससुराल वाले बहुत सम्पन्न व्यक्ति थे और देवी की कृपा होने से राजकुमार तथा उसके सभी साथियों का बहुत ही बढ़िया आतिथ्य हुआ। लौटती बार राजकुमार रास्ते भर उसी की प्रशंसा करता रहा। जब वे लोग देवी के मन्दिर के पास पहुँचे तो साहूकार के लड़के ने कहा कि मैं देवी के दर्शन करके अभी आता हूँ। साहूकार के बेटे की मुराद पूरी हो गई थी, अत: उसने जाते ही तलवार से अपना सिर काटकर देवी को चढ़ा दिया। जब बहुत देर हो गई और वह नहीं लौटा तो राजकुमार भी वहाँ पहुँच गया। राजकुमार वहाँ का दृश्य देखकर सकपका गया और उसने सोचा कि मित्र की हत्या का लाँछन मुझे लगेगा, अच्छा यही है कि मैं भी यहीं अपना सिर काटकर देवी के चरणों में रख दूँ। राजकुमार ने भी अपना सिर काटकर देवी को चढ़ा दिया। जब वे दोनों नहीं लौटे, तो साहूकार के बेटे की बहू भी वहाँ गई। दोनों के कटे सिर देखकर उसने सोचा कि अब मुझे जी कर क्या करना है, सो वह भी तलवार से अपना सिर काटने को तैयार हो गई, लेकिन तभी देवी ने उसे रोकते हुए कहा कि तू कटे हुए सिर धड़ों पर जोड़ दे, दोनों जीवित हो

जाएंगे। उसने जल्दी से सिर उठाये और दोनों धड़ों पर रख दिए। दोनों जीवित हो गये। लेकिन जल्दी में उसने अपने पति का सिर तो राजकुमार के धड़ से जोड़ दिया और राजकुमार का सिर अपने पति के धड़ से जोड़ दिया। अब राजा तुम यह बतलाओ कि वह किसकी औरत हुई, सिर वाले की या धड़ वाले की?' यह सुनकर विक्रमादित्य बोला कि स्त्री पर तो धड़ वाले का ही अधिकार होना चाहिए, क्योंकि उसके शरीर पर सिर ही तो दूसरा है, शेष सारा शरीर तो उसी का है। विक्रमादित्य की बात सुनकर चौबोली को तैश आ गया। उसने राजा से कहा कि तुम कहते हो कि मैं राजा वीर विक्रमादित्य हूँ, और मैंने अपने जीवन में न्याय ही किया है। बस देख लिया तुम्हारा न्याय, औरत धड़ वाले की नहीं सिर वाले की होगी, क्योंकि सिर के बिना धड़ का क्या मोल है? विक्रमादित्य ने कहा कि ऐसा ही सही, तुम बोल गई यही मेरे लिए काफी है। फिर विक्रमादित्य ने नगारची से कहा–

चौबकली बोली पैलो बोल।
मार रे नगारची ढोल पर चोब।।

नगारची ने ढोल पर डंका लगा दिया।

फिर राजा ने चौबोली की झारी से कहा कि एक पहर रात तो ढोलिये ने कटवा दी, एक पहर रात तू कटवा। प्रारंभिक बातचीत के बाद झारी ने कहना शुरू किया।

'एक साहूकार और राजा के बेटे में बड़ी दोस्ती थी। उन्होंने छुटपन में ही यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि विवाह के बाद जिसकी भी औरत पहले आये वह पहली रात अपने पति के मित्र के पास रहे। संयोग से साहूकार के बेटे की बहू पहले आई। रात को दोनों पति–पत्नी महल में गये तो पति उदास मुँह चुपचाप बैठ गया। कुछ देर तो बहू भी चुपचाप बैठी रही, लेकिन फिर उसने अपने पति से पूछा कि सुहाग रात को ही आप इतने उदास क्यों हैं? या तो मैं आपको पसंद नही आई या मेरे पिता ने जो कुछ दहेज दिया है, वह आपको पसंद नहीं आया? तब साहूकार के बेटे ने अपनी पत्नी को सारी बात बतलाई। इस पर वह बोली कि आप इसकी चिन्ता न करें। मैं सारी रात आपके दोस्त के पास रह आऊँगी। यों कहकर वह मिष्ठान का थाल सजाकर और हाथ में चौमुखा दीया लेकर राजा के कुँवर के पास चली। रास्तें में उसे चार चोर मिले। चोरों ने उसे पकड़ लिया। उन्हें सु–नारी और सोना दोनों मिल गए। स्त्री ने उनसे कहा कि मैं अपने पति का एक कार्य सिद्ध करने जा रही हूँ, आते वक्त तुम जैसा कहोगे वैसा ही कर लूँगी। पहले तो चारों ने उसकी बात नहीं मानी, लेकिन उसके अधिक विश्वास दिलाने पर चोरों ने उसे जाने दिया। आधी रात को साहूकार के बेटे की बहू राजकुँवर के महल में पहुँची। उसे एकाएक सामने देखकर वह बोला कि देवी! तू कौन है? बचपन का वायदा उसे याद नहीं रहा था। साहूकार के बेटे की स्त्री ने उसे अपने पति की कही हुई सारी बात कह दी। राजकुमार को उसकी बात सुनकर बहुत प्रसन्नता हुई और उसने अपने मित्र की स्त्री को चुनरी उढ़ाकर अपनी बहिन बना ली तथा उसका थाल हीरे–मोतियों से भरकर उसे सम्मान सहित लौटा दिया। साहूकार के बेटे की स्त्री वहाँ से चलकर चोरों के पास आई और उसने चोरों से कहा कि अब चाहो तो मुझे लूट लो। चोरों ने उससे पूछा कि तू कहाँ गई थी और क्या करके आई है? यह हमें सच–सच बतला। साहूकार के बेटे की स्त्री ने आदि से अंत तक की सारी बात उन्हें बतला दी। चोरों ने सोचा कि जब राजकुँवर ने ही इसे बहिन बनाकर चुनरी उढ़ा दी तो हम भी इसे अपनी बहिन ही बनायेंगे। यों आपस में सलाह करके उन्होंने अपने पास जो कुछ भी था सो देकर उसे अपनी बहिन बना ली और अपने घर जाने को कह दिया। अब राजा तुम यह बतलाओ कि इसमें भलमनसी किसकी रही, चोरों की या राजा के लड़के की?'

राजा ने कहा कि भलमनसी चोरों की रही। इस पर चौबोली फिर झुंझलाकर बोली कि भलमनसी तो राजा के कुँवर की रही, क्योंकि उसने पत्नी रूप में प्राप्त हो सकने वाली सुन्दरी को बहिन बना लिया। विक्रमादित्य ने कहा कि जैसा तुम कहती हो वही सही। यों कहकर उसने नगारची से कहा–

चौबकली बोली दूजै बोल,
मार रे नगारची ढोल पर चोब।

नगारची ने ढोल पर दूसरी बार डंका लगाया।

दो पहर रात बीत गई तो विक्रमादित्य ने दीये से कहा कि रात्रि का तीसरा पहर अब तू ही कटवा दे। तब दीपक ने कहना शुरू किया– एक ब्राह्मण और एक साहूकार का लड़का

आपस में दोस्त थे। जब वे दोनों युवा हो गए तो अपनी-अपनी बहुओं को लाने के लिए साथ-साथ ससुराल चले। जब वे दोनों एक ऐसे स्थान पर पहुँचे कि जहाँ से उनके रास्ते अलग-अलग होते थे, तो दोनों ने इकरार किया कि जो पहले बहू को लेकर यहाँ आये, वह दूसरे के आने तक यहीं उसकी बाट देखे। यों कहकर वे अलग-अलग हो गये।

ब्राह्मण का लड़का अकेला था, किन्तु साहूकार के लड़के के साथ एक नाई था। साहूकार का लड़का ससुराल पहुँचा तो उसका बहुत सत्कार हुआ। नाई चिलम पर आग रखने के लिए हवेली में गया तो स्त्रियों ने आपस में बातचीत की। एक ने पूछा कि खातिरदारी नाई की अधिक होनी चाहिए या जँवाई की? दूसरी ने कहा कि यदि जँवाई की खातिरदारी न भी हो तो वह जा कर किसी से कुछ कहेगा नहीं। इसलिए नाई की खातिरदारी ही अधिक होनी चाहिए, जिससे वह सबके सामने बड़ाई करे। ऐसा ही किया गया। जँवाई बाबू को किसी ने पूछा भी नहीं और नाई की बड़ी खातिरदारी हुई। इससे साहूकार के लड़के को बड़ा रंज हुआ। उसने अपने पिता की ओर से एक चिट्ठी लिखी कि घर में तकलीफ हो रही है, इसलिए बहू को फौरन भेज दिया जाए। दूसरे दिन सबेरे ही साहूकार के लड़के ने अपने श्वसुर को चिट्ठी दे दी और श्वसुर ने उसी वक्त दामाद और बेटी को रथ में बिठाकर विदा कर दिया। रास्ते में नाई साहूकार के लड़के से छेड़खानी करता जाता था कि जँवाई बाबू की खातिर अधिक हुई है या नहीं? इससे साहूकार के लड़के का क्रोध और बढ़ गया। चलते-चलते वे एक तालाब पर पहुँचे। बहू ने जान लिया उसका पति बिल्कुल भूखा है। इसलिए उसने एक थाल में मिठाई भरकर थाल उसके सामने रखा, लेकिन वह तो बहुत नाराज था। वह अपनी बहू को वहीं छोड़कर और नाई को साथ लेकर चला गया। बहू ने उसे रोकने की चेष्टा की, लेकिन वह नहीं रूका। जब वे दोनों चले गये तो बहू ने रथ को बैलों से कहा कि जहाँ से आये हैं, वहीं चलो। रथ वापिस चल पड़ा, लेकिन बैल दूसरे रास्ते पड़ गए और रथ एक अनजान नगर में पहुँच गया। वहाँ साहूकार की लड़की फूलाँ मालिन के घर ठहर गई। मालिन रोज बादशाह के लिए हार गूँथकर ले जाया करती थी। उस दिन साहूकार की लड़की ने हार गूँथा तो उसे देखकर बादशाह बड़ा प्रसन्न हुआ। बादशाह ने कहा कि मैं इस हार गूँथने वाली को देखना चाहता हूँ। मालिन ने बहुत छिपाने की चेष्टा की, लेकिन बादशाह नहीं माना।

साहूकार की लड़की को देखकर बादशाह उस पर मोहित हो गया। उसने साहूकार की लड़की से शादी का प्रस्ताव किया। साहूकार की लड़की ने कहा कि मेरा पति मुझे छोड़ गया है, यदि छः महीने में वह लोटकर आ जाएगा तो मैं उसके साथ चली जाऊँगी और यदि वह छः महीने में नहीं आया तो मैं तुमसे शादी कर लूँगी। लेकिन तब तक मेरे लिए एक अलग महल बनवा दीजिए। बादशाह ने कहा कि तू ही अपनी पसन्द का महल बनवा ले। यों कहकर उसने महल बनवाने का प्रबंध कर दिया। साहूकार की स्त्री मरदाने वेश में रहकर महल बनवाने लगी।

उधर साहूकार का लड़का आगे बढ़ा तो उसे पूर्व निश्चित स्थान पर ब्राह्मण का लड़का प्रतीक्षा करता हुआ मिला। साहूकार के लड़के ने उससे पूछा कि तुम्हारी स्त्री कहाँ है? ब्राह्मण के लड़के ने उत्तर दिया कि वह कुलटा थी, अतः उसे नहीं लाया, वहीं छोड़ आया। फिर उसने साहूकार के लड़के से पूछा कि तुम्हारी स्त्री कहाँ है? इस पर उसने कहा कि मैं उसे छोड़ आया हूँ और फिर उसने अपनी पत्नी को छोड़ने का कारण भी बता दिया। ब्राह्मण ने कहा कि तुम भी कैसे पगले हो जो इतनी सी बात पर बहू को छोड़ आये। इसमें भला उसका क्या दोष था? अब वे तीनों उसे ढूँढ़ने निकले और घूमते-फिरते उसी नगर में पहुँचे। नाई ने मरदाने वेष में भी साहूकार के बेटे की बहू को पहचान लिया। वे तीनों वहीं काम पर लग गये। बहू ने भी अपने पति को पहचान लिया। शाम को वह तीनों को अपने घर ले गई और उन्हें खाने के लिए बैठाया। वह तीनों के लिए थाल लाई तो तीनों बार अपनी पोशाकें बदलकर आई। साहूकार के लड़के ने पूछा कि महल का मालिक कहाँ है? तब सारा रहस्य खुल गया। साहूकार के बेटे की बहू ने बादशाह से कहा कि मेरा पति आ गया है, अतः मैं इसके साथ जा रही हूँ। बादशाह ने भी अपने वचन का पालन किया और उसे जाने दिया। अब राजन् तुम यह बतलाओ कि इसमें भलमनसी किसकी रही? राजा बोला कि इसमें भलमनसी तो साहूकार के लड़के की ही रही कि उसने अपनी छोड़ी हुई स्त्री को फिर से अपना लिया।

राजा की बात सुनकर चौबोली फिर चहकी, राजा 'वीर' विक्रमादित्य क्या तुम ऐसा ही न्याय करते रहे हो? इसमें भलमनसी तो वास्तव में साहूकार के लड़के की बहू की थी, जो अकारण त्यागी जाने पर भी अपने सत पर कायम रही। तब विक्रमादित्य ने कहा कि तुम जो कहती हो वही सही। फिर उसने नगरची से कहा –

चौबकली बोली तीजो बोल,
मार रे नगरची ढोल पर चोब।

अब रात्रि का चौथा पहर आया तो विक्रमादित्य ने चौबोली के हार से कहा कि तीन पहर रात बीत गई है, अब चौथा पहर तू ही कटवा दे। इस पर हार बोला– एक ब्राह्मण, एक खाती, एक दर्जी और एक सुनार ये चार दोस्त थे। वे चारों कमाने निकले। रात हो गई तो आदमी सो गये और खाती का लड़का पहरा देने लगा। उसने एक पहर तक पहरा दिया और इस बीच उसने एक काठ की सुन्दर पुतली बनाकर खड़ी कर दी। फिर दर्जी का पहरा आया, उसने पुतली को सुन्दर वस्त्र पहना दिये। दो पहर रात बीत गई तो सुनार का पहरा आया। सुनार ने पुतली सुन्दर–सुन्दर गहनों से सजा दी। अंतिम पहरा ब्राह्मण का आया। उसने देखा कि एक सुन्दर पुतली गहने कपड़ों से सजी खड़ी है। ब्राह्मण ने अपने मंत्रों के बल से पुतली में जान डाल दी। सबेरे चारों झगड़ने लगे। उनमें से हर एक यही कहता था कि यह मेरी स्त्री है। अब राजन् तुम्हीं बतलाओ कि वह किसकी स्त्री बने?

राजा ने कहा कि खाती ने पुतली को बनाया था, इसलिए वह उसी की स्त्री बननी चाहिए। इस पर चौबोली फिर बोल उठी कि खाती ने उसे जन्म दिया (बनाया) था। अत: वह उसका बाप (जनक) बन गया। वर पक्ष वाले जब ब्याहने जाते हैं तो बहू के लिए गहना ले जाते हैं। सुनार ने पुतली को गहना पहनाया, अत: वही उसका पति हुआ। इस पर विक्रमादित्य ने कहा कि यही सही। फिर नगारची को पुकारा–

चौबकली बोली चोथो बोल।
मार रे नगारची ढोल पर चोब।।

चौबोली चार बार बोल चुकी थी, अत: शर्त के अनुसार राजा वीर विक्रमादित्य से उसका विवाह हो गया। राजा ने सारे कैदियों को मुक्त करा दिया। उनके देश निकाले की अवधि पूरी हो गई थी और वह तीनों रानियों को साथ लेकर अपनी नगरी में आ गया।

विक्रम सम्बन्धी एक कहानी मुझे इलाहाबाद के इंडियन प्रेस द्वारा बहुत पहले प्रकाशित शेखचिल्ली की कहानियाँ नामक पुस्तक से भी मिली है। यह पुस्तक फोक टेल्स ऑफ हिन्दुस्तान नामी अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद थी। इनमें से कई कहानियों पर मध्य पूर्व की छाया है और शायद वे पंजाब की उपज हैं, यहाँ प्रस्तुत है इस पुस्तक में सम्मिलित राजा विक्रम और योगी का सार–संक्षेप।

'एक पाखण्डी योगी और राजा विक्रम का किसी दोष के कारण पदच्युत किया हुआ राज–मंत्री आपस में मिले हुए हैं और राजा के खिलाफ गतिविधियों में लिप्त हैं। राजा के चार वीर भी योगी के मुकाबले में कमजोर पड़ते हैं। ज्योतिषी वराहमिहिर भी कहते हैं कि महाराज मैं योगी का मुकाबला नहीं कर सकता। वह तेरह विद्याएँ जानता है और मैं केवल तीन, सिर्फ चीन की राजकुमारी चौदह विद्याएँ जानती है– यदि आप उसे ब्याह सकें तो फिर योगी आपका कुछ भी न कर सकेगा। इस पर राजा अपने दरियाई घोड़े पर चढ़कर अकेला ही चीन की ओर चल पड़ा। चीन की राजधानी पहुँचकर उसने एक बाग में डेरा डाला और थके होने के कारण लेटते ही वह गहरी नींद में सो गया। मौके की बात, कुछ चोर वहाँ शाही खजाने में चोरी करने के इरादे से इकट्ठा हुए और उन्होंने विक्रम के घोड़े को अच्छा शगुन मानकर पांतीदार बनाकर उसे साथ ले लिया। चोरी में चोरों को काफी माल हाथ लगा और उसका बंटवारा करते हुए एक एक नवलखा हार उसके हिस्से का मानते हुए विक्रम के घोड़े के गले में डालकर और उसे वापस वहीं बांधकर वे अपनी राह लगे। सुबह ढूँढ मची तो विक्रम को चोर समझा गया और उसे चीन के राजा के हुक्म से चौरंगी बनाकर–चारों हाथ पैर काटकर–खुले मैदान में डाल दिया। विक्रम चाहता तो अपना परिचय देकर छुटकारा पा जाता, लेकिन उसने अपने को प्रकट करना उचित न समझा। एक तेली ने विक्रम पर दया करके उसी मरहमपट्टी की और अपनी कर्कशा पत्नी के विरोध के बावजूद उसे अपना धर्मपुत्र

बनाकर अपने घर में रख लिया। निरोग होने पर विक्रम तेली के कोल्हू पर बैठने लगा।

फिर एक दिन विक्रम के कहने पर तेली उसे नहाने के लिए चीन की राजकुमारी के बाग वाले तालाब पर ले गया। वहाँ जाकर विक्रम ने तेली को तो मध्यरात्रि में लौट कर आने का कह दिया और खुद स्नान-ध्यान करके अपना रचा दीपक राग छेड़ा। उसके छिड़ते ही नगर भर के दीपक जल उठे और यह देखकर चीन की राजकुमारी समझ गई कि यह कारनामा विक्रम के अलावा और किसी का नहीं हो सकता। अपनी विद्याओं से वह यह भी जान गई कि विक्रम किसी तेली के यहाँ ठहरा हुआ है। इस पर उसने नगर के सारे तेलियों को बुलाकर उन्हें कहा कि अगले दिन सुबह तक उनमें से हर एक उसके लिए एक-एक मन तेल जुटाये। विक्रम यह जानकर राग भैरवी छेड़कर अपने चार वीरों को बुलाते हैं और अपने दयावान संरक्षक के हित में यह शर्त पूरी करवा देते हैं। तब राजकुमारी जो पहले ही विक्रम के दर्शन और उससे विवाह की अभिलिषित थी, तेली से बोली- देख, आज से दो महीने बाद पूर्णिमा के दिन मेरे पिता एक स्वयंवर करेंगे। उसमें तू भी अपने डुण्ड के साथ आइयो।

स्वयंवर में दुनिया भर के राजा-महाराजाओं को छोड़कर राजकुमारी ने डुण्ड के गले में जयमाल डाल दी तो मजबूरन चीन के राजा को तेली से अगले दिन बारात लेकर आने के लिए कहना पड़ा। रात हुई तो विक्रम ने तेली से कहा कि पिताजी, आज फिर मुझे राजकुमारी के बाग में ले चलो। वहाँ पहुँचकर विक्रम ने तेली को सुबह आकर खुद को ले जाने के लिए कहा- लेकिन तेली बाग में ही छिपकर घटनाक्रम देखता रहा। विक्रम ने स्नान, ध्यान करके दीपक रागिनी छेड़ी तो राजकुमारी अप्सरा का रूप धारण करके विक्रम के पास पहुँची और विक्रम के चाहे अनुसार उसके कटे हाथ-पांव जोड़कर उसे पहले जैसा रूपवान बना दिया, हालांकि विक्रम राजकुमारी को इस रूप में पहचान नहीं पाया था। अप्सरा के अलोप होकर लौट जाने के बाद विक्रम ने अपने वीरों को याद किया और अपने तमाम फौज-फांटे को वहाँ ला उपस्थित करने और तेली की झोपड़ी को एक सुसज्जित महल में बदल देने के लिए कहा। यह सब देखकर घबराये तेली को विक्रम ने यह कहकर आश्वस्त किया कि वह तो उसके लिए सदा पितातुल्य ही रहेगा।

ब्याह खूब धूमधाम से हुआ। शाम को सब लोग नाच-गाना देखने के लिए जुटे तो विक्रम के शत्रु वह योगी व पदच्युत मंत्री भी वहाँ बाजीगर बनकर आ धमके और आज्ञा मिलने पर अपना खेल दिखाने लगे। विक्रम उन्हें देखकर भयभीत हुआ, लेकिन राजकुमारी ने उसे धैर्य बंधाया। खेल दिखाते हुए पदच्युत मंत्री पहले तो अपने मृत पुत्र के शव के टुकड़े कर दिए और फिर योगी की धूनी की राख से उसे जीवित कर उसे सिंह बनाकर विक्रम का भक्षण कर लेने का आदेश दिया। सिंह विक्रम पर झपटा, लेकिन इसी बीच राजकुमारी ने हाथ ऊपर उठाकर हिलाया तो सिंह उछाल मारकर पीछे हट गया और इससे पहले कि योगी कुछ करे, वह बड़े क्रोध से मंत्री पर टूट पड़ा, उसके टुकड़े-टुकड़े करके रंगस्थल से भाग गया। यह देखकर योगी भागने लगा, परन्तु राजकुमारी ने फिर हाथ हिलाया तो वह वहीं विजड़ित हो गया। तब राजकुमारी कड़ककर उससे बोली- दुष्ट जादूगर तूने अपनी महान शक्तियों को संसार की भलाई करने के बदले ऐसे नीचतम कामों में लगा रखा है। जो पशुओं और चिड़ियों की तरह ज्ञानहीन होकर संसार में भ्रमण करता फिरे।

राजकुमारी के साथ विक्रम अपने राज्य में लौटे। प्रजा उन्हें देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। इस कहानी के कई पहलू ध्यान आकर्षित करते हैं। इसको विशुद्ध लोककथा न कहकर उसे किस्से-कहानियों की श्रेणी में रखकर देखा जाना चाहिए। आम मध्यपूर्वोन्मख पंजाबी किस्सों के बरक्स वह चीन का रूख करता है और उस परिप्रेक्ष्य में विक्रम को विश्वविश्रुत घोषित करता है। राग दीपक और रागिनी भैरवी के उल्लेख उसमें किसी पंजाबी मिरासी संगीतज्ञ- बातपोश का हाथ लगा होने की सम्भावना के द्योतक लगते हैं। चौदह विद्याओं का जिक्र रोचक है। यह शास्त्र के कई छन्नों में से गुजरकर लोक का उपभोग्य बनने का उदाहरण है। प्राचीन वाङ्मय में विद्या के अनेक रूप वर्णित हैं और उसके अनेक भेद किए गए हैं। सामान्यत: चौदह विद्याएँ मानी जाती हैं- ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, छंद, शिक्षा, व्याकरण, निरूक्त, कल्प, ज्योतिष, न्याय, मीमांसा, पुराण और धर्मशास्त्र। एक अन्य मान्यता के अनुसार चौदह

विद्याएँ ये हैं- ब्रह्मज्ञान, रसायन, स्वधर, वेद, ज्योतिष, व्याकरण। धनुर्विद्या, जलतरण, न्याय, कोक, अश्वारोहण, नट, कृषि, वैधग। दरियाई घोड़े का जिक्र भी रोचक है। पंजाब की राजा रसालू-सीलो सतवंती से सम्बंधित आख्यानों में भी दरियाई घोड़ों का महात्म्य है। इसी तरह वराहमिहिर, जिसे हम विक्रम के कथित नवरत्नों में ऊपर गिना आये हैं, का उल्लेख भी ध्यान खींचता है।

किस्सों की यह परम्परा बाद तक भी चलती आई है। सन् 1957 में एन.एस. शर्मा, गोंड बुक डिपो- हाथरस, उत्तरप्रदेश ने किन्हीं प्रमोद बिहारी सक्सेना का लिखा असली किस्सा पाताल भैरवी प्रकाशित किया था, इसमें उज्जैन के राजा विक्रमाजीत और उसके बेताल के दो दुष्ट राजाओं और उनमें से एक द्वारा सिद्ध की हुई पाताल भैरवी के साथ संघर्ष और विक्रम और बेताल की विजय का विवरण है। किस्सा बहुत मामूली है लेकिन कथा-कहानियों के आधार के रूप में विक्रमाख्यान की सशक्त दीर्घजीविता का परिचायक तो वह है ही ।

ऊपर हमने 'बेताल-पचीसी' और 'सिंहासन बत्तीसी' के संदर्भ में यह प्रश्न उठाया था कि क्या वे ऐतिहासिक विक्रमादित्य के बारे में कुछ जानकारी हमें देते हैं और उसका उत्तर नकार में दिया था। यहाँ उल्लिखित चार लोक- कथाएँ और एक किस्सा भी हमें ऐतिहासिक विक्रम के बारे में कुछ नहीं बताते। 'सिंहासन बत्तीसी' को छोड़ दे तो आम विक्रम सम्बधी आख्यानों में कोई भी वीर और प्रतापी सम्राट विक्रम का स्थानापन्न हो सकता है, एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। हमारे द्वारा ऊपर उद्धृत चौबोली कथा में नायक विक्रम है, लेकिन साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित राजस्थानी वात संग्रह में यही कथा थोड़े हेर-फेर के साथ उज्जैन के ही राजा भोज के नायकत्व के साथ कह दी गई है।

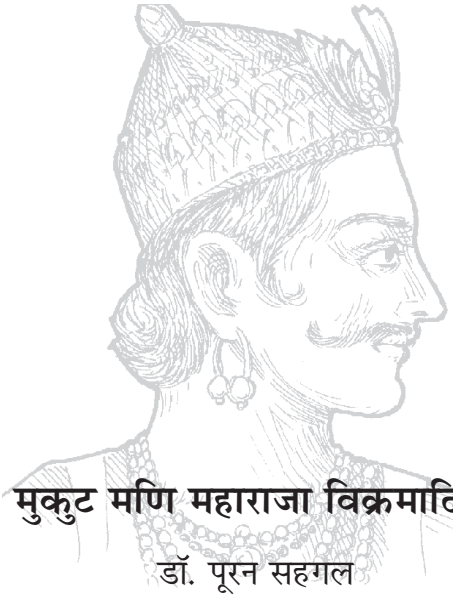

मुकुट मणि महाराजा विक्रमादित्य

डॉ. पूरन सहगल

मालवा के दिव्य पुरुषों का वर्णन करने से पूर्व हमें मालवा की दिव्यता और भव्यता का महत्त्व जानना होगा। राज वल्लभ के सृजक महाराजा भोज ने कहा है–

भारत देश मध्यस्थे, मालव संज्ञकः।
अनेक नगर, ग्राम पर्तनैः प्रविरजितः।।

ईश्वर संहिता में कहा है सर्वेदेशः भूषितः मालवीयेः। मालवा की प्रशस्ति में संत कवि सुन्दरदास ने कहा है–

वृच्छ अनंत सुनीर, बहुत सु सुंदर विराजै तहीं तें।
नित्य सुकाल पड़े न दुकाल, सु मालव देस भलो सब ही तें।।

इसीलिए कबीर ने कहा–

मालव भूमि गहन गम्भीर पग–पग रोटी डग–डग नीर।।

महाकवि कालिदास तो विक्रमादित्य के नवरत्न के सुमेरू थे। उन्होंने कहा–

द्रुभा सपुष्पा, सलिल सपद्मं स्त्रिः सकामा, पुवनः सुगंधिः।
सुखाः प्रदोषा दिवसश्च रम्याः, सर्व प्रिये चाहतरं वससंते।।

लोक कहता है–

भारत को हिरदो कहूँ, भारत देस महान।
जतरे हिरदो धकधके, जीवित दिखें पिरान।।

भारत का हृदय है मालवा। जब तक हृदय की धड़कन कायम है, तब तक जीवन (प्राण) भी कायम है। लोक तो इससे भी बढ़कर कहता है–

हिरदा तो धक–धक करे, नाभ कमल सरसाय।
हिरदा ती नाभी तलक, मालव देस कहाय।।

हृदय से नाभि तक मालव देश कहलाता है।

पंजाब के (रावी और चिनाब के मध्य स्थित)मालवा से प्रस्थित मालव गण जयपुर से होते हुए मेवाड़ में आ बसे। नगरी को उन्होंने राजधानी बनाया, फिर वहाँ से दशपुर अंचल में प्रविष्ठ हो गए और नर्मदा तक अपनी सत्ता का विस्तार उन्होंने किया। उन्होंने अपना 'मालव संवत्' स्थापित किया। मंदसौर से प्राप्त दो शिलालेखों में इसका संकेत मिलता है। एक शिलालेख संवत् 493 का और दूसरा संवत् 589 का है।

मालवा नाम गणस्थित्या याते शत चतुष्ठये।
(1) त्रिनवत्याधिकऽ ब्दानां, सेव्यधनस्तने।।
(2) मालवागणस्थितिवशात काल ज्ञानाय लिखितेषु।

इसी प्रकार सिक्कों पर कागज का स्पष्ट रूप 'मालवानां गणस्य जयः' अथवा 'मालवानाम जयः'।

डॉ. भगवती लाल राजपुरोहित अपने ग्रंथ 'मालवी संस्कृति और साहित्य' में लिखते हैं कि 'मालव संवत्, विक्रम संवत् से अभिन्न है। मालव संवत् परम्परा से सदा जीवित रहा। प्रचलन में रहा। शकों को पराजित करने पर विक्रमादित्य ने ईस्वी पूर्व सन् सत्तावन में जिस विक्रम संवत् की स्थापना की वह धीरे–धीरे मालव संवत् का स्थान लेता गया। विक्रम संवत् के शकारि और साहसाँक संवत् नाम भी है। ये दोनों नाम विक्रमादित्य के यश विरद् थे।'

जब लोक मालवा का विस्तार हृदय प्रदेश से नाभिप्रदेश तक करता है, तब वह मालवा को अत्यंत भावुक और साधना प्रिय अंचल कहना चाहता है। साधना में नाभि से ही कमलदल विकसित होता है और त्रिकुटी में स्थित हेाकर बंकनाल से अमृत बहने लगता है। इसी प्रकार बहुत प्रचलित दोहा–

इत चम्बल उत बेतवा माल सीम सुजान।
दक्षिण दिसि है नर्मदा, यह पूरी पहचान।

वहीं एक और साखी में कहा गया है–

शिवना शिप्रा नर्मदा, चम्बल तीन पठार।
या म्हारो घर आंगणों, यो म्हारो घर बार।।

संत ने मालवा की सीमा का निर्धारण और भी स्पष्ट रूप से कर दिया है। चम्बल से नर्मदा तक उत्तर–दक्षिण की सीमा इस साखी में दर्ज है। अरावली का पठार, विंध्य का पठार और मध्य भाग का पठार मालव की परिक्रमा करते अरावली और विंध्य एक मुद्रिका की भाँति मालवा की वागड़ निर्धारित करते है। इसी कारण मालवा को 'मालमुन्नत भूतलम' कहा गया है। कालिदास ने इसी कारण इसे 'क्षेत्र मारूदय मालव' कहा है।

इसी मालव प्रदेश की महाकाल नगरी उज्जैन में राजयोगी भर्तृहरि के बाद मालव मुकुट मणि महाराजा विक्रमादित्य हुए। इन्हीं महापुरुषों के कारण मालव भूमि सदा यशोमयी बनी रही। यह महाकाल ओंकारेश्वर, पशुपतिनाथ और शंखोद्धार की महिमामयी और ममतामयी यशधरां है। एक साखी में यही कहा है।

नर्मद, औंकेसर घणी, शिप्र तटे महाकार।
शिवाना तीरे पसुपति, चम्बल शैखोद्धार।।

मालवा के यश बखान हेतु ऐसी अनेक कथाएँ, गाथाएँ, गीत, किंवदंतियाँ और कहावतें लोक मानस के पटल पर ही नहीं, कंठ पर भी जीवित हैं। यह महाकाल, पशुपतिनाथ, सुखानंद, ओंकारेश्वर, गौतमेश्वर, केदारेश्वर, भादावामाता, दूधाखेड़ी, सहित अनेक माताओं की धरती है। यह हरसिद्धा, अन्नपूर्णा, कालिका, महिषासुर मर्दिनी, संतोषी माता और नागमाता मनसा देवी और नागचेणी माता की धरती है।

यह राज योगी भर्तृहरि (भरथरी) महाराजा विक्रमादित्य, भोज, यशोधर्मन, रामाभील, क्रांतिकारी, टण्ट्या भील और

भीमानायक की वीर प्रसूता धरती है। यह विद्वानों, विचारकों, चिंतकों, वीरों, वीरांगनाओं और सिद्ध-योगियों की धरती है। इसी लोक ने और संतों कवियों ने इसे सुहाना अंचल कहा है।

विक्रमादित्यादि महापुरुषों दिव्यपुरुषों, लोकपुरुषों, लोक देवताओं और महानायकों का जितना वर्णन कवियों, चरणों भाटों ने किया है, उससे भी सहज सटीक वर्णन लोक गायकों ने किया है।

लोक की भव्यता और दिव्यता को जान पाना या अनुमान पाना उतना ही कठिन है, जितना ब्रह्म को जान पाना अथवा आकाश को नाप पाना। इसीलिए मैं उसे विराट कहता हूँ। वह जितना दृश्य है, उतना ही अदृश्य भी, जितना लौकिक है, उतना ही अलौकिक भी। इस लोक में हमें जो दिखाई दे रहा है, वह सब लोक में ही तो समाहित है। इसलिए वह अनन्त, असीम और अनुपम है। इस विराट लोक के लिए श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं भगवान कृष्ण ने पार्थ को समझाते हुए कहा है-

पश्य में पार्थ रूपाणि शतशेऽथ सहस्त्रशः।
नाना विधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च।। (11-5)

इस विराट लोक की नाना प्रकार की रूप छवियाँ हैं। अनन्त अद्भुत आकृतियाँ हैं। इसमें सम्पूर्ण चराचर जगत निहित है।

इहैकस्थं जगत्कृत्सनं पश्य सचराचरम्।
मम देहे गुडाकेश यच्चन्यद् द्रष्टुमिच्छसि। 11-6

इस विराट, अनुपम, दिव्य, अगम्य और अलौकिक लोक का विरद गायक उसका साहित्य होता है। इसी विरद गायन को लोक साहित्य कहा जाता है। यह लोक साहित्य ही लोक वेद है। यही प्रथम वेद है तथा यही पंचम वेद भी। रचनालोक से श्रुति, श्रुति से कंठ, कंठ से फिर लोक और लोक व्याप्ति के पश्चात् लेखी में आती है। यही देखी से लेखी की क्रमिक यात्रा है।

लोक कंठों पर थिरकता, कंठानुकंठ, पीढ़ी-दर-पीढ़ी विचरण करता सदानीरा सलिला की भाँति प्रवहमान बना रहता है। लोक साहित्य इतिहास का अनुगामी नहीं होता। इतिहास भले ही इसका अनुगमन करे।

लोक जब किसी पर तुष्ट हो जाता है, तब उसे भव्य एवं दिव्य बनाकर लोक पूज्य बना देता है और जब वह रूष्ट हो जाता है, तब लोकभ्रष्ट करने से भी नहीं चूकता। वह इतिहास की परवाह किए बिना उसे पीछे धकेलता हुआ अपने मार्ग पर चलता रहता है। इतिहास कागज की लेखी पर विश्वास करता है। लोकसाहित्य आँखन की देखी का बखान करता है। हमें अपनी उपलब्ध पुरा सम्पदा को स्वीकार करना होगा, किन्तु पुरासम्पदा और लोक साक्ष्यों का उपयोग अत्यंत सतर्कतापूर्वक करना होगा। हमें लोक और श्लोक दोनों को सम्मानपूर्वक अध्ययन करना होगा और सार निकालना होगा। इतिहास प्रस्तर शिलाओं पर खुदे अभिलेखों, पुरा अवशेषों और स्मारकों तथा सिक्कों-मुद्राओं आदि के आधार पर अनुमान लगाता है। यह अभिलेख, ये प्रशस्तियाँ उस राजा, महाराजा, सामंत, साहूकार अथवा जागीरदार के वेतन भोगी यशगायकों द्वारा उनके ही जीवन काल में लिखी गई आत्मप्रवंचनाएँ होती हैं। वे लिखी या लिखवाई गई हैं। उनमें प्रसन्न होने पर स्वर्णमुद्राओं और रूतबे, जागीरों का लालच निहित होता है। दरबारी कवियों द्वारा की गई चाटुकारिता होती है।

लोकसाहित्य किसी का जरखरीद चाकर नहीं होता। उसने जो कुछ भी कहा निष्पक्ष और निर्भीक होकर कहा है। जो भी कहूँगा सच-सच कहूँगा की घोषणा की है।

उसके सामने भले ही महाराजा विक्रमादित्य हो अथवा राजा भोज हों, भर्तृहरि हों या फिर हर्षवर्द्धन, इन विभूतियों के चरित्र जन-जन के लिए प्रेरक बनते चले गए और वे लोक के हृदय में स्थापित हुए, फिर अंकुरित हुए और फिर लहलहा उठे। हृदय से कंठ पर आकर लोकव्यापी हो गए। यह लोक व्यापकता ही लोक साहित्य की प्रमाणिकता है।

लोक का यही आचरण जो भी कहूँगा सच-सच कहूँगा का पुष्टिकरण भी है। लोकसाहित्य के पैर नहीं होते, पंख होते हैं। वह सात समुद्र पार तक की यात्रा करके वापिस लौट आता है। जब वह लौटता है, तब बहुत कुछ वहाँ छोड़ आता है और बहुत कुछ जोड़ भी लाता है।

विक्रमादित्य भले मालवा में हुए हों, किन्तु मैं भी अविभाजित भारत के उस हिस्से का जन्मा जाया हूँ जो मुलतान से भी आगे का अंचल है। वहाँ भी वीर विक्रमादित्य का यश लोक कंठ पर विराजित है। जब भी कोई संदर्भ विक्रमादित्य का आता है, तब लोक कह उठता है–

मालवा माँ दी मुकट मणि, राजा विक्रमादित्य।
जंग कदां हारया नहीं, हरमद रहया जीत।।
वीर विक्रमादित्य, दुश्मणादा दुशमण।
ते मितरां दा मीत।

गल दी गल ते कमाल दा कमाल।
जितने विक्रमाजीत, उतने बेताल।।

तथा

विक्रमाजीत ने कर दित्ता न्याय, कह दित्ता हाल।
उड़या बेताल, लटक्या फेर तों जंडी नाल।।

विक्रमादित्य दुश्मनों का दुश्मन है और मित्रों का मित्र है।

बात की बात और कमाल का कमाल है। जितने विक्रमादित्य हुए उतने ही बेताल भी हुए। यह एक कहावत है। ऐसी ही कहावत मालवी में भी है। 'जतरा ठाकर वतरा चाकर।'

विक्रमादित्य ने उचित न्याय करके बेताल को जवाब दे दिया। विक्रमादित्य के बोलते ही बेताल उड़ गया और जंडी के वृक्ष पर लटक गया।

बेताल पच्चीसी के ये संदर्भ अनेक भाषाओं की यात्रा करते हुए जब वर्तमान पाकिस्तान के उस फरंटियर अंचल तक पहुँचे होंगे, तब उसने वहाँ की भाषा भी धारण कर ली और तेवर भी। मेरे पिता को बेताल पच्चीसी की कई कथाएँ पंजाबी में कंठस्थ थी। प्रत्येक कहानी के अंत में यह टिप्पणी बखानी जाती थी।

यह टिप्पणी आगे जाकर किंवदंती बन गई। जब दो पक्षों में समझोते के प्रयत्न सहमतियों के बाद अचानक असहमतियों में बदल जाएं, तब यह किंवदंती कही जाती है।

एक राजा किस प्रकार किंवदंती पुरुष बन जाता है, यह इसका एक प्रेरक प्रसंग है।

पंजाब में विक्रमादित्य, विक्रमाजीत हो गए। यही कारण है कि 16 वीं शताब्दी में हुए राजा हेमू ने विक्रमादित्य के बजाए विक्रमाजीत की उपाधि धारण की। सिंध और पंजाब में विक्रमाजीत की अनेक लोक कथाएँ प्रचलित हैं। राजस्थान, गुजरात, छत्तीसगढ़, आंध्र, मालवा, सौराष्ट्र आदि अनेक अंचलों में विक्रमादित्य की यश गाथाएँ बखानी जाती हैं। पंजाब में श्राद्ध के अवसर पर अपने पूर्वजों के साथ-साथ वीर विक्रमादित्य का भी श्राद्ध किया जाता रहा है। पहले गंगा, फिर गुरु फिर विक्रमाजीत और फिर वरीयता के अनुसार पूर्वजों का श्राद्ध होता है। इसी प्रकार निर्जला एकादशी पर सामूहिक रूप से नदी या सरोवर के घाट पर पूर्वजों का तर्पण जब किया जाता है, तब वीर विक्रमादित्य का भी तर्पण किया जाता रहा है।

विक्रम संवत के आरंभ में पंचांग की पूजा जब की जाती हैं, तब वीर विक्रमादित्य की भी पूजा पुरोहित करवाता है। यह निष्ठा व्यक्ति की महनीयता और दिव्यता की लोक श्रद्धा ही तो है।

भले ही अनेक विक्रमादित्यों का उल्लेख इतिहास करता हो, किन्तु उन उपाधि धारी विक्रमादित्यों का लोक में कोई विशेष स्थान नहीं है। लोक तो केवल एक ही विक्रमादित्य को पहचानता है जो ईसा से 57 वर्ष पूर्व हुआ था और जिसने विक्रम संवत् चलाया।

जितने भी विक्रमादित्य उपाधि धारी राजा हुए, वे सब प्रथम सदी ईस्वी पूर्व के पश्चात् ही हुए। विक्रमादित्य की लोक प्रसिद्धि की लालसा ही उन्हें इस गौरवमयी नामोपाधि को धारण करने के लिए सदा प्रेरित करती रही। बावजूद इसके जब भी हम 'विक्रमादित्य' नाम सुनते या पढ़ते है, तब हमारे मन मस्तिष्क में आदि विक्रमादित्य की छवि ही उभरकर सामने आती है। जिस प्रकार किसी लोकप्रिय गाने की पेरौडी सुनते समय हमारे मस्तिष्क में मूल गाना ही गूंजता रहता है, ठीक उसी प्रकार विक्रमादित्य शब्द आते ही हमारे मस्तिष्क में आदिविक्रमादित्य ही होते हैं। वह उपाधि धारी राजा या महाराजा नहीं। विक्रमादित्य भारतीय जनमानस की आस्था और विश्वास के प्रतीक बन गए। सन्- 2004 में मैं मैसूर के भारतीय भाषा संस्थान में हिन्दी और सर्व भाषाओं के प्रोजेक्ट के लिए राष्ट्रीय

शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) दिल्ली के निर्देश पर हिन्दी के विशेषज्ञ के रूप में भेजा गया था, मेरे पास पंजाबी, बंगाली और गुजराती भाषा का प्रोजेक्ट था। गुजराती के लिए दो छात्र मेरे साथ सहयोगी थे। वीनू अतलानी और भरत। वे कई बार एक वाक्य दोहराते थे। 'ओ विक्रमादित्य नो वचन छे।' मैंने एक दिन उनसे पूछा- तुम लोग बार-बार यह वाक्य दोहराकर क्या संदेश देना चाहते हो? उन्होंने कहा- जब कोई बात कहकर उसका भरोसा दिलवाना होता है, तब हम कहते हैं। 'ओ विक्रमादित्य जो वचन छे।' यह विक्रमादित्य का वचन है अर्थात् यह वचन भंग कभी भी नहीं होगा, चाहे जो हो जाय। यह है लोक आस्था और लोक विश्वास की जीवंतता। इसीलिए मैंने कहा है लोक जब किसी को स्वीकारता है, तब सत्कारता भी है। वह उसे अपनी जीवनचर्या को और सांस्कृतिक परम्परा का आदर्श बना लेता है।

यह बात जानकर मैं अचम्भित और गौरवान्वित था। लगभग इक्कीस सौ वर्ष पहले बीत चुके एक राजपुरुष के प्रति कितनी बड़ी आस्था है लोक में। मालवा की मिट्टी की सौंधी सुगंध ने मुझे पुलकित कर दिया। इसी विश्वसनीयता के कारण हम विक्रमादित्य को किंवदंती पुरुष कह सकते हैं। रघुकुल के विषय में सुना था 'प्राण जाहिं पर वचन न जाहीं।' उस दिन मालवाधिपति विक्रमादित्य के लिए भी ऐसा ही मान-सम्मान सुनकर मेरा गौरव से भर जाना स्वाभाविक ही था। मालवा, राजस्थान और गुजरात ही क्यों शकारि विक्रमादित्य की गौरव गाथाएँ तो पूरे एशिया में विस्तारित हैं।

पिछले दिनों एक लोकगाथा के कुछ पद मुझे सुनने को मिले। पूरी लोकगाथा प्राप्त नहीं हो पाई। जितना भाग मिला है वह भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। लोकसाहित्य का संकलन ठीक वैसा ही होता है, जैसा मधुमक्खी का फूलों से रस एकत्र करना। एक-एक पदपंक्ति के लिए कई-कई चक्कर लोकगायकों के लगाना होते हैं। तब जाकर कुछ प्राप्त होता है। ऐसे ही एक श्रमसाध्य अभियान में एक गाथा प्राप्त हुई है। इसका प्रारंभिक भाग ही इतना महत्त्वपूर्ण है कि शेष गाथा यदि नहीं भी मिली होती, तब भी हम महाराजा विक्रमादित्य के विषय में बहुत कुछ जान सकते थे।

महाराजा विक्रमादित्य का चरित्र लोक गाथाओं और कथाओं में तथा कहावतों, किंवदंतियों में जितना बखाना गया है, उसका सार संक्षेप है। वह परम प्रतापी, यशस्वी, न्यायप्रिय और प्रजापालक था। शेष सभी गुण इन्हीं चार गुणों में सम्मिलित हैं। गाथा कहती है-

सुमरूँ गणक विनायको, गवरीनंद गणेस।
सिव विसनू बरमा नमूं, धरणी धरणक सेस।। 1
धरती पे राजो वियो, राजां रो महाराज।
परमारथ रे कारणे, करया अगणक काज।। 2
कथा सुणाऊँ हाँचली, उज्जैणी रे बीच।
नीत न्याव राजो वियो, राजा विक्रमदीत।। 3
प्राणा री परवा नहीं, चेतन्यों पर हीत।
कुचमान्या कुचमातिया, रे हरदम भेभीत।। 4
जुद्धजीत जाणे जगत, दानवीर तिन लोक।
गो-बामण ने पूजतां, दे चरणा में धोक।। 5
दान दच्छना खूप दे, करे अजाचो मूल।
विदवानां रे मान में, कद्यां करे न भूल।। 6
ज्ञान गणित विज्ञान जुद्ध, जोतिस आजुरवेद।
नीत गीत संगीत धन, कवित पुराण अर वेद।। 7
तंतर मंतर जंतरा, हे जतरा निरधार।
हांथ बांध ऊबा रहे, विक्रम रे दरबार।। 8
जीव मिटे जिद नी मिटे, नीत, न्याव अर रीत।
धरम अटल चारी पगां राज विक्रमादीत।। 9
रगसा करतां देस री, शक मार्‌या दस लाख।
महाकार रगसा करी, जुद्ध में राखी साख।। 10
कार कद्यां नी पड़ सके, मारव देस सुकाल।
हरसिद्धां मां कारका, सदां करे खुसहाल।। 11
इन्दर राजा सरग रा, करे सदा अरदास।
वका पड्‌यां हमचो करे, सद विक्रम री आस।। 12
विक्रम में विक्रम घणा, न्याव नीत अरदान।
वचना रा पाका खरा, धरम धीर गणमान।। 13
बूंदी जन जस जै करें, गाथ गीत गुणगान।
जेसो गण रो गान वे, वैसो वे सनमान।। 14
विद्‌वानां रा बीच में, सोभे विक्रमदीत।
सुणे गुणे सनमान दे, कवियाँ रा कव्वीत।। 15

अन्न सदाँ निपजे धणो, नीव्हे धन री टोट।
नीर छीर घृत छापमा, नी है हिरदे खोट।। 16
विक्रम रा दरबार में, नव रतनां रो ओज।
विद्या रो ऊजास वे, अंधकार रो खोज।। 17
विदत्तमा विदुसी घणी, देस समंदर आर।
मान-पान पूरो वियो, विक्रम रे दरबार।। 18
विक्रम ने बड़जगन कर, घर्यो नाम जुद्धजीत।
हूरज ज्यूँ भलको वियो, वाज्या विक्रमदीत।। 19
राजधजा चहुँ दिस फिरि, नमन करें सब देस।
जस गावें जै-जै करे, होवे नहीं करेस।। 20
धरम धजा धर घूमग्यो, अस्व आर के पार।
उत्तर-दक्खन तई हुओ, विक्रम रो निरधार।। 21
सिंघासन पे बैठतां, मुख ऐसा भलकाय।
हूरज ने औचक करे, परक झांप ढब जाय।। 22
शकां हरा जस थापियों, निरभो कर्यो देस।
विसनू अर आदित्य ज्यूँ, विक्रम नाम नरेस।। 23
सुरजणियाँ नरतन करें, सुरजण गावें गीत।
जस गावें गंधर्व गण, दुसमण होया मीत।। 24
माता हरसिद्धां नमें, नतरा हरखो होवे भोज।
सिवनू हरखो सूरमो, हूरज़ हरखो ओज।। 25
धन-धन माता सीपरा, धन राजा महाकार।
अजबी गजबी रोनका, विक्रम रे दरबार।। 26
आज तलक होयो नहीं, विक्रम जेसो वीर।
जुद्ध नीत अर न्याव में, हरदम राखी धीर।। 27
कैतो होया रामजी, कै तपया विक्रमदीत।
टेकसदा राखी अंटल, राज कर्यो सुध नीत।। 28

मैं गणनायक विनायक, गौरी नन्दन गणेश की वंदना करता हूँ। शिव, विष्णु, ब्रह्मा और धरनीधर शेष जी की वंदना करता हूँ।

धरती पर राजाओं का राजा हुआ, जिसने परमार्थ के कारण अनगिनत कार्य किए। मैं उन्हीं महाराज विक्रमादित्य की कथा सुनाता हूँ। महाराज विक्रमादित्य उनका नाम था। वे उज्जैन के राजा थे। नीति, न्याय के लिए वे बहुत प्रसिद्ध थे।

महाराजा विक्रमादित्य दूसरों के हित के लिए सदा सन्नद्ध रहते थे। इसमें वह अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करते थे। कपटी, छली, विघ्नकारक और दुष्ट बुद्धि के लोग सदा भयभीत रहते थे।

राजा विक्रमादित्य युद्धजीत और दानवीर था। तीनों लोकों में उसका यश विख्यात था। वह गऊ-ब्राह्मणों की पूजा करता था। उनके चरणों में वंदन करता था। दान-दक्षिणा इतनी अधिक देता था कि याचक को अयाचक बना देता था। विद्वानों के मान-सम्मान में कभी भी भूल-चूक नहीं करता था।

उसके दरबार में ज्ञान, गणित, संगीत, धन (वित्त), कवित्त, पुराण और वेदों के कई विद्वान थे। तांत्रिक, मांत्रिक और जांत्रिक तो दरबार में हाथ जोड़कर खड़े रहते थे।

विक्रम संकल्प के दृढ़ थे। प्राण जाएँ किन्तु संकल्प या वचन नहीं टूटने देते थे। उनके राज्य में धर्म चारों चरणों (सत्य, शुचिता, दान और दया) पर अटल था।

उन्होंने देश की रक्षा करते हुए दस लाख शकों को मार भगाया। युद्ध में उनकी साख बनाए रखने के लिए स्वयं महाकाल रक्षक थे। (पद 1 से 10 तक)

महाराजा विक्रमादित्य के राज के समय मालवा में कभी भी अकाल नहीं पड़ता था। माता हरसिद्धि सदा खुशहाली रखती थी। स्वर्ग का राजा इन्द्र भी विक्रमादित्य के समक्ष प्रार्थी रहता था। संकट काल में सहायता की आशा रखता था। विक्रमादित्य में अनेक विक्रम थे। न्याय, नीति, दान, वचनपालन, धर्म, धैर्यवान एवं गणनायक के सभी गुण उनमें थे। बंदीजन सदा यशोगान करते रहते थे। जैसा जिसका बखान होता था, वैसा उसे सम्मान मिलता था। (पद 11 से 14 तक)

विद्वानों के मध्य विक्रमादित्य अत्यंत सुशोभित होते थे। वे सबके कवित्त सुनते थे और उन्हें समझ कर कवियों को यथोचित सम्मान देते थे। उनके राज में सदा खूब अन्न पैदा होता था। धन की कमी नहीं थी। जल, दूध, घी, खूब था। किसी के भी मन में कपट भाव नहीं था।

विक्रमादित्य के दरबार में नवरत्न सुशोभित थे। उनकी विद्या के उजास से अज्ञान का अंधकार नष्ट हो जाता था। विक्रमादित्य के दरबार में विद्योत्तमा नाम की विदुषी भी थी,

जिसका देश समुद्र के किनारे (संभवत: दक्षिण) पर था। उसे विक्रम के दरबार में पूरा सम्मान प्राप्त था।

विक्रमादित्य ने एक महायज्ञ किया था। इससे उसका नाम युद्धजीत हुआ। उनकी आभा सूर्य के समान होने के कारण वे विक्रमादित्य कहलाए। उनकी राजध्वजा चारों दिशाओं में फहराती थी। सभी राजा उनका यशगान करते थे। कहीं भी विद्रोह नहीं था। धर्म ध्वजा लेकर अश्व देश के आर-पार घूम आया था। उत्तर से दक्षिण तक विक्रमादित्य की राज्य सीमा निर्धारित थी।

सिंहासन पर बैठने पर उनकी मुख आभा ऐसी झलकती थी कि सूरज आश्चर्य में पड़कर एक पलक तक अपनी गति रोक लेता था। उन्होंने आक्रमणकारी शकों को पराजित कर उन्हें बाहर किया था, देश को आतंक मुक्त किया था। उनमें विष्णु के समान पराक्रम और सूर्य के समान ओज था, इसलिए वे विक्रमादित्य कहलाए। उनके यशोगान में अप्सराएँ नृत्य करती थी। देवगण गीत गान करते थे। गंधर्वगण यश बखान करते थे। दुश्मन भी उनके मित्र हो गए थे। माता क्षिप्रा धन्य हैं। महाराज महाकाल धन्य हैं। उनके दरबार की शोभा अद्‌भुत-अनुपम थी। आज तक धरती पर युद्ध, नीति और न्यायप्रिय तथा धैर्यवान राजा दूसरा कोई नहीं हुआ। एक तो रामजी हुए या फिर विक्रमादित्य हुए। उन्होंने सदा धर्म की मर्यादा रखी और युद्ध नीति से राज्य किया।

डॉ. श्रीमती इलाघोष ने 'शुक सप्तति में विक्रमादित्य' आलेख में लिखा है- विक्रमादित्य इस भुवनतल का एक स्वनामधन्य अन्वर्थ नाम है। विक्रमादित्य अर्थात् आदित्य सदृश्य तेज, ऊर्जा, प्रताप और विक्रम है जिनका, ऐसे विक्रमादित्य। 'इसी पृष्ठ पर आगे वे कहती हैं- विक्रम और आदित्य ये दोनों पद वैदिक वाङ्मय से आए हैं। विक्रम और त्रिविक्रम पद का प्रयोग विष्णु ने अपने विक्रम (तीन डगों) से समग्र लोकों को नाप लिया था।

इंद विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्य: अतो धर्माणि धारयन्।।

इसी प्रकार विष्णु सहस्त्रनाम में विक्रम और क्रम भगवान विष्णु के नाम कहे गए हैं।

इसी प्रकार आदित्यों के लिए भी कहा गया है- 'धारयंत आदित्यासो जगत्। आदित्य सम्पूर्ण जगत के धारक हैं। विक्रमादित्य में भी आदित्यों के समान जगत को धारण करने की क्षमताएँ थीं। प्रस्तुत लोकगाथा ऋग्वेद और शुकसप्तति के संदर्भों की पुष्टि करती हैं।

इस लोक गाथा में महाराज विक्रमादित्य के उन सभी गुणों का बखान किया गया है, जो रामायणकाल में राम में दर्शाए गए हैं तथा उनके राज्य के प्रशासन के विषय में कहे गए हैं।

चारिहुँ चरण धरम जग माहीं।
पूरि रहा सपनेहुँ अध नाहीं।।

वैसा ही सुराज विक्रमादित्य के सुशासन में भी स्थापित था।

विक्रमादित्य की यह गाथा विक्रमादित्य के विक्रम और आदित्य अर्थात् विष्णु और सूर्य के समान आभावान एवं सामर्थ्यवान सिद्ध करने में लोक की वाचिक परम्परा का अत्यंत महत्त्वपूर्ण आख्यान है। इसके एक-एक पद पर एक-एक आलेख तैयार किया जा सकता है। अबतक उपलब्ध विक्रमादित्य के लोकाख्यानों, गाथा-गीतों, कथा, किंवदंतियों में तथा बेताल पच्चीसी और शुकसप्तति आदि कथाओं की श्रृँखला में यह गाथा अत्यंत महत्त्वपूर्ण गाथा है। इस गाथा को आधार बनाकर मालव मुकुट मणि विक्रमादित्य पर महत्त्वपूर्ण शोध किया जा सकता है।

आर्यावर्त पर बाह्य आक्रमण आदिकाल से होते रहे हैं। आक्रमणकारियों को खदेड़कर देश की रक्षा हेतु समय-समय पर अनेक वीरपुरुषों ने और अवतारों ने उन आक्रांताओं से देश की रक्षा-सुरक्षा कर यश अर्जित किया।

रामायण काल में श्रीराम ने राक्षसों के राजा रावण को तथा उसके वीर योद्धा भाइयों-पुत्रों और पौत्रों से आर्यावर्त की रक्षा की। कृष्ण युग में कृष्ण ने राजसंघ और कालयमन के अत्याचारों से भारत को मुक्त किया। चाणक्य युग में चन्द्रगुप्त मौर्य ने सिकंदर और उसके सेनापति सैल्युकस को पराजित कर भारत से विदेशी आक्रांताओं को खदेड़ा।

पंजाब से काबुल के शक्ति शासक एवं दुर्दांत योद्धा मिनाडर को विदिशा के शंग राजा अग्निमित्र के पुत्र वसुमित्र ने

पराजित कर मालवा ही नहीं, बल्कि पूरे भारत से खदेड़ दिया। इसके पश्चात् शकों ने मालवा तक अपनी सत्ता स्थापित कर ली, जिन्हें बार-बार आक्रमण करने के पश्चात् भी विक्रमादित्य के पिता पराजित नहीं कर पाए थे। उन दुर्दांत शकों को वीर विक्रमादित्य ने अपने रणकौशल एवं बाहुबल द्वारा पराजित कर शक सामंतों को खदेड़कर भारत से बाहर कर शकारी की पदवी धारण की। इसी समय उन्हें साहसांक पदवी से भी विभूषित किया गया। उन्हीं शकों को विक्रमादित्य से चार सौ वर्ष पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पराजित किया और उसने भी विक्रमादित्य की उपाधि धारणकर ली। दशपुर के ओलिकर राजा प्रकाश धर्मा ने हूण राजा तोरमाण और उसके पुत्र यशोधर्मन ने हूण मिहिरकुल को पराजित किया। इन सबके नाम इतिहास में यशस्वी वीरनायकों के रूप में अंकित हैं। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के पश्चात् गुप्तवंश के कुमारगुप्त, स्कंदगुप्त आदि ने सिंह विक्रम, अजित विक्रम, विक्रमादित्य आदि विरदों को धरण किया। उनके बाद वातापी और कल्याणी के चालुक्यों ने भी विक्रमादित्य नाम को पीढ़ियों तक जोड़ने का क्रम बनाए रखा। यह उपाधि धारण करने वाला अंतिम राजा हेमू था।

भारत पर बाहरी आक्रांताओं को जिस-जिस भी युग-नायक ने अपने पराक्रम और सूझ-बूझ से खदेड़कर बाहर किया उनमें शकारि महाराज विक्रमादित्य का नाम सर्वोपरि है। युग पुरुष राम ने भारत को रावणीय आतंकियों से मुक्त किया। वे नाम से उपाधि बन गए। फिर विशिष्ट से सामान्य होते गए। आगे चलकर वे लोक व्याप्त हो गए। वे फिर उपाधि से नाम बन गए। कृष्ण चंद्र ने पहले जरासंघ को पछाड़ा और फिर उसके निमंत्रण पर काल-यमन को मारा। कृष्ण भी नाम से उपाधि बने और फिर उपाधि से नाम बन गए। विक्रमादित्य ने शकों को खदेड़कर बाहर किया। विक्रमादित्य भी पहले उपाधि बने। फिर उपाधि से नाम बन गए। इसी को लोक व्यापीकरण कहते हैं। नाम से नाम की यह यश यात्रा इतनी सहज नहीं होती। हूणारि हर्षवर्द्धन ने भी दशपुर जनपद से हूणों को खदेड़ बाहर किया, किन्तु वे उपाधि नहीं बन सके। इसका कारण था हर्षवर्द्धन का लोकमान्य नहीं हो पाना। हर्षवर्द्धन राजा बने रहे, वे लोक के दायरे में नहीं आए। वर्तमान युग में महात्मा गाँधी का उदाहरण बहुत स्पष्ट है। वे लोक से जुड़ गए। लोक स्वीकृत हो गए। वे महात्मा हो गए। वे उपाधि बन गए। लोक से जुड़कर एकमेव हो जाना ही मनुष्य को महनीयता प्रदान कर सकता है। ऊँची कूद से पहले थोड़ा झुकना पड़ता है। बड़ा होने के लिए छोटा होना पड़ता है। भगवान विष्णु का वामन रूप इसी बात का उदाहरण है। महाराजा भोज ने अपने काल में भारत पर हुए प्रथम तुर्क आक्रमण को निष्फल किया। वे उपाधि नहीं बन सके। उनके आदर्श विक्रमादित्य थे। भोज विक्रमादित्य की समकक्षता तो प्राप्त कर गए। उनसे आगे नहीं बढ़ सके। वे लोक पुरुष बन गए। दिव्यपुरुष नहीं बन सके। विक्रमादित्य के बाद भी भारत पर कई आक्रमण हुए। अपने समय के राजाओं ने उन्हें खदेड़ने और उनके आक्रमणों को निष्फल करने में अपने बल और पराक्रम का खूब प्रयोग किया। वे सफल भी हुए। सबने अपना यश विक्रमादित्य उपाधि में निहित कर लिया।

यह सिलसिला भारत पर हुए बाद में कई आक्रमणों के समय तक भी चला, किन्तु बाद में ऐसा कोई एकछत्र सम्राट नहीं हुआ जो विदेशी आक्रांताओं को भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने से रोक पाता। अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ने के लिए 1857 की क्रांति का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। बाद में अनके सेनानियों की शहादत और महात्मा गांधी के सत्याग्रहों के प्रयोग का परिणाम अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ने में महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। विदेशी आक्रांताओं को खदेड़ने में विक्रमादित्य का नाम सर्वोपरि माना जाता है।

लोक नायक विक्रमादित्य ने इतिहास को जैसा छकाया है, वह अद्‌भुत और अनुपम है। लोक ने पूरे सम्मान के साथ अपने वीर नायक को अपना आदर्श मान लिया। वीर विक्रमादित्य ने वचन दृढ़ता और न्याय निष्ठा की ऐसी यश पताका फहराई कि उससे कई पीढ़ियाँ यशस्वी हो गई। उसी परम्परा में राजाभोज ने फिर एक बार वीर विक्रमादित्य की याद ताजा कर दी। विक्रमादित्य और राजा भोज के मध्य का समय शून्यकाल जैसा हो चुका था। भोज ने उस शून्यता को तोड़ा।

वीर विक्रमादित्य पर अनेक ग्रंथों की रचना की गई। इनमें बुधस्वामी रचित वृहत्कथा श्लोक, क्षेमेंद्र की वृहत्कथा मंजरी, सोमदेव का कथासरित्सागर सबसे अधिक चर्चित हुई

और इन्हीं ग्रंथों में से बेताल पच्चीसी को जितनी प्रसिद्धि मिली उतनी ही प्रसिद्धि शुकसप्तति या किस्सा तोता-मैना को भी मिली। सिंहासन बत्तीसी भले ही विक्रमादित्य की दिव्यता को लोक स्थापित करने वाली कथाएँ है, किन्तु इन कथाओं के वास्तविक प्रेरक लोकपुरुष राजा भोज हैं। जहाँ तोता- मैना की कहानियाँ विक्रमादित्य की लोक ख्याति को प्रमाणित करती हैं और उन्हें लोक में सहजता प्रदान करती हैं, वहीं बेताल पच्चीसी और सिंहासन बत्तीसी उन्हें दिव्य बना देती हैं। सिंहासन बत्तीसी तो राजा भोज के लिए लिखी गई, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। इसीलिए जैन कवि मालदेव ने अपने ग्रंथ भोज चरित्रराहा में कहा भी है-

सिंहासन बत्तीसी की कथा सरस अवदान।
राजा भोज न होत तऊ, को तमु जानत वात।।

सिंहासन बत्तीसी ने तो विक्रमादित्य को लोकपुरुष से ऊपर दिव्य पुरुष बना दिया है।

लोक साहित्य में विक्रमादित्य को वीर, साहसी, देवप्रिय, शक्तिमान, न्यायप्रिय, सत्यवादी, प्रजापालक एवं वचन धारक के रूप में बखाना गया है। उनमें अनेक देव शक्तियां मौजूद थीं। तंत्र-मंत्र के वे सिद्ध थे। अनेक सिद्धियाँ उनके वश में थीं। भूत-पैशाच, डाकनियाँ उनके वश में थी और उनके संकेत मात्र से प्रकट हो जाती थी। वे अपने पराक्रम से इन्द्र तक को भयभीत करने की क्षमता रखते थे। ऐसी अनेक कथाएँ, गाथाएँ और गीत लोक में प्रचलित हैं। ऐसा ही एक लोक संदर्भ दृष्टव्य है-

छप्पन को साल, चारी खूंट अकाल।
परजा वई बेहाल, मचगी त्राही-त्राही।
रगसा करों हे इन्दर देवता, रगसा करो महाकाल।
महाकाल को व्यो आदेश, जागो राजेश।
इन्दर ने ललकारो, मालवा ने काल ती उबारो।
विक्रमादित्य ने ताणी कमाण।
कमान पे चढ़ायो तीर, धन्य-धन्य विक्रम वीर।
विक्रमादित्य ने छोड़या बाण।
एक दाण नी हजार दाण।
वादर्‌या में करि दिया सुराख।
खूब वरस्यो पाणी, खूब पाकी साख।
इन्दर राजा परगट्‌या, पवन देव परगट्‌या।
विक्रमादित्य की करि जै जैकार।
वरसी गया फूलड़ा, मिटि गयो कार।।

कहा नहीं जा सकता कि यह लोक संदर्भ स्वतंत्र गीत है अथवा सचमुच किसी नाट्य कथा का अंश भाग। जो भी हो यह लोक संदर्भ विक्रमादित्य की प्रजापालन चिन्ता के साथ-साथ उनके दिव्य पराक्रमी चरित्र को भी प्रकट करता है। ऐसी दिव्यता बेताल पच्चीसी और उससे भी अधिक सिंहासन बत्तीसी में प्रकट होती है। यदि हम मालवा के दो महान राजा वीर विक्रमादित्य और राजा भोज से तुलना करें, तब मैं निःसंकोच कहूँगा कि विक्रमादित्य लोक में दिव्यपुरुष के रूप में स्थापित है तो भोजराज लोकपुरुष के रूप में ख्यात हैं।

झाबुआ अंचल से एक लोक कथा मिली है। इतिहास अथवा संस्कृत ग्रंथ विक्रमादित्य के पिता अथवा माता तथा भाईयों के विषय में कुछ भी कहता हो, लोक अपने ढंग से सोचता और बखानता है। कथा कहती है-

भीलों का राजा था गंधर्व। वह भिल्ल गोत्र का था। चारीखूंट उसका रौब था। बड़े-बड़े राजा उसके अधीन थे। उसने चार विवाह किए। एक छत्राणी जिससे वीर विक्रमादित्य पैदा हुआ। दूसरी ब्राह्मणी, ब्राह्मणी से वररूचि पैदा हुआ। भरथरी, विक्रमादित्य का माँ जाया भाई था। रखेल खवासण से बेताल पैदा हुआ। तीसरी रानी बनियानी थी। उससे शंकु पैदा हुआ। चौथी रानी शुद्रा थी, उसे भाटड़ा पैदा हुआ। वही बाद में भट्ट कहलाया। एक भिल्ल रानी से धन्वंतरी नामधारी बेटा पैदा हुआ। खवासण राणी नहीं थी। रखेल थी। तीन रानियाँ और भी थीं। उनकी संतानों का यश नहीं फैला। विक्रमादित्य के पैदा होते ही उसके मुँह पर सूरज का भलकारा था। उस दिन दितवार भी था। इस कारण उसका नाम 'दितवार्‌या' रखा गया। दितवार्‌या बहुत वीर था। उसने खूब तपस्या तपी। खूब सिद्धियाँ वश में करी। उसके पिता भीलों में छत्री थे। छत्राणिमां और छत्री बाप का बेटा दितवारिया असल छत्री था। भरथरी भी भाई दितवार्‌या के मुकाबले का था। दोनों भाईयों में खूब प्रेम था। भरथरी बड़ा था। वह राजा बना। बाद में उसकी रानी ने उसके साथ धोखा किया। उसे बैराग हो गया। खूब तपस्या तपी और कुल का जस

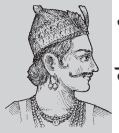

धन्य किया। भरथरी के बाद दितवार्‌या राजा हुआ। वह बहुत वीर था। राजा बनने के बाद उसका नाम विक्रमादित्य हुआ।

विक्रमादित्य राजाओं का राजा था। देवता उसके मित्र थे। उसका सिंहासन इन्द्र के बराबरी में लगता था। बत्तीस पुतलियों का सोने और रत्नों से जड़ा सिंहासन उसे इन्द्र देवता ने दिया था। महाकाल के वह साक्षात् दर्शन करता था। कालका ने उसको अपनी तलवार दी थी। वह न्याय और सत्य का देवता था। दुश्मन उसके नाम से कांपते थे। विदेशियों को उसने मार भगाया। उसकी माँ चम्पणी थी। चम्पावर्ण उसका रूप था। उसका बाप बलवान था। विक्रमादित्य में दोनों के गुण थे।

ऐसी लोक धारणा के धारक वीर विक्रमादित्य को लोक में इसीलिए दिव्य माना गया है। वह लोक पूज्य हो गया। लगभग इक्कीस सौ वर्षों के बाद भी उस दिव्य पुरुष की यशकीर्ति कम नहीं पड़ी। वीर विक्रमादित्य सचमुच राजाओं का राजा था। वह परम पराक्रमी, शकारि था। न्याय का प्रमाणिक आदर्श लोक मानस का दिव्य पुरुष आज भी भारतीय संस्कृति का प्रेरक पुरुष है। वीर विक्रमादित्य लोक में दिव्यता प्राप्त कर किंवदंती पुरुष के रूप में सदा-सदा जीवित और जीवंत बना रहेगा।

यदि मैं विक्रमादित्य को दिव्य पुरुष कहता हूँ तो इसका आधार यह लोक कथा भी है, जो विक्रमादित्य की दिव्यता को प्रमाणित करती है।

धरती पर धर्म की मान्यता घटने लगी। पाप का प्रचार बढ़ने लगा। सत्य, शील, दया और दान लोगों के आचरण से विदा हो गए। प्रजा त्राहि-त्राहि कर उठी।

धरती पर पाप का भार बढ़ गया। धरती ने भगवान महाकाल के दरबार में पुकार लगाई। महाकाल ने धरती को आश्वस्त किया। राजा महेन्द्रादित्य उज्जैनी का राजा था। उसने महाकाल की तपस्या की। महाकाल ने उसे मनवांछित वर मांगने के लिए कहा। महेन्दादित्य ने कहा- भगवान! यह धरती आपकी कृपा चाहती है। महापापों से उसका तनमन व्याकुल है। आप मुझे ऐसा पुत्र प्रदान करें जो धरती को पाप-तापों से मुक्त कर सके। भगवान महाकाल ने राजा को वरदान दिया। तुम्हें मेरे अंशरूप से एक परम तेजस्वी पुत्र की प्राप्ति होगी। वही धरती को समस्त पापों से मुक्त करेगा।

भगवान के आशीर्वाद से महेन्द्रादित्य को पुत्र की प्राप्ति हुई। वही पुत्र शिव स्वरूप विक्रमादित्य कहलाया। महेन्द्रादित्य के कई नाम थे। वही गंधर्व सेन भी था। उज्जैन के राजा की भीलों पर विशेष कृपा थी। उसकी एक रानी भिल्ल गोत्र की थी। इसलिए कुछ लोग विशेषकर भील समुदाय उन्हें अपने समुदाय से जोड़ता है। यशस्वी का यश सब लेते हैं। यही कथा वृहत्कथा और कथा सरित्सागर में भी किंचित पाठ भेद के साथ कही गई है। इस कथा का मूल उद्‌गम जो भी हो। इसका आशय स्पष्ट है कि विक्रमादित्य एक अवतारी पुरुष थे। शिव स्वरूप एवं शिव अंश थे।

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानम धर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।

कथा के अनुसार उन्होंने धरती पर अवतार लिया। अपनी विरद का निर्वाह किया और धरती पर सत्य, शील, दया, दान, न्याय और निर्भयता की स्थापना कर अपना अवतार काल समाप्त होते ही शिवलोक गमन कर गए।

ऐसे अनेक प्रसंग हैं जो विक्रमादित्य को लोक मानस में दिव्यता प्रदान करते हैं। उनकी दिव्यता राम, कृष्ण जैसे अवतारी युग पुरुषों जैसी ही सर्वकालिक एवं चिरंजीवी है। लोक ने और रचनाकारों ने अपने बखानों में भी विक्रमादित्य को दिव्यपुरुष के रूप में ही प्रकट किया है। वे सचमुच दिव्यपुरुष ही थे।

मालवी लोक साहित्य की स्यमंत माणि

महाराज भोज की गाथा

इतिहास हमारी विरासत है। हमारे अतीत का दर्पण है। वह हमें हमारे वर्तमान को संवारने का पाठ पढ़ाता है और भविष्य के निर्धारण का मार्ग प्रशस्त करता है। इतिहास को नकारना, अस्वीकारना और कपोल कल्पित कहना अथवा झूठ का पुलंदा कहकर उसका अपमान करना ठीक वैसा ही है,

जैसा अपनी वंशावली पर प्रश्न चिन्ह लगा देना अथवा यह कह देना कि यह मेरे परदादा नहीं थे, ये तो मेरे बड़े भाई के परदादा थे। ऐसा कहकर हम स्वयं को लावारिस कह बैठते हैं।

इतिहास और लोक साहित्य का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। दोनों एक ही यात्रा पर साथ-साथ चलते हैं। दोनों का लक्ष्य और साक्ष्य एक जैसा ही होता है। अन्तर केवल इतना होता है कि इतिहास लिखने वाले विद्वान बहुधा किसी राजा, महाराजा या जागीरदार के आश्रित रहे होते हैं। उन्हें जागीरें, इनाम, इकराम भी मिलते रहे, इस कारण उनके वर्णन आदि अपने आश्रयदाता के पक्ष में रहे हों तो क्या आश्चर्य।

लोक साहित्य निष्पक्ष रूप से अपनी बात कहता चला आ रहा है। उसके गीतों, कथाओं, गाथाओं, किंवदंतियों कहावतों तथा माच और भुवाई के खेलों के लिखे गए नाटकों आदि में इतिहास के सूत्र हमें मिल जाते हैं।

पुराण और महाकाव्य भी तो हमारा इतिहास ही है। भले इतिहास में पुराण नहीं हों, किन्तु पुराणों में इतिहास निहित है। उस युग में इतिहास लेखन का यही माध्यम रहा। इस कारण हमें पुराणों को केवल मिथक कहकर नहीं नकार देना चाहिए। उनमें इतिहास के सूत्र खोजने होंगे।

इतिहास जब भी अपना मार्ग भटककर चौराहे पर खड़ा हो जाता है, तब लोक साहित्य ही उसकी अंगुली पकड़कर उसे सही मार्ग का बोध करवाता है। इसी प्रकार जब लोक साहित्य ठिठककर खड़ा हो जाता है, तब इतिहास उसे चेतमान कर देता है। इस प्रकार इतिहास और लोक साहित्य एक दूसरे के संचेतक हैं। एक और है तीसरी आँख। जब इतिहास और लोक साहित्य दोनों मिलकर भी किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाते, तब पुरातत्व दोनों की गुत्थी सुलझाकर त्रिवेणी संगम का तीर्थधाम स्थापित कर देता है।

यदि स्पष्ट कहूँ तो कहना होगा कि यदि हम राजा-महाराजाओं के द्वारा अपनी प्रशस्ति में लिखवाए गए काव्य, कथनों, शिलालेखों, सिक्कों, परवानों आदि को प्रमाणिक मानकर इतिहास का सृजन करने में अपनी योग्यता सिद्ध करते हैं, तब लोक के साक्ष्य को कैसे नकार सकते है? पीढ़ी-दर-पीढ़ी श्रुति-स्मृति की यह लोक परम्परा कंठ से कंठ पर जीवित लोक गायकों की अधर-धरी सम्पदा भी उतनी ही प्रमाणित है, जितना इतिहास की अन्य अनेक सामग्री।

प्रस्तुत गाथा विक्रमादित्य के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालने वाली अब तक उपलब्ध लोक गााथाओं में सर्वोपरि है, बल्कि अनन्य है। मालवी लोक साहित्य में अंश-अंश गाई-सुनाई जाने वाली यह लोक गाथा किसी भी एक लोकगायक अथवा लोक संग्राहक से प्राप्त नहीं की गई है।

संधारा के लोक ऋषि श्री दलोल सिंह जी यादव ने सन् 1989 ई. में भर्तृहरि पर एक खण्ड काव्य पुस्तक लिखी, तब कुछ अंश मैंने उनसे प्राप्त किए थे। फिर भानपुरा के देवी सिंह जी 'देव' ने मेरे आग्रह पर कुछ अंश सुनाए। इसी प्रकार यह गाथा कई लोकाराधकों द्वारा मैंने सुनी-लिखी और फिर इसी कथा क्रम से इसे संवार कर एक सम्पूर्ण गाथा का स्वरूप दिया। प्रयत्न यह किया है कि इसकी निरन्तरा में जोड़ नहीं दिखे। यह भी मैं कह देना चाहता हूँ कि निरन्तरता बनाने के लिए मैंने अपनी ओर से एक भी शब्द या पंक्ति-साखी इसमें नहीं जोड़ी है। मैं ऐसा करना लोक साहित्य की निर्मलता को प्रदूषित करने जैसा अपराध मानता हूँ। जैसा मिला वैसा संवारकर लोकर्पित कर देना मात्र ही उचित है, ऐसा मैं मानता हूँ।

इस गाथा में जहाँ पारम्परिक रूप से सरस्वती वंदन किया गया है, वह क्रमिक रूप से उज्जैन नगरी महाकाल और मालवा की प्रशस्ति का व्याख्यान करता हुआ जब आगे बढ़ता है, तब ऐसा लगता है मानो गंगौत्री से निकलकर गंगा भारत भूमि को रस सिंचित करने लगी हो। चौदहवीं साखी से ही महाराज विक्रमादित्य का उल्लेख आ जाता है। यह ठीक वैसा ही है जैसे किसी माच या भुवाई के खेल में सूत्रधार देववन्दन करता हुआ और अपने प्रदर्शित किये जाने वाले नाटक का पूर्वाभास देकर तत्काल पर्दा उठाकर नाटक का प्रारम्भ कर देता है।

गाथा में विक्रमादित्य की धर्मनिष्ठा, वचन पालन, वीरता, सूझ-बूझ, विद्वानों का आदर तथा प्रजापालन का गरिमामय स्वरूप प्रकट किया गया है। 248 साखियों की यह गाथा मालव मुकुट मणि विक्रमादित्य के जीवन चरित्र को गीतों, कथाओं,

किंवदंतियों के माध्यम से अत्यंत सहज भाव से सरल भाषा में और रूचिकर शैली में रूपांकित करती है।

विक्रमादित्य के जन्म के कारण एवं करण दोनों का सतर्क वर्णन यह गाथा करती है।

विक्रम की इस गाथा में भर्तृहरि के जन्म और फिर वैराग्य लेकर राज्य सत्ता विक्रम को सौंपने का उल्लेख इस गाथा को परिपक्वता प्रदान करती है। कुछ विद्वान कह सकते हैं कि इस गाथा में भर्तृहरि के जन्म आदि का उल्लेख क्यों आवश्यक था। उसका उत्तर यह गाथा स्वयं ही दे देती है।

इसी गाथा में विक्रमादित्य की एक रानी सतवंती का उल्लेख बहुत ही महत्त्वपूर्ण संदर्भ है। वह संदर्भ फिर एक धर्म योगी भरथरी को कथा में प्रवेश देता है। इस कारण इस गाथा में भर्तृहरि का संदर्भ एवं गाथांश जुड़ना आवश्यक था। यहीं संदर्भ भर की गाथा में भी है।

इतिहास साक्षी है कि महाराजा विक्रमादित्य अपने ज्येष्ठ भ्राता भर्तृहरि के राज्य त्याग के पश्चात् ही राजगद्दी पर विराजे थे, इस कारण वह काल दो श्रेष्ठ व्यक्तित्वों का संधिकाल था। इस कारण भी भर्तृहरि का उल्लेख इस गाथा में अवश्यंभावी एवं अपरिहार्य माना जा सकता है।

यह गाथा भले ही बहुत बड़ी नहीं है किन्तु विक्रमादित्य के चरित्र, मालवा के यशोगान, तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालने वाले प्रमाणिक दस्तावेज है, और सत्ताधारियों के लिए आचार संहिता के रूप में प्रस्तुत है।

मूल गाथा

सुमरूँ गणक विनायको, गवरी नंद गणेस।
सिव विसनू धरमा नमूँ, धरणी धारक सेस ।।1।।
नगर उज्जैणी मालवो, महाकार रो देस।
कल-कल वेवे सीपरा, नी हे करह करेस।।2।।
हरया भरया खेत हे, सुरंग सुरंगो वेस।
छई ऋतुआँ मन भावणी, मझ मारव रे देस।।3।।
घंटी अर घड़ियाल धुन, शंख घोस रो नाद।
नगर उज्जैणी में नहीं, पूजा पाठ विवाद।।4।।
पेल परोड़े वे अठे, सिपरा में असनान।
मंदर-मंदर सुण पड़े, सुभ रा मंगलगान।।5।।
जैसी जण री छावना, वैसी करे अराधा।
धरम नेम ने पारता, नहीं कोई झटको बाधा।।6।।
पेहरो हे बेताल रो, जाग्रत भैरव नाथ।
मात कारका री मेहर, हरसिद्धाँ रो हाथ।।7।।
कल-कल वेवे सीपरा, नरमद निरमल नीर।
स्नान ध्यान पापो कटे, मीटे तन-मन पीर।।8।।
बारह ज्योतिरलिंग में, जाग्रत सिव रो धाम।
देवत आ दरसन करे, राखे अठे मुकाम।।9।।
चारी खूँटा हे अठे, अमन चैन रो वास।
रोग सोक व्यापे नहीं, सिवजी पूरे आस।।10।।
मूरख लक्खण हीण रो, अठे नही है काम।
अणभण्यो दीखे नहीं, विद्वाना रे धाम।।11।।
क्रसन सुदामा री कथा, जाणे जगत जहान।
संदीपनी रे ज्ञान री, लीखी कथा पुरान।।12।।
एसो मारव देस हे, उज्जैणी रो धाम।
कण-कण में घनस्याम हे, सबद-सबद में राम।।13।।
धरती पे राजो वियो, राजा रो महाराज।
परमारथ रे कारणे, करया अणगण काज।।14।।
कथा सुणाऊँ हाँचली, उज्जैणी रे बीच।
नीत न्याव राजो वियो, राजा विक्रमजीत।।15।।
प्राणा री परवा नहीं, चेतन्यो पर हीत।
कुचमान्या कुचमातिया, रे हरदम भेभीत।।16।।
जुद्ध जीत जाणे जगत, दानवीर तिन लोक।
गो-बामण ने पूजतां, दे चरणा में धोक।।17।।
दान दच्छना खूप दे, करे अजाचो मूल।
विदवानां रे मान में, कद्यां करे न भूल।।18।।
ज्ञान गणित विज्ञान जुद्ध, जोतिस आजुरवेद।
नीत गीत संगीत धन, कवित पुराण अर वेद।।19।।
तंतर मंतर जंतरा, हे जतरा निरधार।
हाथ बांध अबा रहे, विक्रम रे दरबार।।20।।
जीव मिटे जिद नी मिटे, नीत न्याव अर रीत।
धरम अटल चारी पगां, राज विक्रमादीत।।21।।
रगसा करतां देस री, शक मार्‌या दस लाख।

महाकार रगसा करी, जुद्ध में राखी साख।।22।।
कार कद्यां नी पड़ सके, मारव देस सुकाल।
हरसिद्धां मां कारका, सदां करे खुसहाल।।23।।
इन्दर राजा सरग रा, करे सदा अरदास।
वका पड़यां हमचो करे, सद विक्रम री आस।।24।।
विक्रम में विक्रम घणा, न्याव नीत, अरदान।
वचना रा पाका खरा, धरम-धीर गणमान।।25।।
बंदी जन जस जै करें, गाथ गीत गुणगान।
जेसो जण रो गान वे, वैसो वे सनमान।।26।।
विद्वानां रा बीच में, सोभे विक्रमदीत।
सुणे गुणे सनमान दे, कवियाँ रा कव्वीत।।27।।
अन्न सदाँ निपजे घणो, नीव्हे धन री टोट।
नीर छीर घृत धाप मा, नी हे हिरदे खोट।।28।।
विक्रम रा दरबार में, नव रतनां रो ओज।
विद्या रो ऊजास वे, अंधकार रो खोज।।29।।
विदुत्तमा विदुसी घणी, देस समंदर आर।
मान-पान पूरो वियो, विक्रम रे दरबार।।30।।
विक्रम ने बड़जगन कर, धर्‌यो नाम जुद्धजीत।
हूरज ज्युँ भलको वियो, वाज्या विक्रमदीत।।31।।
राज धजा चहुँ दिस फिरि, नमन करें सब देस।
जस गावें जै-जै करें, होवे नहीं करेस।।32।।
धरम धजा धर घूम ग्यो, अस्व आर के पार।
उत्तर-दक्खन तई हुओ, विक्रम रो निरधार।।33।।
सिंघासन पे बैठतां, मुख एसो भलकाय।
हूरज ने औचक करे, परक झांप ढब जाय।।34।।
शकां हरा जस थापियो, निरभो कर्‌यो देस।
विसनू अर आदित्य ज्युँ, विक्रम नाम नरेस।।35।।
सुरजणियाँ नरतन करें, सुरजण गावें गीत।
जस गावें गंधर्व गण, दुसमण होया मीत।।36।।
माता हरसिद्धां नमें, नत रा होवे भोज।
विसनू हरखो सूरमो, हूरज हरखो ओज।।37।।
धन-धन माता सीपरा, धन राजा महाकार।
अजबी गजबी रोनका, विक्रम रे दरबार।।38।।
आज तलक होयो नहीं, विक्रम जेसो वीर।
जुद्ध नीत अर न्याव में, हरदम राखी धीर।।39।।
कै तो होया रामजी, कै तपया विक्रमदीत।
टेक सदा राखी अटल, राज कर्‌यो सुध नीत।।40।।
गाथा विक्रम दीत री, पूरी कभी न जाय।
ये ढाबूँ वें छूट जै, बुद्धि झोला खाय।।41।।
जनम कथा अद्‌भुत कथा, सुण जो ध्यान लगाय।
करनी तो महाकार री, कथनी सुरसत माय।।42।।
धरती रा पुत्र परगटया, आरत करी पुकार।
मात-पिता तपसा तपी, विक्रम रे औतार।।43।।
दसरथ कौसल्या करी, बरसाँ बरस अराध।
जद जातां पूरण वई, कौसल्या री साध।।44।।
देवकी अर वसुदेव ने, आरत करी पुकार।
क्रसन चन्द्र ने ले लियो, धरती पे औतार।।45।।
जद भी आते धरम पे, पाप करम रो भार।
खुद विस्नू भगवान जी, लेय मनुज औतार।।46।।
धरती पे जद बढ़ गयो, म्लेच्छाँ रो उत्पात।
तद विक्रमदित औतर्‌या, धन्न करयो पितुमात।।47।।
महाकार दरबार में, इन्दर करी पुकार।
म्लेछाँ रो बढ़वा लग्यो, धरती ऊपर भार।।48।।
जग्य हवन सब छूट्या, वटर्‌या तीरथ धाम।
दुस्ट म्लेछा ने कर्‌यो, भारत भूम मुकाम।।49।।
मनुज रूप धारण करो, प्रगटो-प्रगटो देव।
वचना री पत राख लो, राखो सत री देव।।50।।

गर्ध भिल्ल उज्जैन रो राजा। लोग कहें वो भिल्ल समाजा।।51।।
जुद्ध भूम में खड़ग चलावे। बैरी रा छक्का छुड़वावे।।52।।
तीर कमंठा खाँदे साजे। न्हार सरीखो रण में गाजे।।53।।
सबद-सबद पे बाण चलावे। एक व्याण भी चूक नी पावे।।54।।
न्याव धरम ती राज चलावे। अपराधी कोई बच नी पावे।।55।।
वन पसुआँ वन रो रखवारो। गरीब गुरब रो अटल सहारो।।56।।
असल भिल्ल छतरी रो जायो। इन्दर सरखो भलके रायो।।57।।
कोई गंधर्व सेन निरधारे। महेन्द्रादित केह कोई पुकारे।।58।।
एक राव रा अगणित नामा। बेहन बेटियाँ केहवे मामा।।59।।
राजा री एक छतरी राणी। मिरंगा नयणी मधरी वाणी।।60।।
सिव पूजे गौरां ने ध्यावे। गरीब गुरब ने सदा जिमावे।।61।।
करे चन्द्रव्रत सूरज पूजे। सिपरा जल रो अरध चढ़ावे।।62।।
सुगना दरसी रूप रूपारो। मुख पे थो सत रो भलकारो।।63।।
चम्पा वररणी काया सारो। चम्पावती नाम निरधारो।।64।।

एक पूत रे करणे, मन चित रवे उदास।
महाकाल किरपा करो, पूरण कर दो आस।।65।।
गंधर्व सेन राजो सदा, राणी रे संग जाय।
एक पूत री आस लें। नित-प्रत अरज लगाय।।66।।
एक रात परचो दियो, सिवजी सपने आय।
चम्पा थारी कोख में, म्हारो अंस समाय।।67।।

चम्पा थारे भाग नहीं पूता। थारे ताप-बल करूँ सपूता।।68।।
बारह बरस तइं पूत कुल जीवे। बरस तेरहवें प्राण हरीबे।।69।।
सूरज री करजे तू पूजा। पूत मीलसी अवसां दूजा।।70।।
सूरज सरखो ते जल जाणो। दानवीर ज्युँ करण बखाणो।।71।।
हरिचन्द ज्युँ वचन परवीणा। न्याव धरम में रहे न हीणा।।72।।
अंस वंस रो जस परभावे। जग में विकरम खूब बढ़ावे।।73।।
सपनो खुलयो ब्रहम परभातां। राजा ती केह दी सब बातां।।74।।
सुख-दुख दोई मेरा होया। सपना रो महत्तम संजोया।।75।।
समय काल एक पूत अवत्र्यो। सिव रो वचन सकारथ क्र्यो।।76।।
बरस बारहवों जे टर जावे। जग में कंवरो नाम कमावे।।77।।
कै तो माथे छत्र धरावे। कै भभूत मल जोग रमावे।।78।।
सिव रो तिलक भाल पे दमके। आँखाँ बीच सूरजो भलके।।79।।
सिवजी रो अवतारो जाणू। महाजोग रो अरथ बखाणू।।80।।
राजा राणी हत्दै विचारे। भरथरी रो भविस्स निरधारे।।81।।
सिव री माया सिवजी जाणे। सिव रो कह्यो व्हे परमाणे।।82।।
चम्पावती चित धीरज धर्यो। हाथ जोड़ सिवजी सीमर्यो।।83।।
गंधर्वसेन हिरदै हरसायो। महाकार प्रभु वंस चलायो।।84।।

राजा राणी ने करी, महाकार रे धोक।।85।।
हे जगपति सद मेट जो, हमरा रोग अर सोक।।86।।
सूरज री तपसा तपी, चम्पावती चित्त धार।
तूठो-तूठो तेज जी, जग रा सिरजनहार।।87।।
एक पूत री आस हे, दे देओ बगसीस।
तेजल वेवे आप ज्युँ, सिवजी री आसीस।।88।।
सूरज देवत परगटया, सुण ली आरत पुकार।
चम्पावती निहची खो, पूरण वे चितधार।।89।।
जो चित धार्यो पूरसाँ, सिवजी रे आदेस।
थारी कोरवां अवतराँ, समय पूरताँ ऐस।।90।।
महाकार दरबार में, गंधर्वसेन नित जाय।
हाथ जोड़ विनती करें, आरत अरज लगाय।।91।।

दीरघ आयुस पूत दो, तूठो हे महाकार।
किरपा राखो जग घणी, हे साँचा दरबार।।92।।
तन थाक्यो मन ऊचटयो, चित नहिं आवे धीर।
वारिस बगसो राज रो, मेटो मन री पीर।।93।।
महाकार परचो दियो, राखो मन वीसास।
न्याव नीत मति छोड़ जो, पूरण वेसी आस।।94।।
थारी आरत सूणता, विधि कर्यो निरधार।
चम्पावती री कोख ती, सूरज रो औतार।।95।।
धन्न-धन्न राजो वियो, मिटया सबै विसाद।
खूब धापमा पा गयो, सिवजी रो परसाद।।96।।
सुभ मुहरत सुभ पेहर में, सुभ दिन थो दितवार।
भुवन भास्कर ने लियो, धरती पे औतार।।97।।
सुफल सुकारत वई गई, चम्पावती री कोख।
हरस-हरस मन चित वियो, मिट्या हमारा सोक।।98।।
दतिवार ने जनमयो, चम्पावती रो पूत।
भिल्ल कहें दितवारियो, नराई कहें सिवदूत।।99।।
बामण ने ग्रह सोधताँ, नाम धरयो आदित्त।
गंधर्वसेन रे मुख कढ़यो, औचक सतरूजित्त।।100।।
सातई राणी मन मुदित, सुण होवे हरसित्त।
चम्पावती पुरके घणी, मुदित वई मनजित्त।।101।।
छत्तीस गुण चौसठ करा, विक्रम से औतार।
धरम धुरंधर परगट्यो, सत्-मत राखा हम।।102।।
सात राणियाँ थी राजा री, सातहिं सातों जात।
फरक न राखे तनक भी, दो पुत्तर सत मात।।103।।
रेह-रेह खोरे राखती, करती लाड़ दुलार।
चन्दन बण्यो पारनो, मचका दे सुखसार।।104।।
हल-मल गाती लोरियाँ, करती गीताचार।
विधना ने किरपा करी, सुण ली आर्त पुकार।।105।।
बामणी रे वररूचि वियो, बनियाणी रे शंकु।
सुदरा रे बेताल भट्ट, भिल्लणी रे धनवंतु।।106।।
सतधरी रे वराहमिहिर, खवासण रे भट्ट।
सताई राणी रे वियो, आणद ठट्ठम ठट्ट।।107।।
ब्राहमणी ने बरमा जी पूज्या, विसनू के बनियाणी।
सुदरा पूज्यो भैरव देवत, सतधरी सिवदाणी।।108।।
सातई राणी रे बरमा जी पूज्या, विसनू के बनियाणी।
जण ने जेसा देवत पूज्या, वैसी वई भराणी।।109।।

छै राणियाँ परणी कहे, सतमी कहें रखैल।
फरक नहीं सनमान में, सातई में घण मेल।।110।।
खवासण थी सातमी, सब री खासमखास।
जण जायो भाटड़ो ऊ, कीरत भणे सुभास।।111।।
एक-एक ती बढ़ गुणी, भाँत-भाँत गुणधार।
नौ रतना रा मान ती, सोभित वे दरबार।।112।।
धनवंतरी क्षपणक कहे, अमर सिंह गुणरास।
बेताल भट्ट घटकर्परो, वररूचि कालिदास।।113।।
वराहमिहिर शंकु सुदा, विक्रम रा नौ रत्न।
विक्रम ने सोभित कर्या, परख-परख कर जत्न।।14।।
गणित कला विज्ञान अर मंतर, तंतर सिद्ध।
नाटक कविता निरत अर, गीत संगीत प्रसिद्ध।।15।।
न्याव नीत अर धरम में, विक्रम खुद परवीण।
रण कौशल रण जुद्ध में, तनक नहीं था छीण।।16।।
बारह बरसाँ पूग्यो, भरथरी राज कुँवार।
राजा राणी रे रिदै, उठवा लग्यो धुँवार।।17।।
भीतर-भीतर धुंव उठे, मूँडे कढ़े न घोल।
सिवजी रे वचना बंध्या, पूरा पक्का कोल।।118।।
ऊम्मर बारा बरस वी, सस्त्र सासतर परवीन।
विदवाना ने मान दें, करे प्रेम आधीन।।119।।
खड़ग चलावे चक्र ज्युँ, बाण चलावे तान।
लक्ष्य भेद चूके नहीं, अवसाँ हर ले प्रान।।120।।
करे सवारी अस्व री, वायुवेग ढब जाय।
नाहर दुबके झाड़कियाँ, अपणा प्राण बचाय।।121।।
असतर शसतर साजताँ, करे नित्त आखेट।
पसुआँ ने मारे नहीं, करतो फरे पलेट।।122।।
वनअर पसुआँ कारणे, नत दम वन में जाय।
वनचारी जतरा दिखे, सब ने प्रेम जताय।।123।।
विधि रो लेखो नी टरे, विधि लिखियो परमान।
बुद्धि ने भमतो करे, भटके चेतो ध्यान।।124।।
बारा बरसी उमर रो, दन आखिर रो जान।
भरथरी री उम्मर खुटी, सिवजी रे परमान।।125।।
वन में नजराँ देख्यो, स्याम मिरग वन ठेठ।
भरथरी ने मन धारयो, आज करूँ आखेट।।126।।
धनस बाण खाँदे धर्या, वियो अस्व असवार।
भरथरी सज धज चाल्या, म्रग रो करण सिकार।।127।।
नजरा आयो भिरगड़ो, लम्बी भरे कुलांच।
भरथरी रो असवो करे सरपट वेग भरांच।।128।।
लक्ष्य साध्यो भरथरी, ताण मार्यो बाण।
बुरो समै आवे जदाँ, होय अकल री हाण।।129।।
स्याम मिरग ने मार्यो, मिरगियाँ दियो सराप।
मिरगो नाख्यो अस्व पे, हिरदा में पछताप।।130।।
सदगुरू घूणी पौंच्यो, रो-रो करे विलाप।
हवन कुण्ड में कूद ग्यो, करि लियो पछताप।।131।।
सिद्ध सदगुरू झट बाँट गह, बाहर काढ़यो खींच।
मरया ने जींदो कर्यो, अमरत जल ती सींच।।132।।
मिरगा पे जल सींचयो, मिरगो वियो सचेत।
कार टरि गयो दोइ रो, सद्गुरू कर्यो हेत।।133।।
सिवजी रा पूरण विया, कहया कोल करार।
मिरग्याँ रो भी मीटयो, स्राप पाप रो भार।।134।।
समया री गति नी ढबे, कहि गया संत सुजान।
बरस अठारा पूरताँ, भरथरी विया जुबान।।135।।
गंधर्व सेन ने त्यागयो, राज भरथरी हत।
वानप्रस्थ व्रत धार्यो, चम्पावती समेत।।136।।
राज तपयो सद् भरथरी, जाणे इन्दर राज।
धरम-नीत हिरदे धरी, करे राज रा काज।।137।।
विधि रो लिख्यो नी टरे, टरे तो मोटा भाग।
भरथरी हिरदे ऊगयो, सदमत सुगन वैराग।।138।।
लीलाधारी री कहें, लीला अपर अपार।
अजब-अजब लीला रचे, करे गुपत निरधार।।139।।
राज सौंप आदित्त ने, भरथरी धरयो भेस।
जोगी बण तपसा तपे, मिटया सबै करेस।।140।।
सिद्ध सद्गुरू किरपा करी, दियो भरथरी जोग।
सूरज उगयो भीतराँ, मिट्यो भोग रो रोग।।141।।
विक्रम री मइमा बढ़ी, मारव देस विदेस।
नौ रतना रे बीच में, सोभे घणो नरेस।।142।।
महाकार ने धोकताँ, हरसिद्ध धोक लगाय।
पूजे माता कारका, फेर मेहलाँ में आय।।143।।
इन्दर पे आपद पड़ी, करी न कणे सहाय।
विक्रम ती आरज करी, तुरताँ दूत भिजाय।।144।।
सेना सज विक्रम गया, जुद्ध भूम रे बीच।
रागस मारया अणगणत, मच्यो रगत रो कीच।।145।।

जुद्धजीत विक्रम गया, इन्दरपुर सुखधाम।
थोड़ा दन सुख भोगयो, कर्‌यो वठे मुकाम।।146।।
मान दियो इन्दर घणो, करी खूब मनवार।
सिंघासन बत्तीस रो, दे दीयो उपहार।।147।।
रलक दलक सिंघासणो, आँखों ने करमाय।
बत्तिस पुतरियाँ खादके, सिंघासन भलकाय।।148।।
विस्वकर्मा ने घड़यो, सिंघासन बत्तीस।
जण रे हिरदै साँच वे, सो वै सके सहीस।।149।।
बत्तिस लक्खण सोभतो, सिंघासन धज पाय।
विक्रम में छत्तीस गुण, सिंघासन भलकाय।।150।।
सिंघासन पे बैठताँ, उपजे अद्‌भुत भाव।
अन्याय होवे नहीं, हरदम होवे न्याव।।151।।
बेताल भट्ट ने साध्या, तंतर-मंतर प्रेत।
अणगत साधी सिद्धियाँ, राज धरम रे हेत।।152।।
विक्रम जी ने सिद्ध थी, हरसिद्धा जगमात।
मात कारका री मेहर, महाकार रो हात।।153।।
बेताल भट्ट ने सोचयो, करूँ परीछा वीर।
वीर विक्रमादित्त में, परखूँ कतरी धीर।।154।।
माया राची अद्‌भुती, नी लागण दी थाह।
विक्रम ने घेरे लियो, काढ़ो अपणी राह।।155।।
चक्रव्यूह ज्युँ फांसियो, करी परीछा खूप।
विक्रम में विक्रम घणो, धारण कर ली चूप।।156।।
हगरी माया काट दी, कर दीयो उजियार।
बेताल भट्ट शरणे वियो, धन विक्रम सचियार।।157।।
खरा परीक्षा में विया, मूं होयो मतहीन।
म्हारी हगरी सगतियाँ, करूँ आप आधीन।।158।।
करूँ साधना फेर ती, परजा रे हित काज।
नेम धरम करजो सदा, थे मारव पे राज।।159।।
कै तो द्वापर में विया, युधिष्टर सतवीर।
उत्तर दीया यक्षरा, धरम नेम मति धीर।।160।।
कर जुग में थें परगटया, हेमार व गण राज।
धरम धीर छोड़ी नहीं, नी छोड़यो सत साज।।161।।
चौसठ कला प्रवीण थो, गुणी विक्रमादित्य।
मुख पे भलके तेजड़ो, ज्युँ आगस आदित्य।।162।।
वीर धीर रणवीर अर, दानी मानी सिद्ध।
विक्रम जेसो नी वियो, जग जाहिर परसिद्ध।।163।।
मारव हर्‌यो देस हे, पड़े न कद्यां कार।
कै कोई पापो परगट्‌यो, कै कुपया महाकार।।164।।
तीन बरस वरस्यो नहीं, सूख्या कुँवा तार।
नदियाँ पाणी खूटयो, पड़यो गाठो कार।।165।।
खेताँ में दरड़ा पड़या, बिरछ वैइ गया ठूठ।
पंख-पखेरू मरि खुट्‌या, वई चारा री खूट।।166।।
त्राही-त्राही मचि गई, होवण लग्यो पयाण।
विक्रम राजा चिंतवे, कसतर वेवे त्राण।।167।।
अन्न-जल सब त्याग्या, आरत करी पुकार।
जागो-जागो जगधणी, नगर पति महाकार।।168।।
महाकार परचो दियो, चेतो विक्रम जीत।
इन्दर ने ललकार दो, तोड़ो झूठी प्रीत।।169।।
धनस बाण लो हाथ में, करो गरज ललकार।
परजा रो दुख टार दो, कर दो कार सुकार।।170।।
विक्रम रो विक्रम जग्यो, साज्या तीर कमाण।
वरसो-वरसो इन्द्र झट, ताण दियो हे बाण।।171।।
बाण घुट्‌या आगास में, गया बारदा फाट।
पाणी बरस्यो झमझमों, वई गया ठट्‌ठम ठाठ।।172।।
कार मिटयो दुख मीटयो, परजा वई खुसाल।
धन्न-धन्न देवत कहें, आसीसें महाकाल।।173।।
हरसिद्धाँ माँ कारका, कहें विक्रमादीत।
खरा परीक्षा में विया, वई साँच री जीत।।174।।
कुँआ बावड़ी सरवर्‌या, तार तरैयाँ गठ।
कल-कल नदियाँ बेह उठी, वेवे मंगल पाठ।।175।।
बिरछ झूम वंदन करें, पंछी करें किलोर।
एसो आणद उमगयो, मारव में चहुँओर।।176।।
बंदी जन करित भणे, परजा जै-जै कार।
जै-जै हे मारव धणी, जै जग पालण हार।।177।।
रानी विक्रमदित्य री, सतवंति जग नाम।
वरत नेम पूजा करे, हिरदै सत रो धाम।।178।।

सतवंती सद्‌मत सत धरमी। जसो नाम वेसी सत करमी।।179।।
ब्रहम मुहूरत सिपरा न्हावे। सूरज ने नित अरध चढ़ावे।।180।।
महाकार रा दरसन करताँ। मात कारका मंदर जावे।।181।।
गऊ पूजे नर्मद ने ध्यावे। हरसिद्धा रे धोक लगावे।।182।।
सद्‌गुरू जी रा दरसन करताँ। निज मेहलाँ में पाछी जावे।।183।।

बाल ब्रहम चारिणी राणी। बोले हरदम मधरी वाणी।।184।।
सबै राणियां में सनमानो। विक्रम करे पूरो सनमानो।।185।।
बारा बरस चन्द्रव्रत करयो। निस दिन ओम ओम सिमरयो।।186।।
अन्न त्याग होई फलहारी। फल त्याग वई दूधाहारी।।187।।
जगसुख री इच्छा सब त्यागी। वई महाकार अनरागी।।188।।
धरती आसन वातर सोवे। खुद रा वसतर खुद ही धोवे।।189।।
भरथरी राजो जोगी होयो। सतवंती रो मन हरसित होयो।।190।।
भिच्छा कारण भरथरी आवे। मेहला आगे अलख लगावे।।191।।

सतवंती आदर करे, भिच्छा दे नित नेम।
भरथरी भिच्छा पावताँ, पूछे कुस्सल छेम।।192।।

आसीरवाद भरथरी देवे। आँखों नीचाँ कर ने रेहबे।।193।।
माता भिच्छा दे ओ पुकारे। समै-नेम पूरो निरधारे।।194।।
भरथरी भिच्छा कारण आयो। अलख-अलख रो घोस लगायो।।195।।
भिच्छा देओ सतवंत माता। जोगी ऊबो अलख जगाता ।।196।।
भरथरी रेह-रेह अलख लगाई। सतवंती बाहर नी आई।।197।।

सूरज पूजा रे निमित, रानी जल रे बीच।
देह अवस्था नगन थी, ऊबी आँखों मीच।।198।।
अलख सुणाई नी पड़ी, ध्यान अवस्था काज।
भिच्छा ले भागी तुरंत, ढबजो जोगी राज।।199।।
नगन देही जाणताँ, भरथरी कर ली पीठ।
अलख-अलख केह चाल्या, पाछाँ फिरी न दीठ।।200।।
आगे-आगे भरथरी, पाछे सतवंत मात।
छमा-छमा जोगी ढबो भिच्छा म्हारे हाथ।।201।।

भरथरी तो ढबया नहीं। ढबी न सतवंत नार।।202।।
भिच्छा दे पाछी करूँ। कर लीयो निरधार।।203।।
भिच्छा ले लो भरथरी। ढब जाओ ततकार।।204।।
नेम नियम भांगो मती। आन देऊँ महकार।।205।।

× × × ×

सिद्ध देव हामू मिल्या, दियो तुरत आदेस।
भरथरी भिच्छा धार लो, नी तर त्यागो भेस।।206।।
माता नंगी हे प्रभु, कसतर नाखूँ दीठ।
अणी कारणे फेर ली, तुरताँ-फुरताँ पीठ।।207।।
धिक-धिक जोगी भरथरी, रहयो देह रो भान।
बेअरथी हे साधना, बेअरथो अभमान।। 208।।

सतवंती तो मुक्त हे, नहीं देह रो भान।
देह भान ती ऊपरां, अलख-अलख रो ध्यान।। 209।।
सद्गुरू री फटकार सुण, भरथरी उपज्यो ज्ञान।
भीतर री जोती जगी, गल बह गयो गुमान।। 210।।
छमा-छमा माता उचर, भरथरी कर दी धोग।
आँखां झरमर बरस गी, मिट्यो भरम रो रोग ।। 211।।
भिच्छा लेता वई गयो, धन्न भरथरी आज।
माता जाओ मेहल में, करो नेम सर काज।। 212।।
अब मेहला जाऊँ नहीं, धार लियो हे जोग।
वो सिद्धाँ रो वई गयो, आज खरो संजोग ।। 213।।
दिच्छा दे दो सिद्ध जी, दे देओ आसीस।
सत्त धरम ती नी डिगूँ, देओ जोग बगसीस।। 214।।
सत्या तू मुक्ता वई, सतवंती सतधार।
परमहंस सत धारयो, अलख-अलख चितधार।। 215।।
अतरो केह सिद्धां कर्यो, अपणे धाम पयान।
मुक्ता सिद्ध मुक्ता वई, सरयो नेम विधान।। 216।।
गई हिमालय शैल में, तपी तपस्या खूप।
तपसा तपतां वई गई, ब्रहमवादिनी रूप।। 217।।
विक्रम ने अरचा करी, अरज करी कर जोड़।
जाओ देवी तप तपो, बरसाँ बरस करोड़।। 218।।
धन्न-धन्न मारव वियो, धन्न उज्जैणी धाम।
जतरे सूरज चन्द्रमो, अमर रेहवसी नाम।। 219।।
गंधर्व सेन रा वंस में, गुणवंता री वाट।
कै तो सिद्ध जोगी विया, कै होया सम्राट।। 220।।
सतवंती मुक्ता वई, वई पींगला सिद्ध।
सतियाँ ने सत धार्यो, नाम कर्यो परसिद्ध।। 221।।
विक्रमजित रे राज रा, अणगण कथ्या वखाण।
सबै अधूरा जाणजो, अकथ गुणा री खाण।। 222।।
सबदाँ में नी वई सके, विक्रम रो जसगान।
सुणी-सुणाई जसकथा, जण रो कर्यो बखाण।। 223।।,
जुगां-जुगां में औतरे, विक्रम सो सतधार।
धरती माँ तपसा तपे, जद होवे औतार।। 224।।
राम राज तुलसी कहयो, वैसोई विक्रम राज।
परमारथ ने सारतां, सरे राज रा काज।। 225।।
न्याव नीति अर धरमहित, रहे सदा सवचेत।
तन मन धन अर्पण करे, प्रजा रे सुख हेत।। 226।।

दानी जाणो करण ज्युँ, ज्ञानी क्रसन समान।
अर्जुन ज्युँ रण बाँकरो, भीम सरो बलवान।। 227।।
म्लेच्छाँ पे सिरि राम ज्युँ, लच्छमण ज्युँ नर नाह।
रण जूझण में नी करी, प्राणा री परवाह।। 228।।
वचना रा पाका घणा, हरिचन्द्र सतधार।
राजपाट झट त्याग्या, त्याग दियो परवार।। 229।।
प्रण रो पालन राखती, नी तन री परवाह।
विक्रम मन गेहरो घणो, समंदर जसो अथाह।। 230।।
प्राण टरे प्रण नी टरे, हे विक्रम रो कोल ।
सूर चन्द्रमो टरि सके, टरे न विक्रम कोल।। 231।।
शकां मार बाहर करया, विक्रम सीमा पर।
हूण खदेड़या यशधरे ने, कर्‌या देस रे बाहर।। 232।।
उज्जैणी विक्रम तपयो, धारा विक्रम भोज।
दस पर यशधरमन बली, गयो मलेच्छां खोज।। 233।।
मालव भूमी धन्न हे, हे रतना री खान।
विक्रम सरखा पूत जण, खूब कियो गुणगान।। 234।।
मालव तपया भरथरी, कै तो विक्रमजीत।
कई वरसाँ रे अंतरे, भोज राज जगजीत।। 235।।
विक्रम रा दरबार में, रतना रो भंडार।
इन्दर सरखो झलमले, विक्रम रो दरबार।। 236।।
सोभा अत दरबार री, सबदाँ नहीं बखान।
बैदी जन जस जै करें, गावैं गाथा गान।। 237।।
रामराज महिमा बड़ी, बड़ विक्रम रो राज।
राजा विक्रम ने रच्यो, सहजो सुगम समाज।। 238।।
परकरती समरस रहे, देव रहे अनकूल।
राजा राजपुरख रहे, राज धरम रे मूल।। 239।।
जेसो राजा रोमतो, वैसी परजा होय ।
राजधरम पाले सबे, पाप न चिंते कोय।। 240।।
इन्दर बरसे छावतो, सूरज तपे सुकाज।
सरद सीत सीसर सबै, रित बसंत रे राज।। 241।।
विक्रमजित रा राज में, नहिं कोइ चोर चकार।
ना कोई मारग लूटणा, ना कोई ठगो ठगार।। 242।।
राज धरम पारे सबै, करे नहिं कोई द्रोह।
तारा नी लागे घरां, ना कोई डर-मोह ।। 243।।
ना तो कोई दारिदी, ना कोई दुखी न दीन ।
ना दीखे कोई मांगण्यो, ना कोई अक्कल हीन ।। 244।।
मां बेहना रो राज में, वे पूरो सनमान।
गो बामण रे मान रो, रेहवे सबने मान ।। 245।।
आसण मंगो आरसी, करम हीन सत छीन।
विक्रम जी रा राज में, नी दीखे मति हीन ।। 246।।
ऐसो विक्रम राज थो, तुलसी कहयो सुराज ।
करजुग में विक्रम रच्यो, त्रेता जसो समाज ।। 247।।
जतरे सूरज चन्द्रमो, जतरे धरती धाम।
वतरे तो रेहसी अमर, विक्रम जितरो नाम।। 248।।

भावार्थ

मैं गौरीनंदन गणेश जो गणनायक हैं, उनकी वंदना करता हूँ। उनके बाद मैं शिव, विष्णु और धरनीधर गणेश का वन्दन करता हूँ। उज्जैन नगर, समग्र मालवा और महाकाल के देश का वर्णन करता हूँ । मालवा प्रदेश के उज्जैन में जहाँ कल-कल निनाद करती हुई पावन क्षिप्रा नदी बह रही है तथा जहाँ कभी भी कलह और क्लेश नहीं होता। यहाँ पूरे मालवांचल में हरे-भरे खेत हैं तथा यहाँ का पहनावा रंग-बिरंगा और मन भावन है।

मालवा में छहों ऋतुएँ मन भावन होती हैं। मालवा के बीच में उज्जैन तो अत्यंत हरा-भरा और मनोरम नगर है। यहाँ सदा (साँझ-सकारे) घंटी, घड़ियाल की गूँज और शंख का नाद सुनाई पड़ता है। उज्जैन नगर में पूजा पाठ तथा पद्धति का कोई विवाद नहीं है। सब लोग अपने-अपने धर्म और परम्परा के अनुसार अपनी पूजा आराधना करते हैं।

यहाँ पहली प्रभात ब्रह्मकाल में क्षिप्रा नदी में लोग स्नान करते हैं। मंदिरों में शुभ मंगलगान सुनाई पड़ता है। जैसी जिसकी कामना और भावना होती है वैसी वह आराधना करता है। उज्जैन नगर में धर्म और नियम का पालन करने में किसी भी प्रकार की बाधा या मनाही नहीं है।

नगर में बैताल का पहरा है। स्वयं भैरव नाथ सदा जागृत रहकर नगर रक्षा में सन्नद्ध हैं। माता कालका और हरसिद्धि माँ की कृपा दृष्टि सदा बनी रहती है। मालवा में क्षिप्रा और नर्मदा का निर्मल जल कल-कल करता हुआ सदा प्रवाहित होता रहता है। इन पावन नदियों में स्नान करने से व ध्यान करने से सभी पाप नष्ट होते हैं तथा तन और मन की पीड़ा, व्याकुलता समाप्त होकर शांति मिलती है।

यहीं पर बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक जागृत-ज्योतिर्लिंग विद्यमान है। इनके दर्शन करने के लिए देवता भी दर्शन करने आते हैं और यहाँ निवास करते हैं।

यहाँ चारों ओर अमन, चैन (सुख-शांति) का वास है। किसी को किसी भी प्रकार का रोग या शोक नहीं होता तथा स्वयं शिवजी महाकाल सबकी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं। उज्जैन नगर विद्या और विद्वानों का नगर है, मूर्ख और कुलक्खण जनों का होना असंभव है। विद्वानों के इस नगर में कोई भी अशिक्षित नहीं दिख पड़ता।

कृष्ण-सुदामा ने यहाँ स्थित सांदीपनि आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त की थी। यह पूरा विश्व जानता है। पुराणों में भी यह कथा लिखी गई है।

ऐसा महान है मालवा और उज्जैन का नगर। यहाँ के कण-कण में घनश्याम और यहाँ के शब्द-शब्द में भगवान राम बसते है। (दोहा क्र. 1-13 तक)

धरती पर एक राजा हुआ जो राजाओं का राजा अर्थात् महाराजा था, जिसने परमार्थ के अनेक काम किए। मैं उसी सम्राट की कथा सुनाता हूँ, जो एकदम सत्य है। उसने नीति और न्याय का पालन करते हुए राज्य किया। उसका नाम था विक्रमादित्य।

उस महासम्राट विक्रमादित्य ने कभी भी अपने प्राणों की परवाह नहीं की। परहित के लिए सदा सजग रहे। विघ्नकारी लोग सदा भयभीत रहते थे। लोक में वे युद्धजीत के नाम से ख्यात थे तथा तीनों लोक में उनका नाम महादानवीर के नाम से जाना जाता था। वे गो और ब्राह्मण की पूजा करते थे। ब्राह्मणों और गऊ के चरणों में सदा धोक देते थे। वे ब्राह्मणों को इतना दान देते थे कि वे अचानक धनी बन जाएँ। विद्वानों को सम्मानित करने में कभी भी चूकते नहीं थे।

विक्रम के दरबारी गणों में सभी विधाओं और कलाओं के विद्वान उपस्थित रहते थे। ज्ञान, गणित, विज्ञान, युद्ध कला, ज्योतिष, आयुर्वेद, नीति, गीत, संगीत, धन (वित्त) अर्थशास्त्र कवित्तविद्, पुराण और वेदों के ज्ञाता, तंत्र, मंत्र, जंत्र आदि जितने भी ज्ञान-विज्ञान उनके ज्ञाता दरबार में हाथ जोड़कर उपस्थित रहते थे।

विक्रम अपने प्राण के दृढ़ थे। प्राणों की चिन्ता किये बिना वे अपने प्राण की रक्षा करते थे। न्याय, नीति तथा लोक रीति का वे सदा पालन करते थे।

विक्रमादित्य के राज्य में धर्म के चारों चरण (सत्य, शुचिता, दान और दया) दृढ़ थे।

महाराजा विक्रमादित्य ने देश की रक्षा करते हुए दस लाख शकों को हताहत कर उनका दमन किया और देश के बाहर खदेड़ दिया। महाकाल ने उनकी रक्षा की तथा युद्ध के यश को स्थिर रखा।

मालवा में कभी भी अकाल नहीं पड़ता था। माता हरसिद्धि एवं कालका सदा खुशहाल रखती थीं। स्वर्ग के राजा इन्द्र सदा विक्रमादित्य के सामने प्रार्थना करते थे। जब भी इन्द्र पर आपदा आती थी। वे विक्रमादित्य को अपनी सहायता हेतु निमंत्रित करते थे।

विक्रम में विक्रम (साहस+शक्ति) बहुत थी। न्याय, नीति और दान में वे सर्वज्ञात थे। वे वचनों के दृढ़ थे। धर्म, धैर्य एवं गणमान्य स्तर पर सदा सम्मानित होते थे। रचनाकार उनकी जय-जयकार करते हुए उनकी यश विरुदावलियाँ गाते थे। जैसा जिसका यश बखान होता था, वे उसे उसी आधार पर सम्मानित करते थे।

विक्रमादित्य विद्वानों के मध्य अत्यंत सुशोभित होते थे। कवियों के कवित्त सुनकर उन्हें समझकर वे उन्हें सम्मानित करते थे।

मालवा में अन्न खूब उत्पन्न होता था। धन-सम्पदा की कोई कमी नहीं थी। जल, दूध, घी पर्याप्त था। किसी के भी हृदय में पाप-छल के भाव नहीं होते थे।

विक्रमादित्य के दरबार में नवरत्न का तेज दीपित होता था। विद्या का प्रकाश रहता था। अज्ञान रूपी अंधकार का नाश हो गया था। उनके दरबार में विद्युत्मा नाम की एक परमविदुषी महिला थी। विक्रम के दरबार में उसका बहुत मान-सम्मान होता था।

विक्रमादित्य ने बड़ा यज्ञ किया (सम्भवत: अश्वमेघ

यज्ञ के समान) तब उनको युद्धजीत का सम्मान दिया गया। उनके यश का ओज सूर्य के समान प्रदीप्त हो उठा। इस कारण वे विक्रमादित्य कहलाये। उन्होंने अपनी राजध्वजा चतुर्दिक फहराई। सब देशों ने उनको नमन कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। उनका यज्ञ अश्व धर्मध्वजा धारण कर भारत के आर-पार घूम गया। उत्तर-दक्षिण तक विक्रमादित्य के यश का निर्धारण हो गया।

विक्रमादित्य जब सिंहासन पर बैठते थे, तब उनका ओज सूर्य के समान तेजस्वी हो उठता था। उनके ओज को देखकर सूर्य भी चकित होकर एक पल के लिए रूक जाता था। उन्होंने शकों को पराजित कर अपना यश स्थापित किया और देश को निर्भय कर दिया। अप्सराएँ उनके दरबार में नृत्य करती थी और देवगण मंगलगान करते थे। गंधर्व यश बखान करते थे। सभी शत्रु उनके मित्र हो गए थे।

विक्रमादित्य हरसिद्धि माता को प्रतिदिन नमन करते थे तथा भंडारा (भोज) करते थे। ब्राह्मण एवं गरीब लोग भोजन करते थे। विक्रम विष्णु भगवान के समान शूरवीर थे तथा सूर्य के समान ओजस्वी थे।

पुण्य सलिला माता क्षिप्रा धन्य हैं। महाराज महाकाल धन्य हैं। विक्रम के दरबार की छवियाँ अद्‌भुत और अनुपम थी। विक्रम जैसा वीर आज तक नहीं हुआ। उन्होंने युद्ध, नीति और न्याय में सदा धैर्य बनाए रखा।

विक्रमादित्य से पूर्व या तो आर्य राम ऐसे ओजस्वी हुए थे अथवा विक्रमादित्य हुए। उन्होंने शुद्ध नीति से राजधर्म का पालन किया और धर्म की मर्यादा बनाए रखी। (पद क्र. 14 से 40)

विक्रमादित्य की सम्पूर्ण कथा-गाथा नहीं बखानी जा सकती। मैं उसका एक प्रसंग कहता हूँ, तो दूसरा प्रसंग छूट जाता है। मेरी बुद्धि डाँवाडोल हो जाती है। उनके जन्म की कथा भी अद्‌भुत है। करनी तो भगवान महाकाल की है और कथनी सरस्वती माता की है।

धरती ने भगवान से आर्त पुकार की। उसके पुण्य प्रकट हुए। माता-पिता ने तपस्या तपी तब विक्रम का अवतार हुआ।

दशरथ और कौशल्या ने वर्षों तक तपस्या तपी थी। तब जाकर उनकी मनोकामना पूर्ण हुई थी। माता देवकी और वासुदेव जी ने आर्त पुकार की तब कृष्ण चन्द्र ने धरती पर अवतार धारण किया। जब भी धर्म पर पाप का भार बढ़ता है, तब भगवान मनुष्य रूप में अवतार लेते हैं।

उस युग में भी धरती पर म्लेच्छों का उत्पात होने लगा था। तब विक्रमादित्य ने अवतार धारण किया और अपने माता-पिता को धन्य किया।

इन्द्र ने भी मकाकाल के दरबार में पुकार की थी। हे भगवान! धरती पर म्लेच्छों का उत्पात बढ़ने लगा है। यज्ञ-हवन सब बंद हो गए हैं। सब तीर्थ अपवित्र हो गए हैं। दुष्ट म्लेच्छों ने धरती पर भारत भूमि पर आधिपत्य कर लिया है। हे प्रभु! आप मनुष्य रूप धारण कर प्रकट होइए। अपने वचनों का पालन कीजिए और सत्य की मर्यादा रखिए। (पद 41-50)

उज्जैन का राजा गंधर्व भिल्ल था। लोग कहते हैं वह भिल्ल समाज का था। वह परमवीर था। युद्ध भूमि में ऐसा खड़ग चलाता था कि शत्रु के छक्के छूट जाएँ। उसके कंधे पर सदा धनुष बाण सजे रहते थे। वह रण में सिंह के समान गर्जना करता था। उसे शब्दभेदी बाण चलाने का अभ्यास था, उसका एक भी बाण चूकता नहीं था। गंधर्व भिल्ल न्याय और धर्म के अनुसार राज्य का संचालन करता था। एक भी अपराधी दण्ड से नहीं बच सकता था। वह वनपशुओं और वनों का रक्षक था। वह गरीबों का अटल सहारा था। गंधर्व भिल्ल शुद्ध भिल्ल क्षत्रिय पिता का सुपुत्र था। इन्द्र के समान उसका यश था। कोई उन्हें गंधर्व सेन और कोई महेन्द्रादित्त कहकर संबोधित करते थे। एक राजा के अनेक नाम थे। राज्य की बहने और बेटियाँ उन्हें मामा कहकर पुकारती थी। राजा गंधर्व भिल्ल की एक क्षत्रिय रानी थी। वह बहुत सुन्दर थी। उसके नयन मृगी के समान सुन्दर थे तथा वाणी अत्यन्त मधुर थी।

रानी शिव भक्त थी। नित्य शिव की पूजा-आराधना करती थी। माता गौरी की पूजा करती थी। नित्य भंडारा करती और दीन-दुखियों, ब्राह्मणों को भोजन करवाती थी।

रानी चन्द्र व्रत करती थी। सूर्य की आराधना करती थी और प्रतिदिन प्रभात में क्षिप्रा के जल से सूर्य को अर्घ्य देती थी। उसके दर्शन शुभ माने जाते थे। रूप सुन्दर था। मुख पर सत्य की आभा थी। देह चम्पा वर्ण थी। सम्भवत: इसी कारण उसका नाम चम्पावती रखा गया था।

चम्पावती एक पुत्र की आकांक्षा में मन-चित्त से सदा उदास रहती थी। वह भगवान महाकाल से प्रार्थना करती थी कि हे महाकाल! हे आशुतोष! मेरी मनोकामना पूर्ण करें। मुझे एक पुत्र प्रदान कर दो।

महाराज गंधर्व सेन भी सदा रानी के साथ जाते थे और एक पुत्र की आकांक्षा हेतु प्रार्थना करते थे।

एक रात में भगवान शिव ने स्वप्न में दर्शन दिए। हे चम्पा! तेरी कोख से मेरा अंश प्रकट होगा।

हे चम्पा! तेरे भाग्य में पुत्र योग नहीं है। मैं तेरे तप बल को ध्यान में रखकर तुझे सपूता करूँगा। तुझे पुत्र प्राप्ति तो होगी, किन्तु वह बारह वर्ष तक ही जीवित रहेगा। तू सूर्य की पूजा करते रहना, तब तुझे एक और पुत्र की प्राप्ति होगी। वह दूसरा पुत्र सूर्य के समान तेजस्वी होगा। वह कर्ण के समान दानवीर और हरिशचन्द्र के समान वचन पालक होगा। न्याय और धर्मरक्षा में कभी भी कमजोर नहीं होगा। वह अपने वंश का व पिता की यश वृद्धि करेगा। संसार में वह अपना विक्रम खूब बढ़ाएगा।

प्रभात होने पर राणी चम्पावती की नींद खुली। उसने सपने की बात राजा से कही। राजा-रानी के मन में सुख तथा दु:ख दोनों एक साथ उत्पन्न हो गये। पुत्र प्राप्त होते ही बारह वर्ष में मृत्यु को प्राप्त होने का दु:ख तथा सुख संतान प्राप्ति और कोख सकारथ होने एवं तेजस्वी (दूसरा) पुत्र उत्पन्न होने का।

समयानुसार चम्पावती की कोख से एक पुत्र का जन्म हुआ। शिव भगवान का वचन सत्य हो गया। ज्योतिषी ने उसका नाम भरथरी रखा। ज्योतिषी ने बालक के ग्रह-नक्षत्रों का अध्ययन कर और भविष्यवाणी की, 'यदि बारहवां वर्ष टल जाये तब यह बालक जग में खूब यशस्वी होगा। यह छत्र धारण कर सम्राट बनेगा अथवा भभूत धारण कर महायोगी बनेगा। इसके भाल पर शिव तिलक दीपित है तथा नेत्रों में सूर्य जैसी आभा है। यह भगवान शिव का अवतार दिखता है। इसके महायोगी बनने के योग प्रबल है।

राजा-रानी बालक भरथरी के भविष्य के विषय में विचार करने लगे। चम्पावती ने चित्त में धैर्य धारण किया। हाथ जोड़कर शिवजी का स्मरण किया। गंधर्व सेन हृदय में हर्षित हुआ। महाकाल प्रभु ने मेरा वंश चला दिया है। राजा गंधर्व सेन और रानी चम्पावती ने भगवान महाकाल को धोक लगाई और विनय कर कहा- हे जगद्पति! आपने हमारे सभी रोग-शोक मिटा दिए है। (पद-51-85)

चम्पावती ने सूर्य की तपस्या की। उन्होंने आर्त पुकार करते हुए प्रार्थना की कि हे जगत के सृजक! आप मुझ पर प्रसन्न होइए। एक पुत्र की आकांक्षा है। आप पूरी कर दो। मेरा पुत्र भगवान शिव के आशीर्वाद से आप जैसा तेजस्वी बने। चम्पावती की पुकार सुनकर भगवान सूर्य देव प्रकट हुए। उन्होंने आश्वस्त करते हुए कहा- हे चम्पावती! तुम निश्चिन्त रहो। तुम्हारी मनोकामना अवश्य पूर्ण होगी। तुमने जैसी इच्छा मन में धारण की है, वह मैं भगवान शिव के आदेशानुसार अवश्य पूर्ण करूँगा। समयानुसार मैं तुम्हारी कोख से अवतरित होऊँगा। (पद 86-90)

महाराज गंधर्व सेन नित्य प्रति महाकाल के दरबार में जाकर प्रार्थना करते थे। हे महाकाल! मुझे दीर्घायु पुत्र प्रदान करो। हे साँचे दरबार! हे जगत पति! मेरा तन थक चुका है। मन संसार से विरक्त हो चला है। चित्त का धैर्य टूट रहा है। हे प्रभु! राज का वारिस देकर मेरे मन की पीड़ा कम करो।

गंधर्व सेन की पुकार सुनकर महादेव ने दर्शन दिए और कहा- राजा तुम अपने मन में विश्वास रखो। तुम न्याय और नीति पर दृढ़ रहना। तुम्हारे मन की आशा अवश्य पूरी होगी। तेरी आर्त पुकार सुनकर विधाता ने निर्धारण किया है कि चम्पावती की कोख से सूर्य अवतरित होंगे। भगवान के ऐसे शुभ वचन सुनकर राजा गंधर्वसेन गद्गद् हो उठे। उनके हृदय का विषाद समाप्त हो गया। उन्होंने भगवान शिवजी का प्रसाद तृप्त होकर प्राप्त कर लिया था।

शुभ मुहूर्त, शुभ पहर में दितवार के शुभ दिन भुवन

भास्कर ने धरती पर अवतार ले लिया। चम्पावती की कोख सुफलित हो गई। मन हर्षित हो गया, हृदय के सभी दु:ख मिट गए।

दितवार के दिन जन्म लेने के कारण भिल्ल समाज ने उस बालक का नाम 'दितवारिया' रखा। कुछ लोग उसे शिवदूत कहने लगे। ब्राह्मणों ने ग्रहों का शोधन कर उसका नाम 'आदित्य' निर्धारित किया और महाराज गंधर्वसेन के मुख से अचानक 'शत्रुजित्त' नाम निकला।

महाराज गंधर्वसेन की सात रानियाँ थी। सातों मन मुदित हुई। अत्यन्त हर्षित हो उठीं। चम्पावती पुलकित होकर मन-चित्त से हर्षित हो उठी। विक्रमादित्य ने छत्तीस गुण एवं चौसठ कला सम्पन्न होकर धरती पर अवतार लिया। (91-102)

राजा गंधर्वसेन की सात रानियाँ थी। सातों रानियाँ अलग-अलग जाति की थी। उन सातों में किसी प्रकार का भेद नहीं था। राजा के दो पुत्र भरथरी और आदित्य थे और उनकी सात माताएँ थी। सब एक-एक करके बालकों को गोदी में उठाती थी और पलना झुलाती थीं। खूब लाड़ लड़ाती थीं तथा आनंदित होती थीं। चन्दन के पालने को झुलाते-झुलाते लोरियाँ गाती थीं और मंगलाचार करती थीं।

उनकी इसी सौजन्यता के कारण उन पर विधाता की कृपा हुई और उन सब को भी संतान सुख प्राप्त हुआ। ब्राह्मणी रानी की कोख से वररूचि का जन्म हुआ। बनियाणी की कोख से शंकु उत्पन्न हुआ। शुद्रा रानी ने बेताल भट्ट को जन्म दिया। भिल्ल राणी से धनवंतरी पैदा हुआ। सतधारी नाम की रानी की कोख से वराहमिहिर जन्मा तथा खवासण रानी ने भट्ट को जन्म दिया।

ब्राह्मणी ने ब्रह्मा जी की पूजा की। बनियाणी ने विष्णु को पूजा, शुद्रा ने भैरव की आराधना की। सतधारी ने शिव की पूजा की। भिल्लणी ने अश्वनी को पूजा, खवासण ने इन्द्राणी को पूजा। जिसने जैसे देवता को पूजा, उसको वैसा ही फल प्राप्त हुआ। कहते हैं राजा गंधर्वसेन की सात रानियों में छह तो विवाहित थीं, किन्तु सातवीं खवासण रखैल थी। सातों के सम्मान में कोई फर्क नहीं था। उनका परस्पर मेलजोल भी अच्छा था, जिस रानी (खवासण) ने भट्ट को जन्म दिया, उसका पुत्र भट्ट राजा की यश गाथाएँ बखानता था। राजा के सभी पुत्र एक से एक बढ़कर गुणवान थे। वे सभी विक्रमादित्य के दरबार में नवरत्नों में सुशोभित हुए। बाकी चार घटकर्पर, क्षपणक अमरसिंह और कालिदास सहित नवरत्न माने गए। धनवंतरी, क्षपणक अमरसिंह, बेतालभट्ट, घटर्कपर, वररूचि, वराहमिहिर, शंकु और कालिदास, ये नवरत्न थे। भट्ट या भाट गुणगायक दरबारी था।

विक्रमादित्य ने खूब जाँच परखकर अपने नवरत्न सुशोभित किए थे। ये सब गणित, कला, विज्ञान, मंत्र-तंत्र, सिद्धियों, नाटक, कविता, नृत्य और गीत-संगीत में पारंगत थे। स्वयं विक्रमादित्य न्याय और नीति में और धर्म में पारंगत थे। वे रण कुशल और युद्ध नीति में भी प्रवीण थे। (103 से 116)

भरथरी बारह वर्ष की आयु में पहुँच गए। राजा-रानी के हृदय में दाह उठने लगा। उनके हृदय में धुआँ उठता था, किन्तु मुँह से बोल नहीं निकल पाते थे। वे भगवान शिव के वचनों में पूरी तरह बंधे हुए थे। बारह वर्ष की उम्र में भरथरी शस्त्र-शास्त्र में प्रवीण हो गए। विद्वानों को मान-सम्मान देकर उन्हें अपने प्रेम में बाँध लेते थे। वे खड़ग ऐसा चलाते थे मानो चक्र चला रहे हो, बाण भी तान-तानकर चलाते थे। उनका लक्ष्य बेध चूकता नहीं था। शत्रु के प्राण हरण कर लेता था। जब भरथरी अश्व की सवारी करते थे, तब वायु का वेग भी पीछे छूट जाता था। वन में उनको देखकर सिंह भयभीत होकर झाड़ियों में दुबक जाता था। वे अस्त्र-शस्त्र सजाकार प्रतिदिन आखेट करने वन में जाते थे। वे पशुओं का वध नहीं करते थे। वन भ्रमण और वन पशुओं का रक्षण ही उनके वन में आखेट के लिये जाने का लक्ष्य था। उन्हें जितने भी वनचारी (आदिवासी जन) वन में मिलते थे, वे सबसे प्रेम पूर्वक भेंटते थे और उनका हालचाल पूछते थे।

विधाता का लेख नहीं टल सकता। विधि का लिखा प्रमाण होता है। होनी बुद्धि को भ्रमित कर देती है। चेते को भटका देती है।

भरथरी की बारह वर्ष उम्र पूर्ण होने को आई। आखिरी दिन था। भरथरी ने वन में एक श्याम मृग देखा।

भरथरी के मन में आया कि आज मैं इसका आखेट करूँगा। उन्होंने धनुष बाण कंधे पर सजाकर अश्व पर सवार हो गए और उस मृग का शिकार करने निकल पड़े। मृग उन्हें दिख गया। वह लम्बी-लम्बी कुलाँचे भरकर भागने लगा। भरथरी का अश्व सरपट वेग से उस मृग के पीछे दौड़ चला। भरथरी ने लक्ष्य साधकर बाण छोड़ दिया। जब भी बुरा समय आता है, बुद्धि नष्ट हो जाती है। उन्होंने श्याम मृग को मार दिया। उसकी मृगिये ने श्राप दे दिया। भरथरी ने उस मृग को अश्व पर लाद लिया और हृदय में पछताने लगा।

भरथरी श्याम मृग को अश्व पर लादकर अपने सद्गुरु की धूणी पर पहुँचा और रो-रोकर विलाप करने लगा। फिर वह प्रायश्चित स्वरूप हवन कुण्ड में कूद गया। सिद्ध सद्गुरु ने उसे बांह पकड़कर हवनकुण्ड से बाहर निकाला और अमृत जल छिड़ककर जीवित कर दिया। उन्होंने श्याम मृग को भी जीवित कर दिया।

इस प्रकार भरथरी का काल टल गया। श्याम मृग का काल भी टल गया। सद्गुरु की दोनों पर कृपा हुई। भगवान शिव का वचन भी पूरा हो गया। मृगियों का श्राप भी समाप्त हो गया।

समय की गति तो अबाध चलती है। भरथरी को नवजीवन मिला था। वे अठारह वर्ष के हो गए। भरथरी को युवा हुआ देख उनके पिता महाराज गंधर्वसेन ने भरथरी को राज सौंप दिया व चम्पावती सहित वानप्रस्थ व्रत धारणकर वन को चले गए।

भरथरी ने राज्य का संचालन ऐसा किया, मानों स्वयं इन्द्र धरती पर आ विराजे हों। उन्होंने धर्म और नीति को हृदय में धारण कर राजकाज किया।

विधि का लिखा तो होकर रहता है। यदि टल जाए तो बड़ा भाग्य मानना चाहिए। भरथरी के जीवन में ऐसी घटना घट गई कि उनके मन में वैराग्य का उदय हो गया।

लीलाधर की लीला कोई नहीं जान सकता। वह अपनी लीला गुप्त रूप से रचता है। वही उसका निर्धारण भी करता है। उन्होंने उज्जैन का राज्य आदित्य को सौंप दिया और वेश धारण कर लिया। वे जोगी बनकर तपस्या करने लगे। उनके मन के सभी क्लेश मिट गए। सद्गुरु ने कृपा करके उन्हें योग की दीक्षा प्रदान कर दी। उनके हृदय में ज्ञान का सूर्य उदित हो गया। मन में उजाला हो गया। भोग रोग समाप्त हो गया।

राजगद्दी पर बैठने के बाद विक्रमादित्य की महिमा बढ़ गई। उनका यश देश और विदेश में फैल गया। वे नवरत्नों के मध्य अत्यंत सुशोभित होते थे। वे नित्यप्रति महाकाल की पूजा अर्चना करने के पश्चात् हरसिद्धि को धोक लगाते थे, फिर कालिका माता की पूजा करते थे, तब वे पुनः अपने महलों में प्रवेश करते थे। (117-143)

स्वर्ग के राजा इन्द्र पर आपदा आई। किसी ने भी सहायता नहीं की। तब इन्द्र ने दूत भेजकर विक्रमादित्य से सहायता हेतु निवेदन किया। विक्रमादित्य ने सेना सजाई और युद्ध क्षेत्र में जा डटे। उन्होंने अनगिनत राक्षसों का संहार किया। युद्ध क्षेत्र में रक्त का कीचड़ हो गया। युद्ध में विजय प्राप्त कर विक्रम इन्द्रपुरी पहुँचे। इन्द्र ने उनका खूब सम्मान किया और 'सिंहासन बत्तीस' उपहार में दिया। वह सिंहासन इतना तेजवान था कि उस पर किसी की आँख नहीं टिकती थी। देखने पर आँखे चौंधिया जाती थी।

उस सिंहासन को विश्वकर्मा ने निर्मित किया था। उस सिंहासन पर वही बैठ सकता था, जिसके हृदय में सत्य हो। जिसमें बत्तीस गुण लक्षण हों, वही उस सिंहासन पर बैठ सकता था। विक्रम में तो छत्तीस गुण लक्षण थे। वे उस सिंहासन पर सुशोभित होते थे। उस सिंहासन पर बैठते ही अद्भुत भाव उत्पन्न होते थे। उसमें सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय परखने की दैवीय क्षमता उत्पन्न हो जाती थी। (144- 150)

बेताल भट्ट ने अपनी साधना के बल पर तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत के अतिरिक्त अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की थी। उसकी सिद्धियों का लक्ष्य राजहित ही था। स्वयं विक्रमादित्य को भी अनेक सिद्धियाँ प्राप्त थी। हरसिद्धि माता एवं कालका माता का वरदहस्त उन्हें प्राप्त था। वे इनसे साक्षात् रूप में बात करते थे।

एक बार बेताल ने सोचा विक्रमादित्य की परीक्षा ली

जाये। देखें वह अपनी सिद्धियों में कितना दक्ष है। उसने माया रची और अपनी माया के घेरे में उन्हें घेर लिया। यह घेरा वैसा ही था जैसा महाभारत काल में चक्रव्यूह था। विक्रमादित्य तो बहुत चतुर और प्रवीण थे। उन्होंने धैर्य धारण कर मौन रहते हुए बेताल के सभी प्रश्नों का समाधान भी किया और स्वयं को सुरक्षित उसकी माया से बाहर भी निकाल लिया।

विक्रमादित्य की सिद्धि क्षमताओं को जानकर बेताल भट्ट अत्यन्त प्रभावित और आश्वस्त हो गया तथा उसने विक्रमादित्य की शरण में आकर उन्हें धन्य-धन्य कहा तथा परीक्षा में खरा उतरने पर प्रशंसा की। मैंने आपकी परीक्षा लेकर मूर्खता का कार्य किया है। अब मैं अपनी समस्त सिद्धियाँ आपके आधीन करता हूँ और पुनः साधना करने जाता हूँ।

हे मालव राज! आप नियम और धर्म पूर्वक मालव देश पर राज करो। द्वापर में धर्मराज युद्धिष्ठिर हुए थे, जिन्होंने धैर्य पूर्वक यक्ष के प्रश्नों के उत्तर देकर स्वयं को प्रज्ञावान सिद्ध किया था। कलयुग में आप हुए हैं, जिन्होंने मेरे कठिन प्रश्नों का समाधान धैर्य पूर्वक करते हुए दान, दया, न्याय, नीति और धर्म की रक्षा की है। आप धन्य हैं।

महाराज विक्रमादित्य चौसठ कला प्रवीण थे। वे अत्यन्त गुणवान थे। वे नीर, धीर, रणवीर, दानी, मानी और सिद्ध थे। विक्रम जैसा श्रेष्ठ राजा एवं मानव दूसरा यशस्वी और कोई नहीं हुआ। (151-163)

मालवा हरा-भरा देश है। यहाँ कभी भी अकाल नहीं पड़ता था। कोई पाप प्रगट हुआ जिससे महाकाल का कोप प्रकट हुआ। तीन वर्षों तक लगातार वर्षा नहीं हुई। कुएँ और तालाब सूख गए। नदियों में पानी सूख गया। ऐसा कठिन अकाल मालवा में पड़ गया। खेतों में दरारें पड़ गई। वृक्ष ठूँठ बन गए। पक्षी मरकर समाप्त हो गए। पशुओं का चारा समाप्त हो गया। सर्वत्र त्राही-त्राही मच गई। लोग प्रयाण करने लगे। पूर्व में तो अन्यत्र अकाल पड़ने पर लोग मालवा में प्रवेश कर शरण प्राप्त करते थे। इस बार मालवा के लोग अन्यत्र जाने लगे। मालवा की 'पग-पग रोटी, डग-डग नीर' वाली महिमा खंडित होने लगी थी।

महाराज विक्रम विचार करने लगे कि इस कठिन समस्या का समाधान कैसे हो? उन्होंने अन्न-जल त्याग दिया और महाकाल भगवान के समक्ष आर्तपुकार लगाई। हे जगतपति! हे नगर पति! आप जागो और इस अकाल को सुकाल में परिवर्तित करो।

महाराज विक्रम की आर्त पुकार सुनकर नगराधिपति महाकाल ने दर्शन दिए और कहा- हे विक्रमादित्य! चेतो! सावधान होकर इन्द्र से जो तुम्हारा प्रेम व्यवहार है, उसे भंग कर दो और उसे वर्षा करने के लिए ललकार लगाओ। प्रजाहित पर यदि आघात हो रहा हो तो रिश्ते, सम्बन्ध, मित्र आदि की भी चिन्ता नहीं करना चाहिए। प्रजाहित सर्वोपरि है। इसलिए तुम धनुष-बाण धारण करो और इन्द्र को ललकार दो। प्रजाहित साधो। उसका दुःख टालो और अकाल को सुकाल में परिवर्तित कर दो।

महाराज विक्रम ने जब भगवान महाकाल का आदेश सुना, तब उनका विक्रम जाग गया। उन्होंने धनुष-बाण सजा लिए और धनुष पर बाण चढ़ाकर ललकार लगाकर इन्द्र से कहा- हे इन्द्र! झट-पट वर्षा करो। जब उन्होंने जाना कि इन्द्र उनकी ललकार पर ध्यान नहीं दे रहा, तब अनेक बाण छोड़कर आकाश में घुमड़े बादलों को फाड़ दिया। झमाझम वर्षा होने लगी। सब तरफ ठाठ आनंद हो उठा। वर्षा हो जाने पर अकाल समाप्त हो गया। प्रजा आनंदित हो उठी।

देवताओं ने धन्य-धन्य कहकर विक्रमादित्य की प्रशंसा की। महाकाल भगवान ने आशीर्वाद दिया। माता हरसिद्धि एवं कालका ने कहा- 'हे विक्रमादित्य! तुम परीक्षा में खरे उतरे हो। सत्य की विजय हुई है।'

कुएँ और बावड़ियाँ भर गई। उनकी सेजें (स्त्रोत) जीवित हो उठे। ताल-तलैयाँ जलपूरित हो गई। नदियाँ कल-कल की ध्वनियाँ करती बहने लगी। वृक्ष झूम-झूमकर विक्रम का वंदन करने लगे। पक्षी कल्लोल करने लगे। सब तरफ मंगल पाठ होने लगे।

मालवा में ऐसा आनंद उमड़ आया। बंदीजन यशगान करने लगे। प्रजा जय-जयकार करने लगी। सब कहने लगे- हे

मालवाधिपति! हे जग के पालन हार! विक्रम और महाकाल आप की जय हो। (164 से 177)

महाराज विक्रमादित्य की एक रानी जिसका नाम सतवंती था। वह प्रतिदिन व्रत-नियम और पूजा में अपना समय व्यतीत करती थी। उसके हृदय में सत्य का निवास था। वह यथा नाम तथा गुण थी।

वह प्रतिदिन ब्रह्म मुहूर्त में क्षिप्रा स्नान करती थी। वहीं क्षिप्रा में स्नान करते समय सूर्य को अर्घ्य देती थी। फिर वह भगवान महाकाल के दर्शन करने के पश्चात् कालिका माता के दर्शन करने जाती थी। गाय माता की पूजा करती व नर्मदा मैया का ध्यान लगाती थी। हरसिद्धि माता के दर्शन करने के पश्चात् वह अपने सद्गुरु के दर्शन करने उनके आश्रम जाती थी। इसके पश्चात् वह अपने महलों में लौट जाती थी।

वह रानी सतवंती बाल ब्रह्मचारिणी थी। सदा मधुर वचन कहती थी। वह समस्त रानियों में तथा स्वयं महाराज विक्रमादित्य द्वारा अत्यन्त सम्मान प्राप्त थी।

उसने बारह वर्षों तक चन्द्र व्रत किया तथा रात-दिन ओम का जाप किया था। ऐसी व्रतधारी रानी सतवंती ने अन्न त्यागकर फलाहार का व्रत लिया और फिर फल भी त्याग दिए और दूधाहारी हो गई।

उसने संसारी इच्छाओं का त्याग कर दिया और महाकाल भगवान की अनुरागिनी हो गई। वह धरती पर आसन बिछाकर शयन करती थी। स्वयं के वस्त्र स्वयं ही धोती थी। अपनी सेवा वह स्वयं ही करती थी।

जब राजा भरथरी ने योग धारण किया, तब वह अत्यन्त हर्षित हो उठी थी। उसने उनका अभिवादन किया। भरथरी प्रतिदिन रानी सतवंती के महल द्वार पर आकर अलख लगाते थे और भिक्षा की याचना करते थे।

सतवंती भरथरी योगी को नित्यनियम से भिक्षा देती थी। योगी भरथरी उसके कुशलक्षेम पूछकर चले जाते थे। भरथरी अपने नेत्र झुकाकर रानी को आशीर्वाद देते थे। वे कहते- 'माता भिक्षा दो।' भरथरी समय नहीं चूकते थे।

कणहार की लीला तो स्वयं लीलाधर ही जान सकते हैं। एक दिन योगी भरथरी भिक्षा हेतु नित्य नियमानुसार एवं समयानुसार रानी सतवंती के द्वार पर भिक्षा मांगने आए। उन्होंने अलख-अलख का उद्घोष किया। उन्होंने बार-बार कहा- हे सतवंती माता! भिक्षा दो। योगी द्वार पर अलख जगाता हुआ खड़ा है। योगी भरथरी ने बार-बार अलख लगाई, किन्तु सतवंती रानी भिक्षा लेकर बाहर नहीं आई।

रानी सतवंती सूर्यपूजा हेतु जलकुण्ड में खड़ी थीं। उनकी देह नग्न थी। वे आँखें बन्दकर सूर्य का ध्यान कर रही थी। ध्यानावस्था में उन्हें योगी भरथरी की अलख सुनाई नहीं पड़ी।

उन्हें जैसे ही अलख-अलख का नाद सुन पड़ा वे तत्काल जलकुण्ड से बाहर निकलीं और उसी अवस्था में भिक्षा हेतु रखी हुई सामग्री का पात्र उठाकर बाहर भागीं। तब तक योगी भरथरी द्वार से आगे बढ़ गए थे। रानी भिक्षा सामग्री हाथों में उठाए उनके पीछे 'योगी रूक जाओ, योगी रूक जाओ' कहती हुई दौड़ने लगी।

रानी की नग्न अवस्था जानकर योगी ने तत्काल पीठ फेर ली और आगे बढ़ते रहे। वे अलख-अलख का नाद करते आगे बढ़ते चले जा रहे थे और रानी 'योगी रूक जाओ' का घोष करती भिक्षा लिए पीछे दौड़ रही थी। वे बार-बार कह रही थी- 'हे योगीराज! रूक जाओ। मुझे क्षमा कर दो। मेरे हाथ में भिक्षा है, उसे स्वीकार करो।

रानी के बार-बार पुकारने पर भी भरथरी नहीं रूके। भरथरी नहीं रूके तो रानी भी नहीं रूकी। सतवंती नारी रानी ने तय कर लिया था कि मैं भिक्षा देकर ही वापिस महलों में लौटूँगी। वे कह रही थी योगी मेरा और स्वयं का नित्य नियम भंग मत करें। आप तत्काल रूक जाओ। आपको भगवान महाकाल की आन है। (178-205)

जब भरथरी बिना भिक्षा लिए तीव्रगति से अपने मार्ग पर आगे बढ़े चले जा रहे थे, और रानी सतवंती उनके पीछे भिक्षा लिए दौड़ रही थी। तभी सिद्ध गुरुदेव सामने आ मिले। उन्होंने जब सारी स्थिति देखी तब उन्होंने भरथरी को आदेश दिया- 'हे भरथरी! रूक जाओ। भिक्षा हेतु अलख लगाकर भिक्षा लेने से

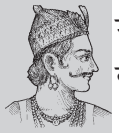

मना करना उचित नहीं होता। तुम तत्काल रानी से भिक्षा प्राप्त करो अन्यथा वैराग वेश त्याग दो और पुनः सांसारिक हो जाओ।'

भरथरी रूक गए। उन्होंने सिद्धदेव से हाथ जोड़कर निवेदन किया कि- हे प्रभु! माता नग्नावस्था में है। मैं उन पर दृष्टि कैसे डाल सकता हूँ? मैंने इसी कारण अपनी पीठ फेर ली है। मैं न तो रानी की उपेक्षा कर रहा हूँ न भिक्षा की। यही मेरी विवशता है।

भरथरी का कथन सुनकर सिद्धदेव ने कहा- 'अरे योगी भरथरी! तुम्हें धिक्कार है। तुम कैसे सिद्ध हो? तुम्हें अभी भी देहभान है। अरे! तुम्हारी साधना व्यर्थ है। तुम्हारा देहाभान और सिद्ध होने का अभिमान व्यर्थ है। निष्प्रयोजन है।

अरे भरथरी! यह रानी सतवंती धन्य है। उसे तो देहभान रहा ही नहीं। वह तो मुक्त हो चुकी है। इसी मुद्रा को तो मुक्ति कहना चाहिए। उसकी सभी ग्रंथियाँ खुल गई हैं। समस्त इच्छाएँ समाप्त हो गई है। वह परमहंस हो चुकी है। उसे तो केवल अलख का ही भान है। तुम उससे भिक्षा प्राप्त कर उसका मान रखो।

सद्गुरु सिद्धदेव की फटकार सुनकर योगी भरथरी को भान हो गया। उनके भीतर ज्ञान की ज्योति प्रदीप्त हो उठी। उनका समूचा सिद्ध होने का गुमान गलकर बह गया। भरथरी की आँखों से अश्रु बहने लगे। भ्रम का रोग मिट गया। उसने रानी सतवंती से भिक्षा ग्रहण कर कहा- 'माता! आपसे भिक्षा प्राप्त कर यह भरथरी आज धन्य हो गया है।'

हे माता! आप अब वापिस अपने महल में लौट जाओ और अपने नित्य नियम का पालन करो। हे माता! मुझे क्षमा कर दो। ऐसा कहकर भरथरी ने रानी सतवंती को नमन किया। उनके चरणों में अपना सिर रखकर बार-बार क्षमा याचना की।

भरथरी द्वारा भिक्षा ग्रहण कर लेने के पश्चात् रानी ने कहा- मैं अब महलों में नहीं लौंटूगी। महलों का त्याग स्वतः हो गया है। मैंने वैराग्य धारण कर लिया है। आज दो सिद्धों का सत्य संयोग हुआ है। हे सिद्ध पुरुषों! आज कृपा कर मुझे आशीर्वाद प्रदान कर दो। मैं सत्य धर्म पर अडिग रहूँ। ऐसे आशीर्वाद के साथ मुझे योग की भिक्षा प्रदान कर दो।

दोनों सिद्ध रानी का सत्यनिष्ठ भाव जानकर भाव विभोर हो उठे। उन्होंने कहा- 'हे सतवंती! तू सत्य को अपने हृदय में धरकर तथा समस्त ग्रंथियों से एवं इच्छाओं से मुक्त हो गई है। तूने परमहंस सत्य व्रत धारण कर लिया है। तुम्हारे चित्त में अलख विराजित है। इतना कहकर सिद्धों ने उसे आशीर्वाद प्रदान कर दिया। आशीर्वाद देकर दोनों अपने-अपने मार्ग चले गए।

सतवंती सिद्ध हो गई। वह उसी क्षण से मुक्ता कहलाई। उसने सत्य विधान को धारण कर उसे अपना आराध्य बना लिया और हिमालय शैल में तपस्या करने चली गई। वह तपस्या करते-करते ब्रह्मवादिनी स्वरूपा हो गई। लोक में यह भी मान्यता है कि, उसकी देह पर बहुत लम्बे रोम उग आए थे। शीश के बाल ऐड़ी तक लम्बे व घने हो गए थे। इसके फलस्वरूप उसकी देह लज्जा केश आवृत्त हो गई थी। यह प्रकृति माता की कृपा थी। उसने अपनी तपस्विनी पुत्री की लज्जा पर रोम-केश का आवरण चढ़ा दिया।

जब वे तपस्या हेतु जाने को उद्यत हुई थीं, तब स्वयं महाराज विक्रम वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने रानी सतवंती की पूजा अर्चना की तथा विवाह बंधन से मुक्तकर निवेदन किया कि- 'हे देवी! आप तपस्या करने पधारें। करोड़ों वर्षों तक तुम्हारा यश बना रहे।' आपके कारण मालवा धन्य हुआ है। यह उज्जयनी नगर भी धन्य हो गया है। जब तक सूर्य-चन्द्र है, तब तक आपका नाम अमर रहेगा।

'महाराज गंधर्व सेन के वंश में गुणवंतों का मार्ग सदा जीवंत रहेगा। उनके वंश में या तो सिद्ध योगी हुए या फिर महान सम्राट हुए हैं। सतवंती मुक्ता तथा पिंगला सिद्ध नारियाँ हुई है। इस वंश की सतियों ने अपना यश सर्वत्र फैलाया है। (206 से 221)

विक्रमादित्य के राज्य एवं उनके चरित्र के अनगिनत बखान, कथाएँ एवं गाथाएँ, गीत उपलब्ध हैं। वे सब भी उनके चरित्र का पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकते। विक्रमादित्य तो कहन से ऊपर हैं। वे शब्दातीत है। वे गुणों की खान हैं। उनके गुणों का वर्णन शब्दों में नहीं हो सकता। उनका यश तो अपरंपार है। गाथाकार कहता है- मैंने तो जो कहा है, वह सुना सुनाया है। मैंने उसी का वर्णन यहाँ किया है।

कई युगों के उपरान्त विक्रमादित्य जैसा सत्यवान पुरुष अवतार लेता है। माता धरती जब तपस्या करती हैं, तब कहीं ऐसा महापुरुष पैदा होता है।

महात्मा तुलसी ने जिस प्राकर राम राज्य का वर्णन किया है, वैसा ही विक्रमादित्य का शासन था। परमार्थ को करते -करते ही राज्य का काम संचालित होता है। विक्रमादित्य न्याय, नीति और धर्म के पालन में सदा सजग रहते थे। वे प्रजा के सुख के लिए अपना तन, मन, धन, सर्वस्व अर्पण करने के लिए सदा तत्पर रहते।

वे कर्ण के समान दानवीर और कृष्ण के समान ज्ञानी थे। अर्जुन के समान रणबाँकुरे और भीम के समान बलवान थे। वे म्लेच्छों पर श्रीराम के समान थे और वे लक्ष्मण के समान नरश्रेष्ठ थे।

उन्होंने कभी भी रण में जूझने के लिए प्राणों तक की भी चिन्ता नहीं की। हरिशचन्द्र ने सत्य की रक्षा और वचन पालन करने के लिए राजपाट त्याग दिया था। अपने प्राणों तक की परवाह नहीं की। वैसे ही विक्रम भी थे। विक्रमादित्य का मन बहुत गहरा और समुद्र की भाँति अथाह था। विक्रम का वचन था। प्राण चाहे चले जाएँ, किन्तु वचन नहीं टलेगा। सूर्य-चन्द्रमा टल सकते हैं। अपना मार्ग बदल सकते है, किन्तु विक्रम का वचन नहीं बदल सकता। महाराज विक्रम ने शकों को मारकर देश से बाहर भगा दिया। उन्हीं के अनुसार यशोधर्मन ने हूणों को देश से खदेड़ा।

उज्जैन में विक्रम ने राज्य किया। धार में भोज ने राज किया। दशपुर में यशोधर्मन ने राज्य किया। सबने मिलकर देश पर विदेशी आक्रांताओं का नाश किया और उन्हें देश की सीमा से बाहर खेदड़ दिया।

यह मालवा भूमि धन्य है। यह रत्नों की खदान है। इस मालवा माता ने विक्रम जैसे सपूतों को जन्म देकर खूब गुणगान करवाया। मालवा में भरथरी ने तपस्या की। उनकी राजसत्ता और विक्रमादित्य की राजसत्ता यशस्वी थी। कई वर्षों के उपरांत महाराज भोज हुए, वे भी जगजीत थे। ये सभी महान पुरुष मालवा के यशस्वी सपूत थे। मालवा माता ऐसे सपूतों को जन्म देकर धन्य हो गई।

विक्रमादित्य के दरबार में रत्नों का भण्डार था। विक्रम का दरबार इन्द्र के समान सुशोभित होता था। उनके दरबार की शोभा शब्दों में कह पाना बहुत कठिन है। बंदीजन यश गाथाएँ गा-गाकर विक्रमादित्य का गुणगान करते थे।

राम राज्य की महिमा बहुत बड़ी थी, वैसा ही बड़ा यश विक्रमादित्य के राज्य को माना जाता है। उनके राज्य में प्रकृति समरस रहती थी। देवता सदा अनुकूल रहते थे। राजा विक्रमादित्य ने सहज और सुगम समाज की रचना की थी। स्वयं राजा और राज्य के कर्मचारी मंत्री आदि राजधर्म का पालन करते थे। जैसी राज की मति होती है, वैसी ही मति प्रजा की भी होती है। सभी राजधर्म का पालन करते थे। किसी के भी मन में पाप का कुविचार नहीं आता।

इन्द्र आवश्यकतानुसार अर्थात् जितनी आवश्यकता होती है, उतनी ही वर्षा करते थे। शरद, शीत, शिशिर तथा बसंत ऋतुएँ अपने-अपने समय पर आती थीं। विक्रम के दरबार में चोरों का आतंक नहीं था। कोई मार्ग लूटने वाला (राहजन) या ठग नहीं था। दण्ड कठोर थे। अपराधियों पर तत्काल अंकुश लग जाता था। घरों में ताले नहीं लगते थे। राज्य में भय नहीं था। सब तरफ शांति एवं निर्भयता का वातावरण था। कोई भी राज विमुख नहीं था। राजद्रोह नहीं होता था। कोई भी दुखी या दरिद्र नहीं था। कोई भिखारी अथवा मूर्ख भी नहीं था।

विक्रम के राज्य में माता-बहनों का पूरा आदर-सम्मान होता था। गऊ और ब्राह्मण के मान एवं रक्षा का ध्यान राज्य में सदा रखा जाता था। कोई भी निष्क्रिय एवं आलसी नहीं था। कोई कर्महीन और सत्यहीन भी नहीं था। विक्रम के राज्य में कोई मतिहीन भी नहीं दिखता था।

ऐसा विक्रमादित्य का सुराज था। तुलसीदास जी ने राम राज्य का ऐसा ही वर्णन किया है। विक्रमादित्य ने कलयुग में त्रेता युग जैसी समाज की रचना की थी। जब तक सूर्य-चन्द्र है, जब तक धरती माता है, तब तक विक्रमादित्य का नाम और यश अमर रहेगा। (222 से 248)

सुलभ नाम की दुर्लभ यश पाताका

वारता राजा विक्रमाजीत जी के सृजक बस्तीराम हैं। ये दरियाखान तहसील बक्खर जिला मियांवाली के रहने वाले थे। वस्ती राम जी जरगर अर्थात् सुनार थे। मेरे परिवार के कहीं से ये रिश्तेदार होते थे। मेरे परिवार में सदा कुल गुरुओं का ठिकाना बना रहता था। हमारी गुरुपेढ़ी झंग की थी। झंग सुफियों का केन्द्र भी था। वे हमारे गुरु भाई थे। मेरे पिता शुरू से ही संत स्वभाव के थे और सदा गुरुओं की सेवा में लगे रहते थे। खेती उनके पास खूब थी। सिंध दरिया हमारे गाँव में पश्चिम में बहता था। उससे खूब आबपाशी होती थी। घर में लंगर बनता था। तंदूर की रोटी और मक्खन, छाछ यही भोजन खास होता था। मैंने अपनी माँ को तंदूर पर ढेर सारी रोटियाँ बनाते देखा था।

बस्तीराम जी हमारे घर गुरुओं के ठिकाने पर रुकते थे और रात भर किस्से सुनाते थे। गाते बहुत मीठा था। पंजाबी दोहरे तो ऐसे मीठे सुनाते थे कि समां बंध जाता। दोहरे सूफियाना दर्शन के होते है। श्रृँगार वाले टप्पे भी वे खूब सुनाते थे। मेरे पिता ने सुन-सुनकर बहुत सी कहानियाँ और वारता, दोहरे, टप्पे यादकर लिए थे, जो उन्हें विभाजन के बाद मनासा में आ बसने के बाद भी याद रहे। यह वारत उन्हीं की स्मृति का प्रसाद है। कुछ किस्से कहानियाँ भी उनसे सुनी थी। वे 102 वर्ष की लम्बी उम्र जिए और मरने के एक मिनिट पहले तक खूब बातें मुझसे करते रहे। अंत में अचानक राम-राम कहकर मौन हो गए। फिर न वे बोले, न जागे।

रूपचंद जी जरगर मेरे बड़े बहनोई (जीजा) थे। वे भी अच्छे गायक थे। यह 'वारत' उन्होंने भी बस्तीराम से सुनी थी। मैंने इसे उनसे सुनकर अपनी कापी की वारत को प्रमाणित किया। जब बस्तीराम जी पंजग्राही (मेरा गाँव) में रहकर गीत, किस्से बगैरा सुनाते थे, तब मेरी उम्र 11 वर्ष की थी। उनकी सेवा मेरे जिम्में रहती थी।

लहंदी (पंजाबी की उपबोली) की यह वारत एक दुर्लभ रचना है। हो सकता है यह अभी भी पंजाब के किसी भाग में सुनी-सुनाई जाती हो। वैसे संभावना बहुत कम है। वहाँ अब न तो बस्तीराम जरगर है और न वह परम्परा। हो सकता है विभाजन के बाद आकर हिन्दुस्तान के किसी हिस्से में कोई मियांवाली क्षेत्र का व्यक्ति बसा हो और उसे यह वारत याद हो। बशर्ते उसकी उम्र अस्सी वर्ष से ऊपर हो। यह सुलभ नाम की दुर्लभ यश पताका है।

इस वारत में एक नाम और आता है आलमशाह मशहूरी या मंसूरी। उसने बेताल पच्चीसी के किस्से लहंदी में लिखे। खूब सुनाए। उस क्षेत्र में हिन्दुओं के अनेक किस्से कहानियाँ मुसलमान शायरों ने लिखे। मैं जिस रामलीला का निदेशक रहा और जो रामलीला (प्रेम प्रचारिणी राम मंडली) पाकिस्तान से हमारे साथ जुड़ी रही, वह रामलीला भारत में भी कई वर्षों तक चलती रही। रामानंद सागर की रामायण के दूरदर्शन पर प्रसारण के बाद पिचहत्तर साल तक चली उस रामलीला का लेखक मोहम्मद हुसैन था। नाटक शैली की वह रामलीला लहंदी और उर्दू के ठाठ में खूब चली।

आज हमें लहंदे पंजाब का वह हिस्सा पराया लगता है। एक समय वह हमारा ही हिस्सा था। इस कारण किस्से, कहानियाँ वारत, अखाण आदि का आदान-प्रदान होता रहा। लोक साहित्य के पैर नहीं पंख होते हैं। वह सात समुद्र की यात्रा कर जब वापिस लौटता है, तब बहुत कुछ छोड़ आता है और बहुत कुछ जोड़ भी लाता है। पाठ भेद व भाषा भेद लोक साहित्य के गुण हैं। यह कंठानुकंठ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत की तरह प्राप्त होकर सैकड़ों वर्षों तक जीवित बना रहता है, इसीलिए इसमें बदलाव स्वाभाविक होता है।

मैंने इस वारत का हिन्दी अनुवाद किया है। हिन्दी और लहंदी मेरी माँ-मौसी है। इसलिए अनुवाद की प्रमाणिकता पर विश्वास किया जा सकता है।

वारत राजा विक्रमाजीद दी

मूलपाठ लहंदी पंजाबी

(लिक्खी तो सुणाई वसती राम जरगर)
(पिंड- दरियाखान, तहसील बक्सर, जिला मियांवाली, पाकिस्तान)

राजा होया उज्जैन विच, नाम विक्रमाजीत।
संवत् चलाया विक्रमी, उसदे गावां गीत।। 1

धन्न उज्जैनी धन्न छीपरा, तीरथ गंगाघाट।
महाकाल राजा उथे, होर सुण्या हे भाट।। 2

इन्दरपुरी जेहिं रौनक कहंदे, अन्न धन्न दा ठाठ।
कवि कवित्त करदे सुंदर, विरदा करदे भाट।। 3

शोहरत विक्रमाजीत दी, कहंदे तार नितार।
बड़े-बड़े बुजुरगां तूँ, सुण्या विक्रम सी दातार।। 4

जे तक धरती चांद सितारे, सूरज दा चमकार।
लिख-लिख थक्के कह-कह थक्के, सारे इलमदार।। 5

हिक सूरज नौ ग्रह सुणीदे, रहंदे विच दरबार।
नहीं मुकाबला कोई उन्हां दा, बड्डे इलमदार।। 6

जितने इलम जगत ते होंदे, ओ सब विक्रम जाणे।
पखु-जनावरां तक दी बोली, विक्रम राजा जाणे।। 7

मुल्क विच वड़ आए दुशमण, सारे जंग बहादर।
मार काट के बाहर कीते, खूब कराया आदर।। 8

दुशमण जित्ते इस्से खातर, नाम विक्रमाजीत।
सूरज वरगी शोहरत होई, दुशमण होए मीत।। 9

कोई कहंदे जित्त दे खातर, विक्रम संवत् चलाया।
कोई कहंदे पहले संवत् दे विच, संवत् नवां रलाया।। 10

कोई कुझ वी कहंदा रहवे, सानूं लगदरियाँ झल्ल।
विक्रमजीत चलाया संवत्, ए हे पक्की गल्ल।। 11

हिंक सिंघासन इन्दर वरगा, रत्तन मणिया दार।
बत्ती पुतलियाँ उसते जड़ियाँ, पाए पक्के चार।। 12

बत्ती पुतलियाँ इवें जाणो, न्याय दियाँ पहरेदार।
सच्च-झूठ नूँ फौरन परखण, रहंदियाँ सी होशियार।। 13

राजा विक्रम बैठ सिंघासन,करदा सच्चा न्याय।
खुल्ली-खुल्ली गल्लां होदियाँ, होंदा नहीं छुपाव।। 14

सच्चा-सच्चा न्याय करेंदा, राजा विक्रमाजीत।
इस गल दे किस्से चलदे, मंदरां विच मसीत।। 15

दान पुन्न दी गल न पुच्छो, दोनइ हथां वंडदा।
जितना वंडदा उतना बघदा, करण वांग हथ मंडदा।। 16

विक्रमजीत दे दसां दिसां, गांदे किस्से गीत।
कथा सुणांदे वक्खो-वक्खी, अपणी अपणी नीत।। 17

वीर विक्रमाजीत, दुशमणा दा दुशमण ते मितरां दा मीत।। 18

पिंड-पिंड विच गल्लां चल्लण, धन्न विक्रमाजीत।। 19

दुशमण कम्बदे थर-थर करदे, सट हथियारां भजदे।
चोर चकार न वसदे हरगिज़, घरां न जंदरे लगदे।। 20

इज्जत जनांनियां दी बहुँ होंदी, कपटी बेमौतां मरदे।
लुट्ट न होंदी किसे तरहां दी, ना कोई रिश्वत भर दे।। 21

सिंघासन दियां बत्ती पुतलियां, झूठ-सच कह दें दी।
विक्रमजीत नू न्याय-धरम दी, सच्ची खबरां रंहदी।। 22

हिक किस्सा बेताल भूत दा, खूब सुणाया जांदां हे।
पंजी किस्से आलमशाह, मशहूर लिख्या गांदा हे।। 23

रब्ब करे तो किसमत जागे, जा पहुँचा उस पासे।
जित्थे राजा विक्रम ने सी, राज कट्या सत खासे।। 24

शिव शम्भू दे दरसन पावां, राजा भरथरी गावां।
छिपरा दे जल डुबकी लाके, सारे पाप मिटावां ।। 25

पूरन भगत ते गोपीचंद दी लम्बी तान सुणावां।
गोरख नाथ मच्छंदर गावां, पढ़ां किशन दा नावां ।। 26

वसती राम दी इहा मन्नत, उज्जैन दे तीरथ जावां।
जित्थे पढ़या किशन सुदामां, उत्थे सीस नमावां।। 27

मत्था टेकां हरसिद्धि नूँ, काली दे दरसन पावां।
राजे विक्रम राज कर्या, उस धरती ते फेरा पावां।। 28

रब दी मरजी रब ही जाणे, ओ अपणी मरजी करसी।
वसती राम जो किसमत होसी, तां मुराद मन भरसी।। 29

करणहार तो डरदे रहिए, करद्या घड़ी न लावे पल।
पल विच नदियाँ नीर केरंदा, पल विच नदियाँ करदा थल।। 30

विक्रम रहया न भोज राज, ना मेड़ी ना शीश महल।
चला चली दा मेला वस्ती, अज गिया कोई जजासी कल।। 31

रह गए किस्से गल कहाणियाँ, साल गुज़र गए जीवें पल।
कितनेइ राजे राज गुज़र गए, चंगे माड़े भलो भल।। 32

नाँ नहीं मिटदा कदां उन्हां दा, जिन्हां मसले कीते हल।

दो नां कदां न मिट सकन गे, राजा विक्रम भोज सचल।।33

सात समंदर पार तईं नाम, इन्हां दा खिंडिया।
वसती राम ए वारत लिख के, फरज निभाया जिंडिया।।34

पिंड-पिंड विच जांदा वस्ती, किस्से कहंदा सोहणे।
तुस्सा वी तां कदां-कदां, ए किस्से सुणे होणे।।35

भावार्थ

उज्जैन में विक्रमाजीत नाम का राजा हुआ, जिसने विक्रमी संवत् चलाया। मैं उसी के गीत गाता हूँ। उज्जैनी धन्य है। क्षिप्रा धन्य है। वहाँ गंगा घाट जैसा तीर्थ है। वहाँ का असली राजा महाकाल है और सभी उनके भाट हैं। कहते हैं वहाँ इन्द्रपुरी जैसी रौनक थी। अन्न और धन का ठाठ था। कवि सुंदर कवित्त करते हैं। भाट लोग विरदा गाते हैं। ये भाट लोग विक्रमादित्य की ख्याति कहकर पूरा विवरण बखानते हैं। मैंने ऐसा बड़े बुजुर्गों से सुना कि विक्रम राजा बड़ा दातार था।

जहाँ तक चाँद, सितारे और सूर्य की चमक है, जिनका यश बड़े-बड़े विद्वान लिख-लिख और सुना-सुनाकर थक गए हैं। फिर भी यश बखान पूरा नहीं हो सका।

ऐसा सुनने में आया है कि राजा विक्रम तो सूरज जैसा था और उनके दरबार में नौ ग्रह रहते थे। जो बहुत विद्वान थे। उन विद्वानों की कोई बराबरी नहीं कर सकता था। वे बहुत ज्ञानी थे।

जितने भी संसार में इल्म (विद्याएँ) हैं, उन सब विद्याओं का ज्ञान विक्रमादित्य को था। वे तो पक्षियों और पशुओं की बोली भी समझते थे।

देश में बहुत जंग बहादुर (युद्ध प्रवीण) दुश्मन घुस आए थे। वीर विक्रमादित्य ने उन सबको मार काटकर देश से बाहर खदेड़ दिया। उसी महान जीत के उपलक्ष्य में उनका खूब सम्मान किया गया। उन्होंने दुश्मनों पर जीत हासिल की, इसीलिए वे विक्रमाजीत कहलाए। उनकी ख्याति सूर्य के समान प्रकाशित हो गई। समस्त शत्रु उनके मित्र हो गए। सभी उनके अधीन हो गए।

कुछ लोग बताते हैं कि बाहरी दुश्मनों के कारण विक्रम ने विक्रमी संवत् चलाया। कुछ लोग कहते हैं कि पहले से चलने वाले संवत् में विक्रमादित्य ने जीत के बाद उसे अपना संवत् घोषित किया। कोई कुछ भी कहता रहे, हमें तो यह बात कोरी गप्प लगती है। विक्रमादित्य ने ही यह संवत् चलाया। यही पक्की बात है।

एक सिंहासन था। वह सिंहासन इन्द्रासन जैसा भव्य, सुन्दर और रत्न मणियों से जड़ा हुआ था। उस पर बत्तीस पुतलियाँ स्थित थी। उसके चारों पाँव बहुत मजबूत थे। (यहाँ चारों पाँव से अर्थ धर्म के चार पाँव सत्य, शील, शुचिता और दया-दान से किया गया प्रतीत होता है। 'चारहि चरण धरम जग माहीं')

बत्तीस पुतलियाँ ऐसी थी मानों न्याय की पहरेदार हैं। वे पुतलियाँ सत्य-असत्य की तत्काल पहचान कर लेती थी। सदा सचेत रहती थी। राजा विक्रमादित्य उस सिंहासन पर बैठकर सच्चा न्याय करता था। सारी बातें खुलकर सामने आ जाती थी। कुछ भी छुप नहीं सकता था। विक्रमादित्य सच्चा-सच्चा न्याय करता था। इस बात के कई किस्से इधर सब तरफ मंदिरों और मस्जिदों तक में बखाने जाते हैं।

दान और पुण्य की तो बात ही मत पूछो। उसका तो वर्णन करना ही कठिन है। विक्रमादित्य दोनों हाथों से दान बांटता था। वह जितना बाँटता था, उतना ही बढ़ जाता था। विक्रमादित्य के हाथ में कर्ण जैसी रेखा मंडी हुई थी। वह सूर्यपुत्र कर्ण ही था।

वीर विक्रमादित्य के किस्से दसों दिशाओं में सुनाए जाते थे। उसके गीत गाए जाते थे। सब अपनी-अपनी मति, जानकारी और मान्यताओं के आधार पर अलग-अलग कथाएँ सुनाते हैं।

कहा जाता है वीर विक्रमादित्य दुश्मनों का दुश्मन और मित्रों का मित्र था। गाँव-गाँव में उनकी खूब चर्चा होती है। सब कहते हैं विक्रमादित्य धन्य था। महान था। शत्रु उसके नाम से कांपते और थर-थराने लगते तथा हथियार डालकर भाग खड़े होते थे। चोर-उचक्के तो विक्रमादित्य के राज्य में किसी भी

हालत में नहीं बस सकते थे। घरों में ताले नहीं लगाए जाते थे। स्त्रियों की खूब इज्जत की जाती थी। जो भी कपट व्यवहार करता था, वह बेमौत मारा जाता था। अर्थात् दंड बहुत कठोर थे। किसी भी तरह की लूट-खसोट नहीं होती थी। कोई भी रिश्वत नहीं लेता था। अर्थात् सभी प्रशासक, शासक, कर्मचारी ईमानदार थे। भ्रष्टाचरण नहीं होता था।

सिंहासन पर स्थित बत्तीस पुतलियाँ सच-झूठ बतला देता थी। विक्रम को वे न्याय और धर्म सम्मत सूचनाएँ देती रहती थीं। बेताल भूत का भी एक किस्सा खूब सुना जाता है। आलमशाह जो बहुत मशहूर लिखा शायर था। उसने बेताल भूत के पच्चीस किस्से लिखे हैं। वह उन्हें गाता (सुनाता) भी है। 'मशहूर' आलमशाह का उपनाम भी हो सकता है या फिर 'मंसूरी' जो मुसलमान पिंजारों का सम्बोधन है। यह मंसूरी से मशहूरी हो गया हो। मंसूरियों की गोत्रें आज भी चौहान, भाटी आदि कही तथा पहचानी जाती हैं।

ईश्वर करे मेरी किस्मत जाग जाए और मैं वहाँ जा सकूँ जहाँ खास सत्यवादी विक्रमादित्य राजा ने राज किया था। वहाँ जाकर मैं शिव शंभू (महाकाल) के दर्शन करूँ। राजा भरथरी के भजन गाऊँ/ छिपरा (क्षिप्रा) नदी में स्नान करूँ। डुबकी लगाकर समस्त पापों से मुक्ति पा सकूँ।

भक्त-पूरन और गोपी चन्द की लम्बी तान लेकर पद गा सकूँ। गोरखनाथ, मच्छंदरनाथ के पद गा सकूँ तथा भगवान कृष्ण का नाम स्मरण कर सकूँ। (पंजाब में उन सब संतों-नाथों को खूब गाया जाता रहा है।)

बस्तीराम की यही मन्नत है कि कभी भगवान करे उज्जैन के तीर्थ पर जाऊँ। जहाँ कृष्ण-सुदामा पढ़े थे, वहाँ जाकर मत्था टेकूँ।

हरसिद्धि माता के चरणों में मत्था टेकूँ, कालिका माता के दर्शन करूँ। जिस धरती पर विक्रमादित्य ने राज किया था। वहाँ फेरा पाऊँ, अर्थात् वहाँ पहुँचूँ।

ईश्वर की इच्छा तो ईश्वर ही जाने। वह अपनी इच्छा से ही सब करेगा। बस्तीराम कहता है यदि भाग्य में होगा, तब मेरे मन की मुराद अवश्य पूरी होगी।

करणहार से सदा डरकर ही रहना ठीक है। वह करने और कर गुजरने में घड़ी-पल का भी विलम्ब नहीं करता। वह चाहे तो पल में नदियों में उफ़ान ले आए और वह चाहे तो पल में नदियों को सुखाकर जमीन में बदल दे। सब उसकी मरजी से चलता है।

न विक्रमादित्य रहा, न राजा भोज रहा। न महल अटारियाँ रही। यह सभी तो चला-चली का मेला है। कोई आज जाएगा और कोई कल जाएगा।

सब चले गए। केवल उनकी कथाएँ और चर्चाएँ रह गई। कई वर्ष बीत गए। ऐसा लगता है जैसे कुछ पल बीते हों। मानो ये सब कल की बातें हों। कितने ही राजा और उनके राज बीत गए। अच्छे-बुरे, भले सब बीत गए।

जिन्होंने लोगों की समस्याएँ सुलझाई हों। न्याय किए हैं, उनके नाम अमर हो गए है। दो नाम तो कभी भी नहीं भुलाए जा सकेंगे। एक विक्रमादित्य का और दूसरा सच्चे राजा भोज का। इनके नाम सात समुद्र पार तक विस्तारित हैं। बस्तीराम ने यह वारत लिखकर अपना फ़र्ज निभाया है। यह बस्तीराम गाँव-गाँव जाकर सुंदर-सुंदर किस्से सुनाता है। आपने भी सुने होंगे।

एक बार महाराजा विक्रमादित्य वनांचल से गुजर रहे थे। वन में एक सिंह आ गया, जिसने आसपास वनांचल में बहुत आतंक मचा रखा था। गहन वन में उन्हें दूर से गाय के कराहने की आवाज सुनाई दी। उन्होंने अपना अश्व उस ओर दौड़ा दिया। थोड़ी देर में वे गाय की ध्वनि के निकट जा पहुँचे। उन्होंने देखा एक सिंह ने गाय को दबोच रखा है।

महाराजा विक्रमादित्य ने धनुष पर बाण चढ़ाया और चाहा कि वे सिंह पर वार कर दें। तभी उन्होंने सोचा यदि बाण तनिक भी चूका, तब वह गाय को भी लग सकता है। वे अश्व से नीचे उतरे और सिंह के समक्ष जाकर करबद्ध निवेदन कर कहा - हे वनराज ! आप गाय को छोड़ दें। तब सिंह ने कहा- राजन ! मैं भूखा हूँ। गाय मेरा भोजन है। मैं इसे कैसे छोड़ दूँ? महाराज ने अत्यंत विनीत हो कहा- वनराज! आप गाय को छोड़ दें- बदले में आप मुझे खा लें। मैं प्रस्तुत हूँ। सिंह सहमत

हो गया। उसने गाय को छोड़ दिया और महाराज विक्रम को अपने पंजों में दबा लिया। निकट खड़े अश्व ने विचार किया। सिंह यदि मेरे स्वामी को खा लेगा, तब तो अनर्थ हो जाएगा। सेवक का धर्म है अपने स्वामी की रक्षा करना। भले ही प्राण ही क्यों न चले जाएँ। ऐसा विचार कर अश्व ने सिंह से कहा- हे वनराज! आप मेरे स्वामी महाराज को छोड़ दे और बदले में मेरा भक्षण कर लें। सिंह अश्व की बात से भी सहमत हो गया और उसने महाराज को छोड़कर अश्व को दबोच लिया।

यह दृश्य देखकर गाय ने कहा- हे वनराज मैं ही पूर्व में आपका भोज थी। आप अश्व को छोड़कर मेरा ही भोजन करें। मैं प्रस्तुत हूँ। सिंह ने कहा- ठीक है जैसा तुम कहो। मुझे तो अपनी भूख मिटाना है। गाय सिंह के समक्ष जाए इससे पूर्व महाराज ने पुनः स्वयं को प्रस्तुत कर दिया।

तीनों में सिंह का भोजन बनने की होड़ लग गई। यह स्थिति देखकर सिंह ने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया। वे भगवान महाकाल थे। भगवान ने कहा विक्रम मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था। तुम धन्य हो। तुम्हारी गऊ रक्षा और समस्त प्राणी रक्षा का भाव धन्य है। ऐसा कहकर भगवान अन्तर्ध्यान हो गए। भगवान के अन्तर्ध्यान होते ही गऊ बेसुध होकर गिर पड़ी। विक्रमादित्य ने जैसे ही गऊ को बेसुध होते देखा, वे व्याकुल हो उठे। वे जान गए गाय को पानी चाहिए। उन्होंने आसपास पानी की खोज की। कहीं पानी नहीं दिखा, तब उन्होंने प्रण किया कि जब तक गाय को जल नहीं पिला लूँगा, मैं भी पानी नहीं पियूँगा। उन्होंने भगवान महाकाल का स्मरण किया। भगवान का आदेश पाकर विक्रमादित्य ने बाण संधान कर पृथ्वी से जल निकाला गऊ पर पानी छिड़का। गऊ को होश आ गया। गाय ने जल पिया और वह वहाँ से अप्रकट हो गई। वह तो उज्जयिनी माता थी। जहाँ जलधारा प्रकट हुई वहाँ सरोवर बना।

महाराजा ने माता उज्जयिनी को प्रणाम किया और अश्व पर सवार होकर वापिस महलों में लौट आए। ऐसी अनेक किंवदंतियां कथाएँ, गाथाएँ महाराज विक्रमादित्य जी के लिए लोक में व्याप्त हैं। इसीलिए मैं उन्हें किंवदंती पुरुष भी कहता हूँ।

वीर विक्रमादित्य की कथा

एक बार महाराज विक्रमादित्य प्रजा का हालचाल जानने के उद्देश्य से सामान्यजन का वेश बनाकर अकेले ही नगर भ्रमण के लिए निकले। आधी रात से कुछ पहले वे नगर भ्रमण करते-करते वनांचल में पहुँच गए। दूर उन्हें एक झोपड़ी दिखाई पड़ी। वे उस झोपड़ी के निकट जाकर रुक गए। भीतर से एक नारी स्वर को यह कहते सुना 'आज आटा बहुत कम था। एक ही रोटी बन पड़ी है। इसके चार भाग कर लो। एक-एक भाग बच्चे खा लें। एक भाग आप खालें और एक भाग कुतिया को खिला दें। मुझे तो भूख ही नहीं है। यह सुनकर पुरुष ने कहा- भूख तो मुझे भी नहीं है। रोटी के तीन भाग कर लेते हैं। एक-एक भाग बच्चे खा लेंगे तीसरा भाग कुतिया को खिला देंगे।

भीतर की चर्चा सुनकर विक्रमादित्य व्याकुल हो उठे। उन्होंने सोचा मेरे राज्य का जो बखान कवि-चारण-भाट और सामंत-मंत्री करते हैं, वह तो केवल मेरी चाटुकारिता के कारण करते हैं। वास्तविकता तो यह है कि मेरी प्रजा के पास पेट भर भोजन भी नहीं है। इसका कारण है अन्न की कम पैदावार या फिर अन्न साहूकारों-सामंतों के भंडारों में भरा पड़ा है, जिसे सामान्यजन खरीद नहीं सकता।

महाराजा विक्रमादित्य ने आवाज लगाकर कहा-कोई है भीतर? मुझे प्यास लगी है। थोड़ा सा शीतल जल मिल जाय। अतिथि हूँ-राह भटक गया हूँ।' झोपड़ी का दरवाजा खोलकर घर का स्वामी बाहर आया। उसने स्वागत करते हुए कहा- आइए अतिथि महोदय। आपका स्वागत है। उसने भीतर से एक चटाई बिछाकर विक्रमादित्य को आसन दिया।

उसने विनीत स्वर में कहा। आप हमारे अतिथि है। कुछ खिलाए बिना, जल पिलाना उचित नहीं होगा। आज हमारे पास केवल एक ही रोटी है। उसके चार भाग करेंगे। एक-एक भाग बच्चों के लिए। एक भाग आपके लिए और एक भाग कुतिया के लिए होगा। आप रोटी का एक भाग ग्रहण करें और शीतल जल पीकर रात्रि विश्राम करें। विक्रमादित्य ने सोचा, इतने बड़े अभावों के बावजूद भी इस परिवार में परस्पर समर्पण भाव, अतिथि सत्कार और मूक पशु के प्रति इतनी करुणा है। यह सच में माता हरसिद्धि और भगवान महाकाल का प्रताप ही है।

यह दरिद्रता तो मेरी अनभिज्ञता है। कैसा है यह मेरा राज्य? जहाँ सामान्यजन के पास पेटभर भोजन भी नहीं है ?

विक्रमादित्य ने एक लोटा शीतल जल पिया और धन्यवाद देकर कहा- मैं अपने घर से भरपेट भोजन करके चला था। मार्ग भटक गया हूँ। अवंतिका दूर नहीं है। शीघ्र पहुँच जाऊँगा। ऐसा कहकर महाराज वहाँ से रवाना हो गए। महल में पहुँचककर वे सोने चले गए। रात भर उन्हें नींद नहीं आई। प्रातः मंत्री को बुलवाकर आदेश दिया। राज्य में अन्न का अभाव है। सामान्य प्रजा को पेट भर भोजन तक भी प्राप्त नहीं है। कृषि की ओर विशेष ध्यान दिया जाए। खूब अन्न पैदा हो सके, ऐसी व्यवस्था की जाए। जहाँ-जहाँ भी अन्न का भंडारण हो, वह गरीब प्रजा को राज्य की ओर से क्रय करके बाँटा जाए। वन में एक झोपड़ी है, जहाँ मैंने रात्रि को शीतल जल पिया था। वहाँ एक बोरी अनाज भेजकर, उन्हें मजदूरी मिल सके, ऐसी व्यवस्था की जाए।

जब तक राज्य में पर्याप्त अन्न पैदा नहीं होने लगता और जब तक प्रजा का एक भी व्यक्ति भूखा रहता है, मैं केवल एक समय सादा भोजन ही करूँगा। महाराजा विक्रमादित्य की प्रजा वत्सलता की ऐसी अनेक लोक कथा-गाथाएँ एवं किंवदंतियाँ आज भी लोक व्याप्त हैं जो उन्हें मालव माटी का मंगल कलश और दिव्य महापुरुष सिद्ध करती है।

संदर्भ ग्रंथ

राजवल्लभ-भोज द्वारा रचित
मालवी भाषा और साहित्य- डॉ. शैलेन्द्रकुमार शर्मा
मालवी संस्कृति और साहित्य- डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित
मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान- डॉ. पूरन सहगल (संग्रहित)
मालवा के संत भक्त- डॉ. पूरन सहगल, संत अनामी
मालव देस सुवासणो- डॉ. पूरन सहगल
मालव लोक संस्कृति अनुष्ठान, मनासा में संग्रहित
विक्रमाजीत दी गाथा (पंजाबी) - डॉ. पूरन सहगल
विक्रमार्क- वसंत 2069
ऋग्वेद
शुक सप्तति कथा 5
तुलसीकृत रामचरित
विक्रमादित्य की गाथा- डा. पूरन सहगल
आदि विक्रमादित्य- डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित
बेताल पच्चीसी- गिरीश मोहन
सिंहासन बत्तीसी- रूपांतर विवेक मोहन
किस्सा तोता मैना ।

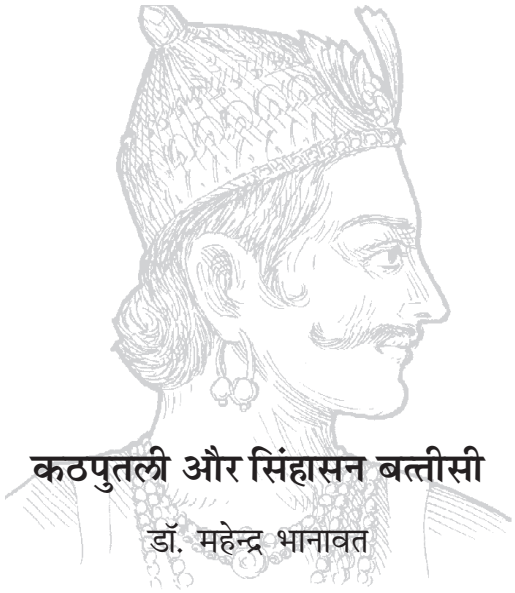

कठपुतली और सिंहासन बत्तीसी

डॉ. महेन्द्र भानावत

भारतवर्ष में कठपुतली कला का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीनकाल से ही पुतली चालक अपने दल सहित पुतलियों का पिटारा लिये गाँव-गाँव घूमते और जनता जनार्दन को कठपुतलियों के नाना खेल दिखाकर अपनी आजीविका चलाते। बल्कि खेल द्वारा मनोरंजन के साथ-साथ लोक शिक्षण, सामाजिक सरोकार, ऐतिहासिक प्रसंग तथा सांस्कृतिक भाईचारे का संदेश भी आम लोगों को सहज मिल जाता।

कठपुतली के प्रारंभ की कई कथाएँ लोकजीवन में प्रचलित हैं। इनमें शिव-पार्वती के प्रसंग बहुतायत से मिलते हैं। राजस्थान के कठपुतली भाट जब कठपुतली-खेल प्रारंभ करते हैं, तब ढोलकवाली महिला शिवजी की ही स्तुति में गाती है –

बैल चढ़ै शिवजी मिलै, पूरण हो सब काम।
खेल काठपुतली करां, ले के हरि का नाम ।।

शिवजी ने पार्वती का दिल बहलाने के लिए भाट की सृष्टि की और उसे एक पुतली दे दी, ताकि वह उससे पार्वती का भरपूर मनोरंजन कर सके, परन्तु भाट शिवजी की ही प्रशंसा में मशगूल रहा। पार्वती का मनोरंजन करना भूल गया। इस पर शिवजी बड़े क्रुद्ध हुए और उन्होंने उसे पृथ्वी पर धकेल दिया। भाट ने उस पुतली के माध्यम से लोगों का मनोरंजन करते हुए अपना उदरपोषण करना शुरू किया। उसकी देखा-देखी अन्य लोगों ने भी पुतली नचाना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार आगे जाकर कठपुतली नचाने वालों की एक बिरादरी ही प्रारंभ हो गई। इस बिरादरी के लोग कठपुतली भाट कहलाये, जो प्रारंभ में नाचने-गाने, शारीरिक करतब दिखाने तथा कलाबाजी करने का काम करते थे। ये आगे जाकर नट कहलाये।

विक्रम, कंक और कंकाली

कहा जाता है कि राजा विक्रमादित्य के समय कठपुतलियों के खेल ने एक नया मोड़ लिया। राजा विक्रमादित्य जिस सिंहासन पर बैठकर न्याय करता था, वह बत्तीस पुतलियों से सुशोभित था। पुतलियाँ राजा को सत-असत का पता कर पूरी जानकारी देती और उसके अनुसार राजा न्याय करता। ऐसा न्यायप्रिय राजा दूसरा नहीं हुआ।

कहते हैं कि राजा विक्रमादित्य के दरबार में कंक नामक कवि ने अपनी अच्छी पहुँच बना रखी थी, किन्तु सुदिन की चरम स्थिति जब गड़बड़ाने लगती है तो दुर्दिन आते देर नहीं लगती। कंक के साथ भी यही बीती। स्थिति यहाँ तक बनी कि राजा ने उसे अपने राज्य से निष्कासित कर दिया। इस पर कंक अपने परिवार सहित उज्जैन से चलकर राजस्थान आया और चित्तौड़गढ़ के पास बसी गाँव में कुछ दिन विश्राम लिया। यहाँ रह रहे खैरादियों से उसने कठपुतलियाँ बनवाईं और उनका प्रदर्शन प्रारंभ कर अपना गुजर-बसर किया। आगे जाकर कंक के वंशज कंकाली भाट कहलाये और उन्होंने कठपुतली के खेल दिखाने का प्रमुख रूप से व्यवसाय ही अपना लिया। कठपुतली भाटों से जब-जब भी मैं मिला, उन्होंने अपने को कंकाली भाट बताया।

कंकाली भाटों के दो परिवारों में एक ने कठपुतली नचाना प्रारंभ किया, जबकि दूसरे ने कावड़ बांचना प्रारंभ किया। कालान्तर में कावड़ बांचनेवाले कावड़िया भाट कहलाए और अपने को कंकाली नहीं कहकर काली के उपासक कहने लगे।

कंक द्वारा बत्तीस पुतलियों का खेल

कहा जाता है कि कंक ने अपने प्रखर बुद्धिचातुर्य से सिंहासन बत्तीसी की नकल पर बत्तीस कठपुतलियों का खेल तैयार किया और उसे जनजीवन में प्रचारित कर बड़ा नाम कमाया। इस खेल में पुतली के सिर को एक सूत्र से जोड़ा और हाथ की अँगुलियों से उस धागे को चलायमान करते हुए कठपुतली में विविध प्रकार की भावभंगिमाओं का बीजारोपण किया।

कंक कठपुतली चलाने में इतना प्रवीण था कि वह एक साथ अपने दोनों हाथों से कठपुतलियाँ नचाकर दर्शकों पर किसी अन्य लोक के प्राणियों द्वारा जादुई प्रभाव छोड़ने का भ्रम दिये रहता। कठपुतलियों की बोली मानव से भिन्न होने के कारण कंक अपने मुँह से अलग-अलग पुतलियों की अलग-अलग बोली निकालकर पुतलियों से सहज संवाद को एक नई बोली के रूप में प्रस्तुत करता, जो छोटी-छोटी चिड़ियों के चहकने की ध्वनि देती। इस प्रकार कंक ने कठपुतलियों के माध्यम से सर्वथा एक नये लोक के प्राणियों को अवतरित किया, जिससे आम जनता को अलौकिक, रहस्यमय एवं चमत्कार से भरपूर खेल देखने का रोमांच हुआ।

बच्चों में ललुआ पुतली

कंक ने अपने खेल द्वारा जगह-जगह बड़ी प्रसिद्धि और नामवरी ली, किन्तु वह चाहता था कि उसका यह खेल उसकी संतति भी उसी रूप में प्रदर्शित करती हुई लोगों में वाहवाही की आलम बने। इस दृष्टि से बच्चों को कठपुतली चलाने का शिक्षण देने के लिए उसने कठपुतली का सिर, दोनों हाथ तथा दोनों पाँव के अलग-अलग काष्ठ खोल बनवाये और उन्हें हाथ की पाँचों अँगुलियों में पिरोकर एक रूमालनुमा कपड़े से उन्हें जोड़ दिया। यह पुतली उस ललुए की तरह लगने लगी, जैसे वह हथेली पर सोया रहकर अपने हाथ-पाँव को सहज रूप से हिलाने की क्रिया कर रहा हो।

कंक के बच्चों में यह क्रिया एक असरदार मनोरंजन की तरह प्रचलित हुई और वे अपनी अँगुलियों के माध्यम से सेंतमेंत में ही कठपुतली चलाने में प्रवीण हो गये। कठपुतली की यह क्रिया ललुआ के रूप में प्रचलित हुई जो आगे जाकर एक शैली ही बन गई। कठपुतली भाट अपने बच्चों को कठपुतली चलाना सिखाने के लिए ऐसे ही ललुए को माध्यम बनाते हैं, ताकि उनकी अँगुलियाँ कठपुतली के नाना हावभाव दर्शाने में परिपक्व हो सकें। इसी ललुआ शैली का परिष्कृत रूप दस्ताना अथवा हथपुतली के रूप में विकसित हुआ।

राजस्थान कठपुतलियों की जन्मस्थली

राजस्थान को कठपुतली कला की जन्मस्थली कहने के पीछे भी यही तथ्य मुख्य रहा। नाट्य समीक्षकों ने नाटक के प्रारंभ में सूत्रधार की कल्पना भी राजस्थान की इसी सूत्र अथवा

धागा पुतली से की। कठपुतली नचाने वाले स्वयं इस बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि उनके पूर्वज कठपुतलियों की सहायता से सिंहासन बत्तीसी का खेल करते थे। उसके बाद उन्होंने पृथ्वीराज चौहान और संयोगिता का खेल बनाया। लोकप्रियता की चरम सीमा छूने वाला कठपुतली का तीसरा खेल अमरसिंह राठौड़ का था। उसके बाद ऐसा कोई अन्य खेल कठपुतलियों के माध्यम से चर्चित नहीं हुआ।

कठपुतली नचानेवाले कई कलाकारों के अलावा कलामंडल में कुछ दिनों अपने दल सहित रहे नाथू भाट ने भी यही कहा। दिल्ली के सागर भाट और इन भाटों के बही वाचकों से भी मुझे यही सुनने को मिला। कलामंडल के संस्थापक देवीलाल सामर ने भी 1954 में मेड़ता-कुचामन की अपनी शोधयात्राओं के दौरान जो जानकारी प्राप्त की, उससे भी यही कथन सत्य प्रतीत हुआ। उन्होंने लिखा भी कि पारंपरिक पुतलीकारों से पता चला कि सिंहासन बत्तीसी ही राजस्थानी कठपुतली भाटों का प्रथम पुतली खेल है। कहा जाता है कि सम्राट विक्रमादित्य का सिंहासन 32 पुतलियों का था। रात को जहाँ ये पुतलियाँ सम्राट का मनोरंजन करती थीं वहाँ दिन को उसे न्याय देने में भी मदद करती थीं। एक समय यह सिंहासन प्राकृतिक प्रकोप के कारण भूमिगत हो गया, तब उस पर खेती की जाने लगी। राजा भोज को यह पता चला तो उसने उस सिंहासन को बाहर निकलवाया और अपने महलों में मंगवाया। एक दिन ज्यों ही राजा उस पर बैठने लगा तो पुतलियों ने कहा कि इस पर वही राजा बैठ सकता है जो सम्राट विक्रमादित्य के समान गुणी एवं न्यायप्रिय हो। पुतलियों की गुणवत्ता और कला चातुर्य को देख राजा भोज दंग रह गया। उसने यह भी देखा कि ये पुतलियाँ बड़े दिव्य गुणों वाली हैं जो जल-थल तथा नभ में नाचती गाती हुई अलौकिक एवं अद्वितीय करतब दिखाकर स्वर्णिय सुख की वर्षा कर देती हैं।

लोक कलाकार शिविर

आज़ादी के बाद भारतीय लोककला मंडल उदयपुर ने कठपुतली कला के महत्त्व को प्रतिष्ठित करने का बीड़ा उठाया। सन् 1958 में राजस्थान के विकास विभाग की सहायता से कला मंडल ने लोक कलाकारों का प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया। उदयपुर से सटे बेदला गाँव में यह शिविर अगस्त-सितम्बर के दो माह तक चला। इसमें 40 विकास क्षेत्रों के 125 कलाकारों ने भाग लिया। ये वे कलाकार थे जो अपने-अपने अंचल में लोकनृत्य, लोकनाट्य, स्वांग, लीला, ख्याल, तमाशा आदि द्वारा लोकजीवन में खासा मनोरंजन कर रहे थे। इस शिविर में केलवा निवासी बहुरूपिया कलाकार परसराम तथा जोधपुर के जीजोट गाँव के नाथू भाट कठपुतली वाले ने अपने परिवार सहित भाग लिया। इन कलाकारों ने उस शिविर में अपनी कला दक्षता से विशेष छाप छोड़ी। मेरा यह सौभाग्य रहा कि कला मंडल में आते ही मुझे इस शिविर में संयोजक के रूप में दिनरात लगातार कलाकारों के साथ रहने, उनकी कला-परंपरा को नजदीक से देखने, उनके प्रदर्शनों का अवलोकन-अध्ययन करने तथा उनसे बातचीत कर उनकी जीवनधर्मिता को जानने का अवसर मिला।

हमारे देश में ही नहीं, अपितु विश्व में पहली बार लोक कलाकारों का ऐसा शिविर आयोजित हुआ, जिसमें कई लोकधर्मी प्रदर्शनकारी कलाओं के प्रदर्शन को देखने, कलाकारों से रूबरू होने, उनकी कला-परम्परा को ठीक से समझने और लोकपक्ष की कलाधर्मी बारीकियों को जानने का सुनहरा अवसर हाथ लगा।

टोलकी का जादुई प्रभाव

शिविर के दौरान नाथू भाट के पुतलीदल के अलग से कईबार मैंने प्रदर्शन देखे। उसके द्वारा प्रस्तुत अमरसिंह राठौड़ के खेल के एक-एक शब्द-बोल को गंभीरता के साथ अर्थवान होता, पुतलियों द्वारा थिरकता देखा। ढोलक बजाने वाली महिला नाथू के पुत्र हनुमान की पत्नी टोलकी को पूरा खेल कंठस्थ था। पुतली के साथ वही उसके बोल उलथाती और बीच-बीच में अरथाव देती। गीत-गायिकी के मधुर स्वरों के साथ वह जो रंग भरती, वह बेमिसाल था। उसके कंठ में जबर्दस्त माधुर्य और स्वर-संवाद में लोच का उतराव-चढ़ाव पुतली में प्राणों का ठुमका भर दर्शकों को चकित तथा लोटपोट कर देता।

नाथू और उसके लड़के की अंगुलियों में ही ऐसा जादू था कि मंच पर न नचानेवाले दिखते, न पुतलियों से बंधा धागा दिखाई देता। दिखाई देता पुतलियों का संवाद, उनकी अदायगी, भावाभिव्यक्ति और ठुमक ठट्ठा। लगता जैसे परियां किसी

अनजाने लोक से उतरकर यहाँ कौतुक कर रही हैं। दर्शक भी इतने रस-विह्वल हो जाते जैसे वे भी किसी स्वप्निल सुनहरे लोक में बैठे पुतलियों की महफिल से रूबरू हो स्वर्गीय सुख भोग रहे हैं।

पुतली परियाँ

टोलकी के बोल के साथ नाथू अपने मुँह में एक विचित्र प्रकार की सीटी दबाये चां-चूं-चूं-चूं की पुतली की चहक निकालता, जिससे यह आभास पुख्ता हो जाता कि यह वाणी और ये पुतली-परियां इस धरती की नहीं हैं।

संवाद के बीच में नाथू घुघरूँ की झनकार के साथ अपने पांव का झटका मारता और उसी के साथ, उसी अन्दाज़ में धागे की झटकी में पुतली को हिलाडु लाकर चमत्कृत कर देता। कभी नृत्य के दौरान सिर के बीच के एक ही धागे की मरोड़ी दे पुतली को लगातार चकरी खिलाकर ऐसा मुग्ध कर देता कि आँखें फटी की फटी रह जातीं। फिरकनी की तरह, चमक-दमक देने वाली वह पुतली अभी भी मेरे नैनन में मीरां के नंदलाल की तरह बसी हुई है।

कठपुतली खेल के नाना कौतुक

राजस्थानी कठपुतली काठ के सिर वाली, बिना पाँव की वह गुड़िया, जो अपने गोल-चपटे चेहरे, लम्बी-मोटी आँखें, उभरे ऊँचे कान, फूले हुए नथुने, लटके-खुले होठ तथा चपटी-चौड़ी कनपटी लिए रंगबिरंगी वेशभूषा में अपनी रूढ़िगत रूप-सज्जा एवं आकार-प्रकार के साथ लचक लिए होती है। इन पुतलियों में 'राजा पुतली' तनिक लम्बा झग्गा पहने होती है। यह झग्गा रूपहली, सुनहरी, चौड़ी तथा पतली कोर से सजी होती है। झग्गे के नीचे पोतिया रहता है। इस पुतली के एक हाथ में तलवार तथा दूसरे में ढाल रहती है। यह पुतली चौदह से सोलह इंच तक लम्बी होती है।

कठपुतली खेल में राजदरबार लगने से पूर्व सर्वप्रथम झाड़ूवाला आता है जो सफाई करता है। झाड़ू लगाते समय 'जरा एलम से झाड़ू दे जाना' गीत उच्चरित किया जाता है। उसके बाद बादल भिश्ती आता है। वह अपनी मशक के पानी से छिड़काव करता है। भिश्ती ठुमके लेता गाता जाता है -

बादल भिश्ती खेले कुश्ती, चले हस्ति की चाल।
दूध कटोरा पी के मियां, कांधे धरी पखाल।।

फिर दरबार सजता है। कोई घोड़े पर, कोई ऊँट पर तो कोई हाथी पर सवार हो एक के बाद एक राजा-महाराजा आते हैं।

थोड़ी सी और बजेगी

पहरेदार 'नज़र महरबान' कहकर सबका स्वागत करता है। चोपदार नीचे झुक 'जो आज्ञा' कहकर मेहमानों को उचित आसन पर बिठाता है। डुगडुगी वाले 'और बजेगी, थोड़ी सी और बजेगी' कहकर डुगडुगी बजाते हुए उल्लास व्यक्त करते हैं। दरबार जुड़ जाने के बाद राजा-महाराजाओं का मनोरंजन करने के लिए पट्टेबाज बिजली सी स्फूर्ति लिए 'लाहोर का तेगा और विलायत की तलवार' चलाते हैं। उसके बाद एक ही पुतली, एक ओर जनाना तथा दूसरी ओर मर्दाना चेहरा लिए 'आगरे का देवर तथा दिल्ली की भौजाई' के रूप में स्वांग भरती है। रंडियाँ 'दुपट्टा बैंगनी रंगवादो' गीत पर ठुमकती हैं। गेंदवाली 'सैंया तेरी गोदी में गेंदा बन जाऊँगी' गीत पर अपना यौवन थिरकाती है। मालिन 'गेंदा हजारी का फूल' बोल पर दरबार को रिझाने का उपक्रम करती है। 'गोरबंद नखराळो' गीत पर ऊँट का करतब देखते ही बनता है। 'घुड़लो कियां पलाण्यो राजा ' गीत पर घोड़ा कभी पूँछ हिलाने के करतब, कभी आकाश कूदने के करतब तो कभी हिनहिनाकर हँसाने के करतब पर लोटपोट कर देता है। ऐसी ही करतूतें मगर के मुँह फाड़ने पर, धोबी के गधे के टेकने पर देखने को मिलती हैं। बहुरूपियों के स्वांग और मसखरों की मजाकों के रंग भी दिल्लगी करते नहीं थकते।

अमरसिंह का शौर्य पराक्रम

ऐसे कुशल कौशल के साथ भरपूर मनोरंजन के बाद अमरसिंह राठौड़ का दृश्य आता है। वीरवर अमरसिंह अनुपम योद्धा तथा स्वाभिमान का तेज था। ज्येष्ठ पुत्र होने के बावजूद जोधपुर के राजा गजसिंह ने उसे उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया और काले वस्त्र, काली टोपी, ढाल-तलवार और काला ही घोड़ा देकर मारवाड़ राज्य से निष्कासित कर दिया।

अमरसिंह जानता था कि दक्षिण भारत के सारे युद्ध उसी

ने अपनी तलवार की तेज धार पर जीत कर अपने पिता को विजय दिलाई, पर स्वाभिमान किसी के आगे झुकता नहीं है। वह जहाँ भी खड़ा रहता है, अपनी गंध और पहचान छोड़ता है। अमरसिंह अपने कुछ साथियों के साथ शाहजहाँ के दरबार में पहुँच जाता है। बादशाह अपनी सेना में उसे उच्च पद प्रदान कर तीन हजारी मनसब के साथ 'नागौर की जागीर और राव की उपाधि' प्रदान करता है। अपने अनुपम और अद्वितीय पराक्रम के कारण जहाँ अमरसिंह बादशाह का चहेता बना, वहीं अक्खड़ स्वभाव और स्वाभिमानी सनक के रहते सामंतों का जबर्दस्त विरोध भी उसे झेलना पड़ा और वही उसकी मृत्यु का कारण भी बना। उसकी यह षड़यंत्रकारी मृत्यु 25 जुलाई 1664 को हुई।

पुतलीकार का पुतली भ्रम

कठपुतलियों की ऐसी समृद्ध परम्परा के पीछे सैकड़ों पुतलीकारों की प्रतिभाएँ, हजारों पुतलियों के प्रयोग, लाख अँगुलियों का श्रम-कौशल और जनता जनार्दन का असीम मनोबल रहा है। पुतलीकार जब मंच पर अपनी पुतलियों का प्रदर्शन करने आता है, तो वह अपने आपको पुतलियों में लीन कर स्वयं एक पुतली बन जाता है। पुतलियाँ स्वयं पात्र नहीं होतीं। वे तो नकल बन हमारे सामने आती हैं और असल का भ्रम देकर चली जाती हैं। नकल असल को पेश करने का यह करिश्मा पुतलियों के ही बूते का है। पुतलियों में प्राण प्रतिष्ठा का सबसे बड़ा रहस्य भी यही है।

राजस्थान की ललुआ, दस्ताना और धागा पुतली के बाद कठपुतलियों को लेकर जो प्रयोग हुए, उनके मूल में राजस्थान की कठपुतली परम्परा ही मुख्य अवदान रही। अन्य जो शैलियाँ मिलती हैं, उन्हें देखने पर यही तथ्य हाथ लगता है।

प्रथम कठपुतली समारोह का आयोजन

सन् 1959 में कला मंडल ने अखिल भारतीय कठपुतली समारोह का आयोजन किया। इस समारोह में देश में प्रदर्शनरत विविध शैली के बारह कठपुतली दलों ने भाग लिया। एक मंच पर प्रदर्शन देने का पारम्परिक पुतलीदलों का यह पहला अवसर था। मुझे भी विविध शैली के ख्यातनाम पुतलीकारों और उनके दलों से परिचय प्राप्त करने का यथोचित अवसर हाथ लगा। इससे कलामंडल को यह प्रेरणा मिली कि वह इस क्षेत्र में प्रयोगधर्मी बन कुछ अच्छा कार्य कर दिखाये और मैंने यह पाया कि विविध शैली में पुतली नाट्य लेखन कर उसका यथासंभव मंचन कराया जाय। पत्र-पत्रिकाओं में लेखन-प्रकाशन का सिलसिला तो प्रारंभ हो ही चुका था।

नाथू भाट का पुतली प्रदर्शन ठेठ पारम्परिक था। उसके पास न तो पुतली तंत्र की समझ थी और न नया कुछ करने की कुबद। हर तरह से वह अभावग्रस्त ही था। किसी तरह अपने परिवार का गुजर-बसर कर रहा था। हमने उसे शिविर समाप्ति के पश्चात् भी कलामंडल में कुछ समय रखा और उसके पुतली संचालन तथा संवाद वाचन की दृष्टि से कलामंडल के कलाकारों को भी इस दल के साथ रखा, ताकि वे मुख्यत: प्रदर्शन सम्बन्धी बारीकियों और संचालन कला के कमाल के कुछ गुर सीख सकें इस बावत् दयाराम तथा तोलाराम ने बहुत कुछ सीखकर सिद्धि प्राप्त की।

सन् 1965 में रूमानिया की राजधानी बुखारेस्ट में तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय कठपुतली समारोह का आयोजन हुआ। भारत सरकार ने इसमें भाग लेने के लिए भारतीय प्रतिनिधि के रूप में कलामंडल को यह गौरव प्रदान किया। रात-दिन एक कर कलामंडल में नाथू के परम्पराशील पुतली खेल को आधार बनाकर अमरसिंह राठौड़ के खेल को ही पुनर्जीवन देते हुए नयापन दिया और उसका नाम 'मुगल दरबार' रखा।

इस खेल की स्क्रिप्ट तैयार की गई, जिसमें मेरी यह भागीदारी रही कि मैंने मंच की सफाई करने वाले पानी का छिड़काव करने वाले भिश्ती तथा द्वार के स्वागतकर्ता डुगडुगी वालों के साथ राजदरबारियों का भरपूर मनोरंजन करने वाले घोड़ा नचावदार, तलवारों का खेल दिखाने वाले पट्टेबाज, गेंद नचाने वाली गेंदी तथा नर्तकी जैसे दृश्यों को प्रधान रूप दिया, ताकि पूरे खेल की कथायात्रा से परिचित नहीं होने वाले तथा राजस्थानी नहीं जानने वाले भी उस खेल का पूरा मजा ले सकेंतथा कठपुतली खेल तंत्र के जड़ों की तलाश पा सकें।

अंतर्राष्ट्रीय समारोह में विश्व कीर्तिमान

इस समारोह में 33 देशों के 55 पुतलीदलों ने भाग लिया।

सबसे छोटा दल मात्र चार सदस्यों का कलामंडल का ही था, किन्तु जब मुगलदरबार का खेल प्रदर्शित किया गया तो वह सबकी आँखों का तारा बन विश्व का प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर पूरी दुनियां को चकित एवं चमत्कृत कर बैठा। इस खेल के प्रमुख कलाकार तो दो ही थे। एक दयाराम जो भवाई कलाकार के रूप में पूरे विश्व में जाना गया और दूसरा तोलाराम जो कलामंडल के प्रत्येक नृत्य, नृत्यनाटिका तथा पुतली प्रदर्शन का नायक था। दयाराम तो नहीं रहा पर तोलाराम आज भी उदयपुर में अपनी उस वैभवशाली विरासत के अंधेरे में अश्रु-मोती की व्यथा लिए गुमनाम है।

इतिहास को तोड़ मरोड़कर उसे अपने अंदाज से प्रस्तुत करने की हमारी आदत बहुत पुरानी है। बड़ेरों ने जो कुछ लिख दिया उसे उसी रूप में स्वीकार कर ठकुर सुहाता 'बड़ो हुकम' कहने वालों ने बड़ा अनर्थ भी किया है। नतीजा यह हुआ कि बहुत सारा असली इतिहास इति बनकर रह गया और उसका ह्रास किंवा हास ही अधिक हुआ। इस झमेले में सर्वाधिक लू पुराने खंडहरों, महलों, हवेलियों को लगी। इसीलिए ये हमें बड़े रहस्य रोमांच भरे अजूबे और अद्‌भुत तो लगते हैं, पर सही जानकारी के अभाव में भ्रमित करते और भटकन देते भी लगते हैं।

इतिहास का भटकन

इतिहास जहाँ मौन होता है, लोकसंस्कृति वहाँ मुखरित होती है। लोकसंस्कृति का इतिहास किसी काल-अकाल का हनन नहीं होता। उसकी लिखावट किन्हीं पट्टों परवानों पर नहीं होकर लोक के हिये पर होती है। गीत-गाथाओं तथा कथा-वार्ताओं द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी, कंठ-दर-कंठ जो कथा-किस्से लोक की जबर्दस्त धरोहर और जीवनधर्मी सांस्कृतिक सरोकार बने हुए हैं, वह क्या इतिहास नहीं है? संस्कृति नहीं है? यह लोक का इतिहास, मात्र पढ़ने या देखने की वस्तु नहीं होता। इसके साथ कई काल और शताब्दियों के लोकमानस की जीवन-गंगा प्रवाहित होती मिलती है। स्वर, ताल, लय और नृत्यनाट्य की लोकानुरंजनी यह विरासत किसी की वैयक्तिक थाती नहीं होती। पूरा देश काल समाज उसके साथ जुड़ा होता है। वह सर्वजन की, सर्वकाल की प्राचीन होती हुई भी नित नवीन लगने वाली होती है, इसीलिए वह शाश्वत है। मांडू की धरती का भी कुछ ऐसा ही वैभव है।

मांडू में सिंहासन बत्तीसी की खोज

मालवे के मांडू की धरती बहुत-बहुत पुरानी है। यहाँ एक-एक कर 67 राजा हुए। 61 तो हिन्दू राजा ही हुए। मुसलमान तो बहुत बाद में आये। अकबर यहाँ संवत् 1732 में लड़ने आया था। मांडू को मंदू ने बसाया। इन्हीं के नाम पर इसका नामकरण हुआ।

मांडू की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि सिंहासन बत्तीसी की खोज रही। राजा विक्रमादित्य से जुड़े इस सिंहासन के बारे में बहुत कुछ पढ़ने और लोकजीवन में सुनने को मिला। न्याय के लिए यह सिंहासन कहाँ स्थापित किया हुआ था, इस सम्बन्ध का इतिहास अब तक मौन रहा और इससे जुड़े कहानी-किस्से भी रहस्य रोमांच ही प्रतीत होते रहे हैं। इस सम्बन्धी विशेष ज्ञातव्य के लिए 3 से 8 नवंबर 1985 में की गई मेरी उज्जैन-मांडू की यात्रा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रही। पाँच नवंबर को मांडू में मेरे साथ हिन्दी कवयित्री डॉ. सुधा गुप्ता और लोकदेवता वीरवर कल्लाजी राठौड़ के अनन्य सेवक सरजुदासजी वैष्णव थे। सरजुदासजी के शरीर में कल्लाजी की प्रविष्टि ने ही हमें इन अदृश्य राहों, स्थलों और घटनाचक्रों से परिचित कराया जो अब तक नितांत अजान तथा रहस्यमय बने हुए थे। बहुत सारे स्थलों को देखने के बाद वे हमें लाल बंगले की तरफ की लांबा तालाब नामक बस्ती की ओर ले गए।

हम इस बस्ती के पास वाले चार दरवाजे वाले खंडहर बने कक्ष में पहुँच गये। इसी कक्ष में से सिंहासन प्रकट होता था और सामने फैले विशाल चौक में जनता बैठ जाती थी। चारों दरवाजों पर चार कड़े पहरे रहते थे। जमीन से यह सिंहासन तब सत्रह हाथ करीब नीचे था। आज तो जमीन की सतह से छह-सात हाथ माटी ऊपर आई हुई है। इस सिंहासन को बत्तीस पुतलियाँ लाती थीं, इसीलिए इसका नाम सिंहासन बत्तीसी पड़ा।

हरसिद्धि ने बनवाया सिंहासन

राजा विक्रम इस सिंहासन पर बैठकर न्याय करता। यहाँ

मनुष्य गति (जाति) का ही नहीं, बत्तीस गति का न्याय होता। नाग लोक तक के जीव यहाँ आकर न्याय पाते। पुतलियाँ सत-असत का पता लगाकर राजा को देती और राजा तदनुसार न्याय करता। इसमें तनिक भी किसी के साथ अन्याय की आशंका नहीं रहती। यह सिंहासन बाईस माणी सोने यानी 264 मन का था। इसे हरसिद्धि ने योगमाया से बनवाया था। हरसिद्धि के बाहुबली नाम का लड़का था, पर बहादुर होते हुए भी उसमें न्यायिक बुद्धि नहीं थी। राजा विक्रम के बाद बड़े-बड़े राजा इस सिंहासन के लिए दौड़े, पर यह किसी के हाथ नहीं आया। सिंहासन सहित पुतलियों को भी स्थिर कर दिया गया।

हमारे लिए यह समय बड़ा ही विचित्र आनंद-अनुभव का था। कई सारी कल्पनाओं में हम खो गए। राजा विक्रम तथा पुतलियों के कई चित्र हमारे मन-मस्तिष्क को कुरेदते रहे। हमने तब बत्तीस पुतलियों के नाम जानने चाहे। सरजुदासजी ने कल्लाजी के दिव्य-भाव में सिंहासन स्थल पर बैठकर नाम गिनाने शुरू किये- (1) रत्न मंजरी (2) चित्ररेखा (3) रतिवामा (4) चन्द्रकला (5) लीलावती (6) कामकन्दला (7) कामादी (8) पुष्पावती (9) मधुमालती (10) प्रभावती (11) पद्मावती (12) कीर्तिमती (13) त्रिलोचनी (14) त्रिलोकी (15) अनूपवती (16) सुंदरवती (17) सत्यवती (18) रूपरेखा (19) तारा (20) चन्द्रज्योति (21) अनुरोधवती (22) अनूपरेखा (23) करुणावती (24) चित्रकला (25) जयलक्ष्मी (26) विद्यावती (27) जगज्योति (29) मनमोहनी (29) वैदेहा (30) रूपवती (31) कौशल्या (32) किलंकी। मांडू के किस्से बड़े बांके और रस फांके हैं, पर कौन विश्वास करने वाला है।

संदर्भ

1. पुतली नाटिका सिंहासन बत्तीसी, देवीलाल सामर, रंगायन, संपादक डॉ. महेन्द्र भानावत, भारतीय लोककला मंडल, उदयपुर, सितंबर 1979, पृ. 1
2. निर्भय मीरां, डॉ. महेन्द्र भानावत, मुक्तक प्रकाशन, उदयपुर, 1994 में प्रकाशित पोथी का परिशिष्ट पुरातन मांडू, पृ. 21 से 27

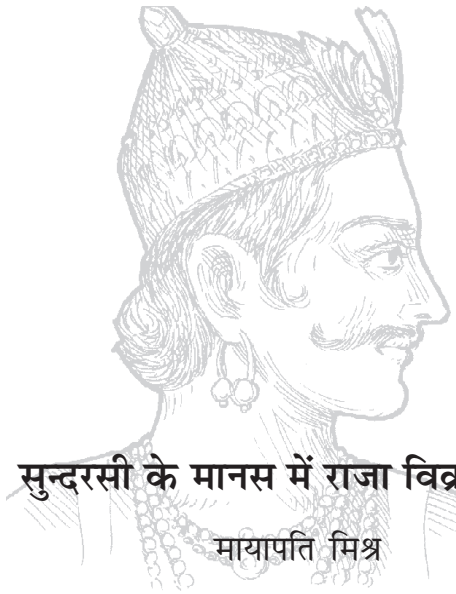

सुन्दरसी के मानस में राजा विक्रमादित्य

मायापति मिश्र

राजा विक्रमादित्य के भाई राजा भर्तृहरि एक बार आखेट के लिए वन में गये। कोई शिकार न मिलने पर राजा चिंतित हुए कि वन आने का मेरा प्रयोजन व्यर्थ हो जायेगा। थोड़ा और निर्जन वन में प्रवेश करने पर राजा भर्तृहरि को हिरनों का एक झुण्ड दिखाई पड़ा। राजा ने काले नर हिरन के शिकार के लिए ज्यों ही प्रत्यंचा पर बाण संधान किया तो हिरन की रक्षा हेतु चारों ओर से उसे हिरनियों ने अपने घेरे में ले लिया और हिरनी राजा भर्तृहरि से प्रार्थना पूर्वक बोली–

बोली मिरगी सिंघल दीप, सुनो राजा महाराज।
जो तुम भूखे शिकार के मारो मिरगी चार।।
काला मिरगा मत मार्‌या तिरिया होयेगी रांडी।

सिंहल द्वीप की हिरनी याचनापूर्वक आर्त स्वर में कह रही थी कि हे राजा महराज! यदि आप शिकार के भूखे हो तो चार हिरनियों को मार लो, परन्तु काला नर हिरन मत मारो। क्योंकि इसके मरने से सभी मादा (स्त्री/तिरिया) हिरनियाँ विधवा (रांड) हो जायेंगी। मादा हिरनियों की बात सुनकर राजा भर्तृहरि बोले–

बोले ओ राजा भरथरी, सुन मिरगी म्हारी बात।।
नाति हैं राजा इन्द्र के पिता गंधर्वसेन।
भाई विक्रमजीत हे, मैनावती माय।।
हम बेटे राजपूत के, तिरिया गरे न हाथ।

हे मृग! मेरी बात को ध्यान से सुनो। मैं राजा इन्द्र का नाती और गंधर्वसेन का पुत्र शूरवीर विक्रमादित्य मेरे भाई और मैनावती मेरी माँ है। मैं क्षत्रिय राजपूत हूँ। राजपूत कभी अबला स्त्री पर हाथ नहीं उठाता, अत: मैं तुम लोगों (हिरनियों) को नहीं मार सकता। मैं तो पुरुष पर प्रहार करता हूँ, इसलिए हिरन (नर) को ही मारूँगा। इस लोक गायन में (जो कि पूरे देश में राजा भरथरी के नाम से प्रसिद्ध है) राजा भर्तृहरि अपना परिचय देते हुए अपने पितामह इन्द्र, पिता गंधर्वसेन, माता मैनावती के साथ भाई विक्रमादित्य का नाम लेते हैं। अपने को सच्चा राजपूत बताते हुए राजपूतों की मर्यादा की बात करते हैं। उज्जैनी के देवप्रिय राजा विक्रमादित्य भर्तृहरि के भाई थे, यह तो जगजाहिर है। परन्तु वे कुल कितने भाई बहन थे, इसका इतिहास में कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। लोक कथाओं में उनकी एक बहन सुन्दराबाई का उल्लेख अवश्य मिलता है।

लोक जीवन में निर्जन वन में पशु-पक्षियों, वनस्पतियों से राजाओं के संवाद के बहुत से प्रसंग मिल जाते हैं। किष्किन्धा में ब्राह्मण रूपधारी वानर हनुमान को अपना परिचय देते हुए भगवान श्रीराम कहते हैं-

कौसलेश दशरथ के जाये। हम पितृ मनि बन आये।

हम कौशल्या के स्वामी राजा दशरथ के पुत्र हैं और उन्हीं की आज्ञा (वचन) मानकर वन में आये हैं। ठीक ऐसा ही परिचय राजा भर्तृहरि भी देते हैं, परन्तु वे अपनी माँ-बाप पितामह के साथ भाई को भी उद्धृत करते हैं। उनके हिरनी से संवाद के समान ही लोक नायक भगवान श्रीराम भी हिरनों-पक्षियो- भ्रमरों से संवाद करते हैं-

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनयनी

इसी प्रकार राजा नल से दावानल में जलते हुए कर्कोटक नाग ने संवाद किया था- 'राजा नल शीघ्र दौड़ो मुझे बचाओ। राजन! मैं कर्कोटक नामक सर्प हूँ। मैंने तेजस्वी ऋषि नारद को धोखा दिया था। उन्होंने शाप दे दिया कि जब तक राजा नल तुम्हें न उठावें, तब तक यहीं पड़ा रह। उनके शाप के कारण मैं एक पग भी हट बढ़ नहीं सकता। तुम ऋषि के शाप से मेरी रक्षा करो।' मालवांचल की एक और लोकप्रिय कथा के नायक तेजाजी का भी दाखानल में जलते नाग से संवाद हुआ था, तो उन्होंने भी अपना परिचय अपनी यात्रा का उद्देश्य उसे बताया था। लोक से शास्त्र तक प्रकृति सदैव ही मनुष्य की सहचारी रही है, जिसके माध्यम से वह अपना परिचय प्रस्तुत करता है। राजा विक्रमादित्य का लोक से पहला परिचय राजा भर्तृहरि और हिरनी के संवाद से होता है।

विभिन्न लोक विधाओं एवं लोक साहित्य में विद्यमान लोक रस बार-बार लोक जीवन को उद्‌बोलित करता है और यही लोक का मनोभाव बन जाता है। अपने मनोभावों के अनुरूप लोक अनेक कथाएँ और नायक गढ़ लेता है जो इतिहास और सत्य से हटकर भी सत्य की अनुभूति की मनोदशा निर्मित करती हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि लोक रचनाएँ आनंद और अनुभूति के मिश्रण से निर्मित वह खजाना है, जिसे लोक पारखी जन सदा-सदा ही अपने पास सँजोकर रखता है।

लोग कहते हैं मालवी लोक कथाओं के देवप्रिय धर्मानुरागी महान सम्राट राजा विक्रमादित्य के समान ही भूतभावन भोलेनाथ महाकाल की महान उपासक शिव भक्त धर्मानुरागी उनकी प्रिय बहन सुन्दराबाई हुई है। भक्ति रस से ओत-प्रोत भाई-बहन में अटूट प्रेम था। भाई-बहन दोनों नित्य प्रति पावन क्षिप्रा में स्नान करके महाकाल एवं माँ हरिसिद्धि देवी के दर्शन करने जाते थे। इन दर्शनों के पश्चात ही वे दोनों अन्न-जल ग्रहण करते थे। यथा नामों तथा गुणों के अनुरूप रूप-लावण्य की धनी सुन्दराबाई ने धीरे-धीरे यौवन की दहलीज पर कदम रखा तो भाई विक्रमादित्य को बहन के हाथ पीले करने की चिंता होने लगी। पंडित पुरोहितों के सहयोग से उपयुक्त वर की खोज प्रारम्भ की गयी। वर ढूंढते-ढूंढते मालवा की एक रियासत सुन्दरगढ़ के राजकुमार भगतसिंह पर विक्रमादित्य की नजर पड़ी। ज्योतिषियों से जन्म पत्री मिलवायी गयी। ग्रहों एवं गुणों की अनुकूलता को देखते हुए उज्जैनी के ज्योतिषियों ने विक्रमादित्य को सलाह दी कि वे अपनी प्रिय बहन सुन्दराबाई का विवाह राजकुमार भगतसिंह राठौर के साथ कर दें तो वह सुखी रहेगी। ज्योतिषियों की नेक सलाह मानकर विक्रमादित्य ने शादी का मुहूर्त निकलवाया और तिथि पक्की कर दी। प्राणों से भी प्रिय बहन का विवाह बड़ी धूमधाम से करके हाथी-घोड़ा, दास-दासियाँ, हीरे-जवाहरात भेंट में दिया और बहन को

राजकुमार भगतसिंह राठौर के साथ विदा कर दिया। भगत सिंह राठौर दुल्हन सुन्दराबाई को लेकर सुन्दरगढ़ आ गये। भगत सिंह का राज्य काली सिंध और नेवज दूधी नदी के मध्य के हिस्से में फैला हुआ था, जहाँ उस समय कपास, मूँगफली, लहसुन, प्याज आदि की पैदावार अच्छी थी। कृषि की उपलब्धता के कारण किसान और सामान्य जनता सभी सुखी थे। यह राज्य वर्तमान शाजापुर जिले में स्थित था।

बहन सुन्दराबाई के सासरा सुन्दरगढ़ जिसका नाम सुन्दरसी के नाम पर पड़ा जो वर्तमान में शाजापुर जिला मुख्यालय से लगभग 30 कि.मी. की दूरी पर कालीसिंध नदी के तट पर स्थित है। समय के बदलाव के अनुसार आज वैभवशाली सुन्दरगढ़ अपने अपभ्रंश सुन्दरसी के नाम से अतीत के आँसू रो रहा है। सुन्दरसी (सुन्दरगढ़) में प्रचलित किंवदंतियों के अनुसार अपनी आदत के अनुरूप रानी सुन्दराबाई ने सासरा में आकर महाकाल और माँ हरसिद्धि के दर्शन किये बिना अन्न जल ग्रहण करने से मना कर दिया और सुन्दरसी से 100 कि.मी. दूर उज्जैन में प्रतिदिन जाना महाकाल के दर्शन करना सम्भव नहीं था। बहन द्वारा महाकाल दर्शन के लिए अन्न-जल त्यागने की सूचना भाई विक्रमादित्य को पहुँचायी गयी। भूखी-प्यासी बहन की खबर पाते ही सम्राट विक्रमादित्य बैताल के साथ तत्काल सुन्दरगढ़ पधारे। बैताल की सहायता से शीघ्रातिशीघ्र उन्होंने प्रिय बहन के सासरा सुन्दरगढ़ में भव्य महाकाल का मंदिर बनवाकर शिवलिंग की प्राण-प्रतिष्ठा करवा दिया, साथ में यह भी सुनिश्चित कर दिया कि उज्जैन महाकाल मंदिर में होने वाले सारे अनुष्ठान एवं पूजा आरती तथा भस्मारती का निर्वहन सुन्दरगढ़ के महाकाल मंदिर में भी किया जायेगा। महाकाल मंदिर प्रांगण में ही उज्जैन की ही भाँति सूरज कुण्ड, हरिसिद्धि मंदिर एवं गणेश मंदिर का भी निर्माण करवाया। तदोपरांत सुन्दराबाई अपनी इच्छानुसार उज्जैन महाकाल में होने वाले सारी नित्य क्रियाएँ सुन्दरगढ़ में पुन: सम्पन्न करने लगीं। सुन्दरगढ़ का महाकाल मंदिर और वहाँ की धार्मिक क्रियाएँ देखकर लगता है कि सुन्दरसी विक्रमादित्य की एक और अवन्तिका के रूप में स्थापित थी, जहाँ उज्जैन का महान सम्राट अपनी बहन सुन्दराबाई से मिलने आता रहता था। सुन्दरसी के लोक मानस में व्याप्त राजा विक्रमादित्य की बहन की प्रेम कथा आज भी चर्चा चलते ही छलक आती है। ब्याहता बहन की इच्छा पूरी करने हेतु विक्रमादित्य ने उसके सासरा में मायका का वातावरण निर्मित कर दिया। यह कथा भाई-बहन के अटूट प्रेम और धर्मपरायणता का अद्वितीय उदाहरण बनकर आज भी सुन्दरसी (सुन्दरगढ़) के आस-पास के गाँवों में लोक (सुरों) कंठों से गूँजती है।

सुन्दरगढ़ से लगभग 30 कि.मी. दूर एक ओर अवन्तीपुर का अस्तित्व दिखता है। नेवज नदी के तट पर बसा अवन्तीपुर बड़ौदिया नाम का स्थान प्राचीन काल में धर्मपुरी और आशापुरी के नाम से जाने जाते थे। विक्रमादित्य बहन के सासरा सुन्दरगढ़ आते-जाते यहाँ कुछ समय के लिए रूक कर प्रजा का हाल-चाल जानते थे। इस गाँव में भी सिद्धेश्वरनाथ का प्रसिद्ध मंदिर था, जिसे पहले चूना गट्टीवाला मंदिर भी कहा जाता था। प्राकृतिक आपदाओं और समय की अव्यवस्थाओं के कारण सिद्धेश्वरनाथ मंदिर आज अतीत का अवशेष बनकर रह गया है। कभी यह स्थान धाकड़- महेश्वरी व्यापारियों का मध्यप्रदेश में प्रथम पड़ाव रहा है। अवन्तीपुर बड़ौदिया सिद्ध सन्तों की भी भूमि रही, जिसका जीता जागता उदाहरण है- सिद्ध संत बाबा गरीबनाथ की समाधि। यहाँ कई समाज जिसमें पवार, धोबी, ब्राह्मण आदि के भैरव के भी स्थान है, जिसके दर्शन हेतु वर्ष में एक बार सभी वर्ग के लोग आते हैं। अवन्तीपुर बड़ौदिया से लगभग 5 कि.मी.की दूरी पर दूधी एवं नेवज नदी का पवित्र संगम है। यहीं मुरावर नामक गाँव में पिंगलेश्वर महादेव का मंदिर है। लोक कथा के अनुसार मुरावर मोरध्वज का स्थान था, जिसे देखने विक्रमादित्य के भाई भर्तृहरि की पत्नी रानी पिंगला आयी थी और प्रभावित होकर अपने ननद सुन्दराबाई के सासरा क्षेत्र में पिंगलेश्वर महादेव की प्राण प्रतिष्ठा करवायी थी। रानी पिंगला ने महादेव की आराधना पिंगलेश्वर नाम से करके सिद्धि प्राप्त की थी। सम्भवत: यही वह स्थान है जहाँ विक्रमादित्य के साथ रानी पिंगला सुन्दरगढ़ से आते-जाते रूकती थीं। उज्जैन के पास एक और स्थान पिंगलेश्वर रेल्वे स्टेशन भी है। उज्जैन क्षेत्र में महाकाल और पिंगलेश्वर फिर सुन्दरगढ़ में महाकाल और पिंगलेश्वर महज एक संयोग नहीं, बल्कि धर्म परायण प्रजापालक, लोक नायक देवप्रिय लोक सम्राट विक्रमादित्य की देन है।

मालवा में महाराजा विक्रमादित्य के विषय में शनिदेव की साढ़ेसाती के प्रकोप से सम्बन्धित एक लोक कथा प्रचलित है। कहते हैं कि एक समय नौ ग्रह इन्द्र की सलाह पर राजा विक्रमादित्य के दरबार में उपस्थित हुए और प्रश्न किया कि इसमें कौन सबसे बड़ा है? न्यायप्रिय राजा विक्रमादित्य ने सभी ग्रहों को समान बताया। अपनी श्रेष्ठता को सब के बराबर मानना शनि महाराज को अपमान लगा, और वे कुपित होकर बदला लेने की सोचने लगे। संयोग से विक्रमादित्य पर साढ़ेसाती सवार थी, इसका लाभ उठाकर शनि देव ने एक कालाघोड़ा उनके समक्ष प्रस्तुत कर उस पर सवारी की चुनौती दी। राजा ने चुनौती स्वीकारी और घोड़े पर वलौद रखवाकर सवार हो गये। काला घोड़ा जो शनि की माया की पलक झपते ही आँखों से ओझल हो गया। निर्जन क्षेत्र में जाकर घोड़े ने राजा विक्रमादित्य को अकेला छोड़ अपना प्राण त्याग दिया। जंगल में एक चरवाहे/ग्वाले ने राजा को जल पिलाया और उसे अपने साथ चम्पापुर नामक नगर में ले गया। चम्पापुर में सेठ के घर पर एक भोज में रानी का हार चोरी हो गया, जिसका आरोप राजा विक्रमादित्य पर लगा। चोरी के दण्ड में राजा को तेली का कोल्हू चलाना पड़ा, जहाँ शनि का प्रकोप और साढ़े साती धीरे-धीरे कम हुए और समाप्त हो गये। तेली का कोल्हू चलाना और उसके घर खाना-पीना राजा विक्रमादित्य को अपमानजनक लगता था, परन्तु समय के साथ सब करना पड़ा। इसी कथा के मालवा में प्रचलित कंलगी-तुर्रा अखाड़ों के बीच ख्याल गायिकी में मैंने सुना। सुन्दरगढ़ के पास के गाँव पगरावद के श्री विक्रम सिंह ने अवंतीपुर-बड़ौदिया में गरीबनाथ जी के मेले के उपलक्ष्य में रंगपंचमी को आयोजित कंलगी-तुर्रा में तुर्रा अखाड़े (पगरावद) की तरफ से एक प्रकार गाया था-

विक्रम को बरवां शनी क्रोध कर आया
राजा ने आदर दे उसको बिठलाया। टेक।
ये राजा इन्द्र के नाती विक्रमा जी ते ।
उजनी (उज्जैनी) का करते राज बड़ा सोनमीते ।
पर दुख के काटन हार नाम से प्रीते।
न दुखी कोई नगर में कहु बड़ा पुनीते।।
अब कहाँ लक वर्णन कहुं बड़ा रणजीते।
अब कहुं कथा शनि देव की सुनो धर चीते।।

दोहरा : *शनी देव की कथा कहुं, सुनजो ध्यान लगाय।।*
दोग धोक पीड़ा टले, भागे दूर बलाय।।

मिलाय : *अप्रबल छाया तुम सबकी पालन करो वेद में गाया।।*
1।।
नौगिरे आनेकर बड़ा कहुं बिस्तारे,
आपस में झगड़ा करे कोई नहीं हारे ।
वो झगड़त-झगड़त गये इन्द्र के द्वारे,
हम नौगिरे (नौग्रह) के कहो कौन बड़ा सिरदारे ।।
ये इतनी सुनकर इन्द्र हुआ लाचारे,
तुम पराक्रमी हो बड़े गुण तुम्हारे ।।
ये उजनी नगरी विक्रम नाती हमारे,
वहीं जाओ न्याय कर देगा तुरंत पगधारे।।

दोहरा : *सुनते सुगन शनिदेव चले आये विक्रम द्वारे।।*
न्याय हमारो कीजिये अवंती के भूप
ये राजा इन्द्र तेरे पास पहुँचाया.... ।।2।।
विक्रम भूप से किया न्याय जब बारे,
हो जावे न्याव तुम दिल रखो सम्भारे ।।
वे नो धातु का आसक बनाकर धारे,
ये नीचे लोहा ऊपर बिस्तर धारे।।
ये अपने-अपने आक बैठो सिरधारे।

दोहरा : *शनी देव जी युं कहै मेसे कियो चले आये अपमान*
मेलो देख मत भुलजेः तुरत करौ हैरान।

मिलाप : *तुरत कर हैरान बुरी मेरी छाया। ।।3।।*
रावन पर दृष्टि डाली खोज मिटाया।
बन सोदागीर ने घोड़ा अगाड़ी ठाड़ा,
घोड़े को देखकर खुशी हुए राजा बड़ा।।
रखवाया झीन घोड़े पर राजा चढ़ा,
ले उड़ा पवन के साथ वन में जा पड़ा।
घोड़े ने त्यागा है प्राण सोच में जा खड़ा।।
नहीं राजा पास में वहीं अकेला खड़ा।
पानी बिन प्यास बन में भोत फड़फड़ा।।

दोहरा : *नापा ने जद आपके राजा को पिलाया जल।।*
नापा ने राजा से कमो संग हमारी चल ।।

मिलाप : *संग हमारी चल लालच बतलाया,*
चम्पापुर नगरी राजा को पहुँचाया।।4।।
चम्पापुर नगरी अजब शैर गुलजारे,
चम्पापुर नगरी में पटको चघत सवकारे।
चल गये उन्हों के द्वार करके वे प्यारे,
कहो कही से आना हुआ कहो सिरदारे।।

वो करे कुशल की बात वो प्यारे,
जहां लाख रूपये का नित होता बैपारे।।

दोहरा : *नृपत रसोई पावते, देखी बात कठोर।।*
हार जो खुंटी धरी, गीले चबा का भोर।।

मिलाप : *गिले चक्र का मोर देख थरयाय,*
देखो प्रभु ने बुरा कलंक लगाया ।।5।।
सेठानी मेल से निकली हार नहीं पाया,
सब को बुलाकर राजा से पुछवाया।।
कहो भिकाजी हार तुमने लिया,
हमने तो नहीं लिया वहीं चिल्लाया।
फिर सुनसान राजा ने चोर बुल्लाया,
राजा को दण्ड देयोरंग्या ठेराया।।

दोहरा : *भोत कसक दुख पावते, कैसे कहुँ बनाया।*
धनपत तेली आय के, राजा से पूँछी बात।

मिलाप : *राजा से पूछी एक बात तेली आज्ञा छाया,*
चौरंग्या कोले पानी पर बिठलाया ।।6।।
धानी हाँकत हाँकत कई दिन बीते,
तेली के घर का अन्न जल खाते पीते।।
अंद रात अंधेरी बरखा आई जीते,
ये दामनी दमकती करे पानी से प्रीते।
दिय का अलोपा राज विक्रमा जीते,
ये राग सुना राजा की कर धर चीते।।

दोहरा : *सुनते सुगनदासी चली, सारो शैर लियो शौर।।*
घर तेली के आवते, सारो नगर लियो भोय।।

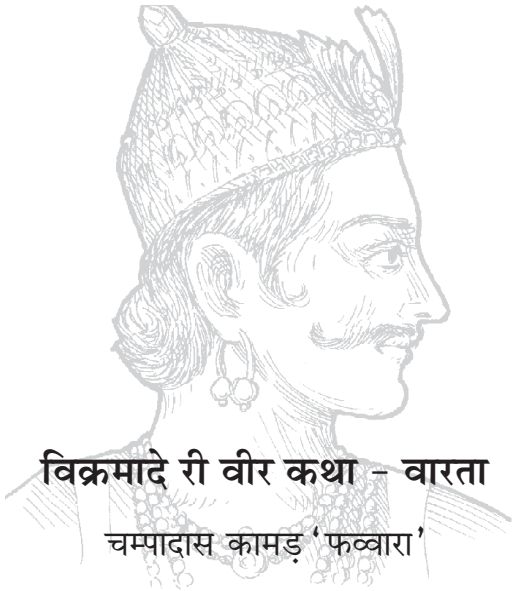

विक्रमादे री वीर कथा - वारता

चम्पादास कामड़ 'फव्वारा'

यह वार्त्ता उज्जैन के धर्मप्रिय, न्यायप्रिय, वीर, तपस्वी एवं साधुओं, योगियों के प्रति समर्पण भाव रखने वाले राजा विक्रमादित्य के जीवन से जुड़ी है। वार्त्ता के आरम्भ में रिद्धि-सिद्धि के दातार गणपति की, भूले अक्षर का स्मरण करवाने वाली देवी सुरसति की एवं 84 लाख योनियों से मुक्त कराने वाले 'अलख-निजार' की वन्दना के उपरान्त, इस वीर कथा-वार्त्ता को सुनने को पुण्य गंगा स्नान के तुल्य माना है-

ऐ पेली सिमरां गणपत देव, रद-सद रा भण्डार भर देव।
उज्जैणी नगरी शप्राजी रा घाट, राजा विक्रमादे ने दलीचां नार।
वीर कथा हुणे ज्यारा गंगा सनान, ओ ओ जी।
दूजा समरां शारदा मांय, भूल्या अक्षर देय वताय।
तीजा समरां अलख नजार, लख-चौरासी काटणहार।
उज्जैणी नगरी ने शप्राजी रा घाट, वटे वसे मारा बालीनाथ।
भगमा तम्बू वटे उड़े निशाण, होना रा कलस्या तपे आसमान।।

बालीनाथ जी नामक महान योगी जोधपुर नरेश विजयसिंह, चित्तौड़ के राणा कुम्भा एवं उज्जैन के शासक विक्रमादित्य के बालगुरु थे। एक बार बालीनाथ जी साढ़े सात हजार जोगियों की जमात के साथ अपने शिष्य जोधपुर नरेश विजयसिंह के राजोद्यान में जाकर तम्बू तानकर जमात को ठहराते हैं। साधु-संतों-योगियों की 'शिव-शिव' की ध्वनि राजरानी सुनती हैं तथा पति विजयसिंह को संध्या बेला में कहती हैं कि यह ध्वनि कहाँ से आ रही है? क्या किसी शत्रु ने धावा तो नहीं बोल दिया-

के राणी ने सुणो पिऊजी वात, आप सुणो नी मारा मनड़ा री वात।
थांरा वागां में यो कई आचार, भगमा तम्बू वठे उड़े निशाण।
होना कलस्या तपे आसमान, वटे वसे बालीनाथ।।
वीर कथा हुणे ज्यांरा गंगा सनान, ओ ओ जी।।

विजयसिंह के बाग में पहुँचने पर ज्ञात होता है कि उनके बालगुरु योगी बालीनाथ अपने साढ़े सात हजार शिष्यों की जमात लेकर पधारे। परिक्रमा देकर प्रणाम किया। बालीनाथ जी ने कहा- शिष्य विजय सिंह! सभी जमातियों के भोजन-पानी, एक मन अफीम, बारा मन गांजा एवं तेरह मन भांग की व्यवस्था कर सको तो हम यहाँ जमात रोकें। विजयसिंह ने कहा- मैं अपने मुख्य आमात्य एवं रानी आदि से पूछकर आता हूँ। मंत्री ने कहा- राजन सब मिलाकर इनका एक समय का खर्चा सवा लाख के लगभग है-

के गुरूजी सुणो राजन वात, ऐ सुणले राजा मारा मन री ए वात।
बारा मण गांजो राजा तेरा मण भांग, भोजन-पानी रे कियो नहीं जाय।
कर सको तो राजा करो इन्तजाम, दून्यूं जावां मा दूजे गाम।
उजैणी नगरी ने शप्राजी रो घाट, वटे वसे गुरू बालीनाथ।
वीर कथा हुणे ज्यारो गंगा-सनान, ओ ओ जी।

इतना खर्चा सुनकर राजा तथा मंत्री एक-दो दिन तक बाग की तरफ पुनः नहीं आने पर, गुरु बालीनाथ भांप गये कि राजा ठहराना नहीं चाहता। तब बालीनाथ जमातियों को लेकर चित्तौड़ नरेश राणा कुम्भा के राजोद्यान में तम्बू लगाने पर, कुम्भा भी इन्तजाम से मुकर कर पुनः गुरु के पास नहीं आया। पाँच-पचास साधु तो भूखे-प्यासे ही मर गये, तब गुरु ने आदेश दिया, चलो संतों उज्जैन। वहाँ का शासक विक्रम मेरा परम शिष्य है। वो अपना इन्तजाम कर आतिथ्य जरूर करेगा। सब जोगी कहने लगे, 'महाराज जोधपुर से रगड़ते-रगड़ते हाथी, घोड़ों तथा ऊँटों को भी थकाकर चित्तौड़ लाये। कुछ जोगी एवं हाथी-घोड़े परम धाम जा चुके हैं। अब उज्जैन तो काफी दूर है। अब सभी जोगियों से चला भी नहीं जा रहा है।

अन्ततोगत्वा गुरु के साथ सभी उज्जैन पहुँचकर, राजोद्यान में ठहरते हैं। राजा विक्रम गुरु बालीनाथ को पृथ्वी से बारह हाथ ऊपर अधर आसन पर बैठे देखकर पहचान लेता है तथा परिक्रमा कर गुरु को साष्टांग प्रणाम कर आज्ञा के इन्तजार हेतु करबद्ध खड़ा रहता है। गुरु कहते हैं- बेटा क्या इन सभी साधुओं के भोजन, पानी, भांग, गांजा तथा पशुओं के घास की पर्याप्त व्यवस्था कर सकते हो? विक्रम राजमहल में मंत्रियों तथा रानी से पूछकर आने की बात कहता है-

के राजन सुणो राणी वात, सुणले राणी मारा मन री ए वात।
सत्गुरू आया आज वागां रे मांय, करां वणा रो कई आदरभाव।
उज्जैणी नगरी शप्राजी रो घाट, वटे वसे मारा बालीनाथ।
राजा विक्रमादे दलीचां नार, वीर कथा हुणे ज्यांरा गंगा सनान।
बारा मण गांजो ने तेरा मण भांग, भोजन पाणी रो कियो नहीं जाय।।

रानी दलीचा विक्रम से कहती हैं- पतिदेव साधु-संतों की सेवा का तो बहुत बड़ा पुण्य होता है। मंत्री भी यही बात कहते हैं 'यथा राजा तथा प्रजा' की झलक दिखाई देती है। राजा, मंत्री एवं पटरानी दलीचा राजोद्यान में आकर उनके आगमन का स्वागत कर अपना अहोभाग्य मानते हैं तथा कहते हैं कि सभी साधुओं एवं साथ आये पशुओं आदि की यथाशक्ति व्यवस्था हो जायेगी।

बत्तीस प्रकार के व्यंजनों के साथ छत्तीस प्रकार की सारणा (सब्जियाँ) बना सभी जमातियों को जीमाये गये। रानी के आदेशानुसार उनके साथ लाये गये हाथी, घोड़ों, ऊँटों को भी घास आदि न डालकर जैसा जमातियों ने खाया था, वैसा ही भोजन उन्हें भी खिलाया गया। जोगियों के लिए प्रतिदिन के हिसाब से बारह मन गांजा तथा तेरह मन भांग की व्यवस्था की गई।

दूसरे दिन रानी दलीचा विक्रमादित्य से कहती है कि बालीनाथ जी बड़े चमत्कारिक योगी हैं। आपके बालगुरु हैं, अतः आप उनके विधिवत शिष्य बनकर उपदेश ग्रहण करो। गले में कण्ठी बन्धवाओ तथा अमर भजन आदि प्राप्त कर जीवन सफल बनाओ। घोड़े पर सवार हो विक्रमादित्य बाग में पहुँचकर गुरु को साष्टांग प्रणाम करता है। गुरु आशीर्वाद देकर उसके द्वारा किये आतिथ्य से साधुवाद देते है। विक्रम इसे अपना कर्त्तव्य बताता है एवं गुरु से विधिवत उपदेश ग्रहण कर शिष्य बन, अमर भजन देने का निवेदन करता है, तो गुरु बालीनाथ उसे इस शर्त पर शिष्य बनाने को तैयार होते हैं कि राजप्रासाद के बाहर नौ गज गहरा गड्ढा (समाधिनुमा) खोदकर

शिला से उसे ढंककर उसमें पद्मासन लगाकर छः मास बिना अन्न–जल से तप कर फिर जीवित अवस्था में बच जाने पर उनके पास अकेला पहुँचने पर विक्रम को विधिवत शिष्य बनाकर अमर भजन प्रदान करेंगे। राजा शर्त स्वीकार लेते हैं तथा छः माह तक गुरु को वहीं ठहरने की व्यवस्था कर समाधि खुदवाकर तप करते हैं। रानी दलीचां भी सती एवं साध्वी थी, अतः वह भी बिना अन्न, जल ग्रहण किये पति की समाधि के समीप बैठ तुलसा जी की माला लगातार फेरती रही।

छः माह बाद राव, ऊमरावों व ग्रामवासियों द्वारा राजा को समाधि से निकालने पर राजा मूर्छित अवस्था में निकाले जाते हैं। उन्हें कुछ घंटों बाद होश आता है। राजा स्नान, ध्यान, पूजा पाठ करके गुरु के पास जाने के लिए प्रधान जी को घोड़ा भीड़कर तैयार कर लाने हेतु कहते हैं–

के राजा सुणो परधान वात, हजारी घोड़े झीण मण्डाय।
अबे जावां हां गुरां रे दरबार, गुरू बणेला मारा बालीनाथ।
उजैणी नगरी शप्राजी रा घाट, भगमा तम्बू उड़े निशाण।
होना रा कलस्या तपे आमान, वटे वसे मारा बालीनाथ।
राजा विक्रमादे दलिचां नार, वीर कथा हुणे ज्यांरा गंगा–सनान।।

राजा द्वारा समाधिस्थ होने की बात एवं अब गुरु से 'अमर भजन' ग्रहण करने की बात का पता उसी नगर के बोल्या धोबी नामक महान तांत्रिक को लग गया। वह कांगरू देश से तंत्र विद्या सीखकर आया एवं परकाया प्रवेश विद्या में सिद्धहस्त था। अतः उसे मालूम पड़ता है कि राजा आज अर्द्धरात्रि को गुरु से 'अमर भजन' प्राप्त करने हेतु अकेला तालाब की पाल पर होकर राजोद्यान में गुरु बालीनाथ के पास जायेगा तो वह संध्या से (गाँव के) कपड़े धोने हेतु तालाब के घाट पर चला जाता है। कपड़े धोने का बहाना कर राजा के आने का इन्तजार करता है।

अर्द्धरात्रि को घोड़े की टाप की आवाज सुनते ही बोल्या धोबी समझ गया कि राजा विक्रम ही गुरु के पास जाने आ रहे हैं, अतः तालाब की पाल के मध्य भुजाएं फैलाकर कहा– राजन् अर्द्धरात्रि को असमय कहाँ जा रहे हो? राजा कहते हैं– वैसे ही गुरु से मिलने। बोल्या कहता है कि मुझे पागल मत समझो। आप गुरु से अमर भजन लेने जा रहे हो। मुझे वचन दो कि आप वह भजन सीखकर आने के बाद मुझे भी इसका आधा फल दिलाओगे। यदि नहीं तो मैं तुम्हें आगे नहीं जाने दूँगा।

विक्रम बोल्या की नालायकी समझ गया और कहा कि मैंने छः मास समाधिस्थ रहकर तप किया है। अभी तुम्हारे हाथ को वचन देने हेतु स्पर्श नहीं कर सकता, तो बोल्या कपड़े धोने का धोवना (डण्डा) आगे कर इसे स्पर्शकर वचन देने को विवश करता है। फिर बोल्या घोड़े की लगाम छोड़ देता है, परन्तु बोल्या ने राजा के वचन पर विश्वास नहीं किया। राजा के थोड़े दूर जाने पर अपना मधुमक्खी का रूप बना, राजोद्यान में गुरु के समीप जाने से पूर्व ही राजा की शेरवानी की जेब में जाकर बैठ जाता है। गुरु बालीनाथ विक्रम की तपस्या पर खुश होते हैं और पूछते हैं कि तुम अपने साथ किसी को लाये तो नहीं, क्योंकि 'अमर भजन' अकेले शिष्य को ही गुप्त रूप से दिया जाता है। विक्रम कहते हैं कि मैं बिल्कुल अकेला आया हूँ। घोड़ा भी उद्यान के दरवाजे पर बांधकर आया हूँ। बालीनाथ द्वारा राजा को उद्यान से बाहर घोर जंगल में ले जाकर शंखनाद कर बारह कोस की परिधि में पक्षियों व पशुओं तक को भगा देते हैं एवं पुनः शंखनाद करते हैं जिससे पृथ्वी फटती है।

बालीनाथ उसे हाथ पकड़कर पाताल लोक ले जाकर सिर पर हाथ रख, मौखिक रूप से 'अमर भजन' सुनाते हैं। विक्रम को तो नींद आ जाती है और शेरवानी की जेब में बैठा बोल्या धोबी हूंकारे (हाँ) भरता रहता है। अमर भजन पूर्ण होने पर बालीनाथ पूछते हैं, राजन तुम अमर भजन पूर्णतः सीख गये हो? जेब में बैठा मधुमक्खी रूप में बोल्या बोलता है– पूर्णतः सीख गया गुरुदेव। फिर विक्रम को कहते हैं कि अमर भजन का रोज स्मरण करते रहने से तुम मोक्षगामी बन जाओगे। तब राजा निद्रा से जागकर कहते हैं कि कौन सा अमर भजन? अर्थात् मैंने तो कुछ नहीं सुना। बालीनाथ कहते हैं कि अब तक हूंकारा कौन भर रहा था? विक्रम कहते हैं कि मुझे तो निद्रा आ गई। मैंने तो कुछ नहीं सुना। गुरु बालीनाथ ने कहा– अपने कपड़े उतारकर देखो तुम जरूर किसी को साथ में लाये हो। विक्रम कहता है कि मेरे ही नगर का एक तांत्रिक बोहिया धोबी मार्ग में अमर भजन के आधे हिस्से की मांग तालाब में कर रहा

था। इतने में बोहिया धोबी मधुमक्खी के वेश में विक्रम की जेब से उड़कर भाग जाता है।

बालीनाथ विक्रम पर क्रोधित हो जाते हैं और कहते हैं कि मैंने 12 वर्ष तपोपरान्त 'अमर भजन' प्राप्त किया। तुम जैसे सुपात्र को देना चाहता था, परन्तु तुम्हारी लापरवाही की वजह से कुपात्र (बोल्या धोबी) के पास विद्या चली गई। वह इसका दुरूपयोग करेगा। उसमें मानव द्वारा वेश बदलने से लेकर मोक्ष प्राप्ति तक की साधना गुप्त रूप से विद्यमान है। पाताल लोक से विक्रम को फेंकते हैं। वह भू-लोक पर आ गिरते हैं। बालीनाथ भी बाहर आकर उन्हें क्रोधवश श्राप देते हैं। विक्रम तुमने मेरे साथ मेरे गुह्यज्ञान के प्रति धोखा किया है, अत: तेरा राजपाट छूट जायेगा। रानी दलीचां भी अलग हो जायेगी। तुम जंगल-जंगल भटकते फिरोगे। तुम्हें कीड़े खायेंगे। विक्रम अवाक् हो पश्चाताप करने लगा कि मैंने तो छ: माह तपकर विद्या प्राप्त करनी चाही, पर उल्टा श्राप का भागी बनना पड़ा। तदनन्तर योगी बालीनाथ भी जमात के साथ प्रस्थान कर जाते हैं। राजा महलों में आकर रानी से सब वारदात सुनाता है। रानी धैर्य बन्धवाती है। राजा पुन: राजकार्य करने लगता है।

नगर में बोल्या धोबी अपनी 'अमर भजन' प्राप्ति की कामयाबी पर फूला नहीं समाता है। एक दिन वह सुअर का वेश बना राजोद्यान के पेड़-पौधों को तोड़ने लगा। यह खबर विक्रमादित्य को दी गई कि कोई भयंकर सुअर अपने बगीचे को तहस-नहस कर रहा है। राजा उमरावों तथा सैनिकों सहित इसका शिकार करने पहुँचते हैं। उमरावों और सैनिकों को आदेश दिया गया कि सुअर जिसके घोड़े के नीचे निकलकर भाग गया, उसकी खैर नहीं। उसके हॉसल- भोग आदि बन्द कर दण्डित किया जायेगा। सुअर वेशधारी बोल्या राजा का गर्व तोड़ने हेतु किसी सैनिक के घोड़े के नीचे से निकलने की बजाय, राजा के घोड़े के नीचे ही निकलकर बाग से जंगल में भाग गया। राजा सैनिकों सहित उसका चार-पाँच कोस तक पीछा करता है। सुअर पवन वेग से भयंकर जंगल में भाग जाता है। उमराव व सैनिक तो वहीं थककर रूक जाते हैं। राजा अकेला ही पीछा करते-करते उज्जैन से बारा कोस की दूरी तक सुअर के शिकार हेतु भागा चला जाता है। घोर वन में 10-15 गज गहरे धंसे हुए सूखे कुएँ में सुअर गिर जाता है। राजा सोचता है कि अब तो यह कहीं जाने वाला नहीं। घोड़े को बरकत से बांधकर कुएँ में उतरकर क्या देखता है कि सुअर तो नहीं मिलता है और कुएँ के एक ओर खोस में कोई व्यक्ति वस्त्र ओढ़कर सोया देखता है। राजा उसका आवरण हटाकर देखता है तो बोल्या धोबी मानव रूप में दिखता है। राजा के सुअर के बारे में पूछने पर कहता है कि तुम्हें अभी पता चल जायेगा। वह राजा की कमर से कटार छीनकर उसका गला काटकर मारने लगा। विक्रमादित्य अनुनय विनय कर कहते हैं कि आखिर तुम मेरी प्रजा हो, ऐसा सलूक मेरे साथ मत करो। उज्जैन के राजपाट, महल-मालिये सभी ले लो। मुझे मत मारो। रानी दलीचां मेरा इन्तजार करती होगी एवं उज्जैन की प्रजा मेरे लिए व्याकुल होगी।

के राजन सुण बोल्या वात, सुणले रे बोल्या धोबी मारी वात।
अरे बोल्या धोबी मने मत मार, मने मार्‌या लागेला गणो पाप।
थने दीदो में उज्जैणी रो राज, मूं वाजूं थारी भिण्डी गाय।
मेल-मालिया लेले सब राज, उजैणी रा लोग थने देवेला शराप।
मूं थारी परजा थूं मारो राज, राणी दलीचा जोती वेला मारी वाट।
उजैणी नगरी शप्रा रो घाट, वीर कंथा हुणे ज्यांरा गंगा सनान।।
राजा विक्रमादे दलीचां नार, बीर कंथा हुणे ज्यांरा कटे सब पाप।।

लाख समझाने पर भी बोल्या धोबी नहीं मानता है। सिर से धड़ अलग कर 'अमर भजन' के बल पर राजा के प्राण मुट्ठी में बंदकर, अधमरे हिरण जिसे कीड़े खा रहे थे, उसमें प्रविष्ट कर दिये और अपने प्राण राजा के मृत शरीर में प्रविष्ट करवा दिये। हिरण वेष में विक्रम को कीड़े खाने लगे। इधर-उधर दौड़ता-दौड़ता नगर के बाहर से राजमहल में दलीचां को वाट निहारती देख रो पड़ता है और पुन: जंगल की ओर जाता है। गुरु बालीनाथ जी आपने 'अमर भजन' देने के बदले यह कष्टमय श्राप क्यों दिया? उज्जैन के विक्रमादित्य की हाय, यह दुर्दशा! विक्रमादित्य के छद्‌म वेश में बोल्या घोड़े पर सवार हो 16 उमरावों और सैनिकों को आकर कहता है कि मैंने सुअर का शिकार कर लिया है। अब तुम कचहरी में जाकर पूर्ववत अपना काम संभालों। मैं भी रावले में जा रहा हूँ।

देवलोक में अचानक विष्णु भगवान का सिंहासन थर्राने पर सभी देवता विष्णु के पास गये। नारद को बुलाकर मृत्युलोक

की खबर पूछी तो नारद बोल्या धोबी द्वारा विक्रमादित्य के शरीर में प्रविष्ट होकर शासक बनने के जटिल घटना प्रसंग को बताते हैं। विष्णु ब्राह्मण वेश कर हाथ में पंचांग ले, विक्रमादित्य की पटरानी दलीचां को 12 वर्ष तक भविष्य में आने वाली विपत्ति की घोषणा करते हैं। रानी बिलख पड़ती है कि राजा शिकार से अभी तक नहीं लौटे। ब्राह्मण वेशधारी श्रीहरि राज महल में 'मनसा-महादेव' की स्थापना व व्रत पूजा विधान से दुराग्रह निवारण का उपाय बताकर चले जाते हैं। दासी आकर दलीचां को संदेश देती है। महाराज शिकार से लौटकर कोमानेतण (निम्न स्तर की रानी) के खण्डहर घर पर मक्की की रोटियाँ सूखे प्याज के साथ खा रहे एवं टूटे खाट पर विराजमान हैं।

दलीचां भी संदेह ग्रस्त हो गई कि राजा मुझे छोड़कर कोमानेतण के यहाँ कभी गये नहीं और आज वहाँ क्यों बैठे हैं? दासियों को भेजकर राजा विक्रम (के भेष में बोल्या) को बुलवाया। दासियों ने कहा- आपकी पटरानी एवं मानेतण रानी दलीचां ने आपको बुलाया। विक्रम वेशधारी बोल्या चक्कर में पड़ गया। यह पटरानी और कोई रानी है। अपनी अनभिज्ञता पर पर्दा डाल, दासियों को आगे कर, घोड़े पर बैठकर पीछे-पीछे वह जाता है। वह स्वयं तो पटरानी को नहीं जानता। महल के झरोखे से राजा को आता देख दलीचा भांप गई कि ये चाल-ढाल व हावभाव उसके पति के नहीं हैं। इसमें कोई छल है। अत: द्वार पर आने पर उसकी परीक्षा लेने हेतु संकेतात्मक भाषा में 'ड्योढ़ी माफ' (यानी मेरे प्रश्न का उत्तर दिये बिना आगे नहीं जा सकते) कहा और पूछा राजन् जब आप शिकार को गये उस समय मैंने आपको मेरे पीहर का नौ करोड़ मूल्य का हार सुरक्षित रखने हेतु दिया था, वह आपने कहाँ रखा।

विक्रम वेशधारी बोल्या की बोलती बन्द हो गई, परन्तु उसने वाक्चातुर्य से कहा- तुम्हारे जेवर बगेरा की संभाल रखना क्या मेरा कार्य है? मैं तो राज्यकार्य में वैसे भी इतना व्यस्त रहता हूँ कि ऐसी फालतू बातें याद नहीं रहती। रानी का संदेह विश्वास में बदल गया और कहा कि यदि आपको मेरे हार के बारे में ज्ञान नहीं है, तो आप पुन: कोमानेतण के महल में चले जाओ। मेरे महल में आपके लिए जगह नहीं। विक्रम वेशधारी बोल्या कोमानेतण रानी के खण्डहर में चला जाता है। वहीं मक्की-ज्वार की रोटियाँ खा, टूटे खाट पर सोया रहता है। पुन: बैकुण्ठपुरी में विष्णु का सिंहासन थर्राने पर देवता दौड़ कर भगवान विष्णु के पास जाते है। नारदजी से मृत्युलोक के बारे में पूछा जाता है। नारद तथा सभी देवता विष्णु से अनुरोध कर छ: मास से धर्मप्रिय, न्यायप्रिय एवं धरती के स्तम्भ राजा विक्रम को मृगयोनि में कीड़े खाने की नारकीय योनि से मुक्त करवाने की प्रार्थना करते हैं। श्री हरि स्वयं मृत्युलोक आकर कांटों के झाड़ में मृगयोनि में पड़े विक्रम को मुक्त कर, समीप ही मरे पड़े शुक में उसके प्राण-डाल देते हैं।

अब विक्रम तोते की योनि में आ जाते हैं। अपने ही नवलखे बाग में कदम्ब पर बैठे तोते के रूप में विक्रमादित्य महलों की ओर देखते हैं तो रानी दलीचां टहलती हुई दिखती है। खेद एवं व्यथा से आपूरित विक्रम अपनी दुर्दशा पर आंसू बहाते है। आंसू की बून्द कदम्ब के नीचे सोये हुए शिकारी के मुँह पर पड़ती है। वह उठकर देखता है कि वृक्ष पर मात्र तोता ही बैठा है, वह पूरे दिन के परिश्रमोपरान्त भी शिकार न मिलने के कारण चिन्तित था कि सायं अपनी झगड़ालू पत्नी को क्या जवाब देगा। अत: इस तोते को मारने हेतु धनुष पर ज्यों ही बाण चढ़ाया, तभी तब तोता मानव वाणी में कहता है- हे शिकारी! (पारदी) मुझे क्यों मार रहे हैं। बाल्यकाल में हम दोनों एक ही गुरु की पाठशाला में पढ़े हैं, अर्थात् गुरुभाई हैं। मैं पूर्वजन्म के पाप के कारण मृग एवं पक्षी योनियाँ भुगत रहा हूँ, अत: मुझे मार मत एवं विक्रमादित्य के राजमहल में पहुँचा दे, ताकि तुम्हें भी अच्छी रकम दिलवा दूँगा।

के सुवो सुण पारदी वात, सुणले रे पारदी मने मत मार।
आपी भण्यां गुरां री पठशाल, बालपणा री थोड़ी प्रीत पाल।
उज्जैणी नगरी शप्रा जी रा घाट, राजा विक्रमादे दलीचां नार।
वीर कंथा हुणे ज्यारां, गंगा- सनान ओ ओ जी।

शिकारी तोते की मानवीय वाणी से विस्मित हो कन्धे पर बिठाकर घर लाता है। अपनी पत्नी को ले जाकर देता है। वह चिढ़ जाती है कि इतना सा शिकार ही लाये हो। इस तोते की क्या सब्जी बनेगी। तदनन्तर शिकारी तोते को मानवीय वाणी बोलने वाला बहुमूल्य शुक बतलाता है तथा इसे विक्रमादित्य के महल में पहुँचाकर मन मांगी रकम लाने की बात कहता है। वह तोते को टोकरे में बिठा खड़े बाजार होकर

गुजरती है। नगर सेठानी जो कि रानी दलीचा की मुँह बोली बहिन है, शिकारी से पूछती है कि कहाँ ले जा रही हो। वह कहती है कि तोता मानव वाणी में बोलकर राजमहल में रहना चाहता है, अत: वहाँ ले जा रही हूँ। नगर सेठानी इस करामाती तोते को किसी भी कीमत पर खरीदना चाहती है। उसने शिकारी की पत्नी से मूल्य पूछने पर तोता स्वयं बोल पड़ता है कि इसे मेरा मूल्य सवा लाख रूपये दे दो। सेठानी उसे खरीद लेती है।

के सुवो सुण सेठ्याणी वात, सुण ले मारा मनड़ा री वात।
सवा लाख दे दो पारदणी रे हाथ, जदी रेऊँला थारे पास।
उजैणी नगरी ने शप्राजी रोज घाट, राजा विक्रमादे दलीचां नार।
भगमा तम्बू उड़े निशाण, होना रा कहस्या पते आसमान।
वटे वसे मारा बालीनाथ, वीर कंथा हुणे ज्यांरा गंगा सनान।

एक दिन तोता बेहोशी का बहाना करता है। सेठजी अपनी दासियों का बुला शुक की बेहोशी पर व्यथित हो उठती है तथा मनौती करती है कि हे प्रभु! यदि यह ठीक हो जावे तो इसकी इच्छित जगह तथा मेरी मुँह बोली बहिन रानी दलीचां के महलों में पहुँचा आऊँगी। तोता यह बात सुनते ही पंख फड़फड़ा कर उठता है। सेठानी तोता को लेकर राजमहल पहुँचती है, तोता मानवीय वाणी में कहता है कि आपकी मुँहबोली बहिन को सवा लाख रूपये अदा कर दो। रानी वैसा ही करती है। स्वर्ण पिंजरे में तोता रखा जाता है तथा पिंजरे के बाहर महल में भी उड़ता तथा बैठा रहता है। एक दिन तोता सोवन खूंटी पर टंगी राजा विक्रमादित्य की माला फेरने लगता है तो रानी दलीचां की आँखों में आँसू आ जाते हैं कि मेरे स्वामी तो कोमानेतण के घर छ: महिनों से रह रहे हैं और यहाँ तोता उनकी माला जप रहा है। यह सुन तोता बोलता है रानी कोमानेतण के घर रहने वाला विक्रम वेशधारी धोबी नामक दुष्ट व्यक्ति है। विक्रमादित्य तो मैं हूँ-

के सुवा सुण राणी ऐ वात, सुणले राणी मारा मन री ए वात
ऐ बोल्यो धोबी करे उजैणी रो राज, राजा विक्रमादे तो मारो नाम।

यह सुनते ही रानी दलीचां क्रोधित हो तोते को मारने के लिए उस पर झपटती है। तुझे पालने का अर्थ यह तो नहीं कि तू मेरा पति बन जावे। तब तोता कहता है कि रानी आपने विक्रम वेशधारी बोल्या से अपने हार के बारे में पूछा तो क्या वह बता सका? मैं बताता हूँ। जब मैं शिकार खेलने गया, उस समय आपका नौ करोड़ का हार मैंने पद्म शिला के नीचे रखा। चाहो तो जाकर देखो।

रानी द्वारा शिला उठाकर देखने पर उसके नीचे हार मिल जाने पर, तोते की बात पर विश्वास होता है। फिर तोते के रूप में विक्रम रानी के पास आकर बैठता है एवं बोल्या के जंजाल से मुक्त होने की युक्ति बताता है कि बोल्या को कृत्रिम आदर देकर अपने पक्ष में बुलावे, फिर वो 'अमर भजन' की पूर्ण विधि सीखकर, अर्धरात्रि को उसका वध करे। वह राजा के शरीर से बोल्या के प्राण मुट्ठी में ले और समीप बन्धे एक भेड़ में संचार करती है तथा तोते के प्राण राजा विक्रम के शरीर में तथा भेड़ के प्राण को तोते में संचार करती है। तब बोल्या धोबी को होश आता है कि मैं तो भेड़ बन गया। अब मेरा क्या होगा? अत: वह बंधा हुआ 'अब्बे-अब्बे' बोलने लगता है। उसी दिन से आज तक भेड़ उक्त आवाज ही बोलते हैं। भेड़ रूप में बोल्या को जमीन में गड़वाकर मुँह बाहर रख, उस पर घोड़े दुड़वाकर उसके किये की सजा दी जाती है एवं विक्रमादित्य पुन: उज्जैन के राजसिंहासन पर बैठकर शासन करते हैं। इस प्रकार असत्य पर सत्य की विजय होती है।

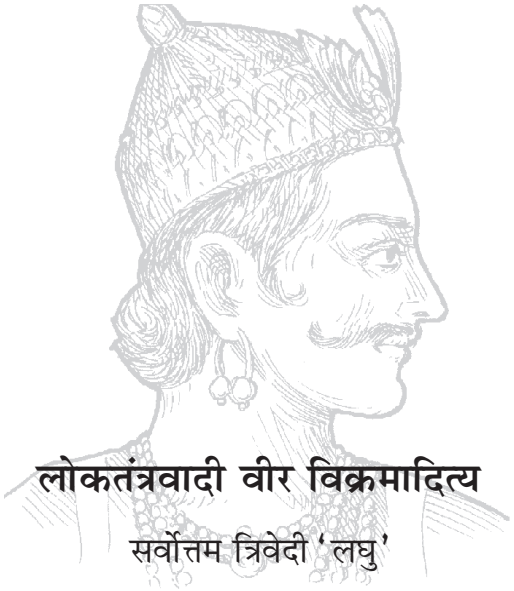

लोकतंत्रवादी वीर विक्रमादित्य

सर्वोत्तम त्रिवेदी 'लघु'

इतिहास लेखन, विशेषत: भारतवर्ष में, प्राचीन काल से ही श्रेय और प्रेय में से श्रेय अर्थात् श्रेष्ठ को महत्त्व देते हुए, उसे प्रश्रय देने की विधि से लिखा जाता रहा है। राम और रावण में से राम के और कृष्ण व कंस में से कृष्ण के गुणों, सिद्धांतों, नियमों, घटनाओं और प्रकरणों पर विशेष जोर देते हुए, उनसे सम्बंधित इतिहास का लेखन हुआ है। सतयुग के ध्रुव, प्रह्लाद की विशेषताओं का ही गुणगान किया गया है।

आज के इतिहास लेखन के प्रकार- 'वह सुबह 5.58 पर जागा। अलसाया हुआ था, अत: चाय पीकर पुन: लेट गया। पत्नी के बार-बार आग्रह पर 7.22 ए.एम. पर उठकर मुँह हाथ धोने गया'- उक्त/इस प्रकार से जो प्राचीन इतिहास लिखा गया होता तो अब तक पृथ्वी के सभी वृक्ष समाप्त हो गये होते। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का जीवन-वृत्त (इतिहास) भी प्राचीन विधि से ही लिखा हुआ उपलब्ध होता है।

गुप्तवंश के महान शक्तिशाली सम्राट वीर विक्रमादित्य का 'स्वर्णिम-युग' के नाम से प्रख्यात साम्राज्य-शासनकाल 375 ईस्वी से 414-15 ईस्वी तक रहा। इस काल का इतिहास, उनकी महानता का वर्णन करता है। अभिलेखादि आधारित इतिहास में, उनके सिंहासनारूढ़ होने के 5वें वर्ष में लिखा गया 'मथुरा स्तंभ लेख' प्रमाणिक धरोहर है।

विभिन्न उपाधियों यथा महाराजाधिराज, परमभागवत, श्री विक्रम, नरेन्द्रचन्द्र, नरेन्द्रसिंह, विक्रमांक एवं विक्रमादित्य आदि से सुशोभित मानवतावादी वीर विक्रमादित्य का सर्वप्रथम सैनिक अभियान सौराष्ट्र के शक क्षत्रपों के विरूद्ध हुआ। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के संधि विग्रहिक, वीरसेन शक के उदयगिरि (भिलसा के समीप) गुहालेख से, उनका समस्त पृथ्वी (विश्व/

भारत) जीतने के उद्देश्य से वहाँ आना स्पष्ट है। इसी उपर्युक्त स्थान से प्राप्त चन्द्रगुप्त के सामंत शासक सनका-नीक महाराज के (गुप्त संवत् 82-401-2 ईस्वी) के लेख तथा द्वितीयत: चन्द्रगुप्त के सैन्याधिकारी (सेनाध्यक्ष भी बने) आम्रकार्दव के साँची (गुप्त संवत् 93-412-13 ईस्वी) के शिलालेख से, मालव प्रदेश में उनकी दीर्घ उपस्थिति प्रत्यक्ष होती है। संभवत: चन्द्रगुप्त द्वितीय (उक्त चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य) ने शक रूद्रसिंह तृतीय के विरूद्ध युद्ध संचालन तथा विजय प्राप्ति के उपरांत सौराष्ट्र की शकमुद्रा परम्परा के अनुकरण में प्रचलित इन मुद्राओं पर चन्द्रगुप्त द्वितीय का चित्र, नाम एवं मुद्रा प्रचलन की तिथि अंकित है।

स्वाभाविक ही है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय की सौराष्ट्र विजय प्राय: (तकरीबन) 20 वर्षों के सुदीर्घ कठिन युद्ध के पश्चात् 409 ईस्वी. के बाद ही पूर्णत: सफल हुई होगी और ऐसे विक्रम पराक्रम के कारण ही इन्हें विक्रमादित्य (विक्रम युक्त आदित्य (सूर्य) आदि उपाधियों से अभिहित किया गया होगा।

चन्द्रगुप्त के सेनाध्यक्ष आम्रकार्दव, अपने साँची अभिलेख में स्वयं को 'अनेक समरावाप्त विजय यश सूपताक:' कहते है, जिसका सामान्य अर्थ युद्धों (अनेक) में विजय के द्वारा यश पताका फहराने वाला है। स्वाभाविक ही है कि चन्द्रगुप्त ने शकयुद्ध के अतिरिक्त भी अन्य युद्ध किये ही होंगे।

इतना ही नहीं, दिल्ली में कुतुबमीनार के पार्श्व में स्थित लौह स्तंभ पर किन्हीं (सम्राट) चंद्र की विजय प्रशस्ति उल्लिखित है। चन्द्र की पहचान प्राचीन भारत के विभिन्न सम्राटों से की जाती रही है, किन्तु प्राय: अधिकतर विद्वान इनकी पहचान चन्द्रगुप्त द्वितीय से करते हैं। यदि इस सिद्धांत को सही माना जाये तो यह कहना ही होगा कि द्वितीय चन्द्रगुप्त ने वंग प्रदेश में संगठित रूप से आए शत्रुओं को पराजित किया एवं युद्ध के द्वारा सिंधु के सात मुखों को पारकर वाह्लीकों को जीता। वंग की पहचान साधारणतया पूर्वी बंगाल तथा वाह्लीक की बल्ख (वैक्ट्रिया) से की जाती है। कुछ आश्चर्य नहीं कि वाह्लीकों का निवास स्थान पश्चिमी पाकिस्तान में ही कहीं रहा हो।

मेरे मालिक की दुकान में सब लोगों का साझा। मालिक अर्थात् ईश्वर। दरअसल ने की कमाई में, बीस नौंह की (कठिन परिश्रम की) कमाई में सभी का सीर, सब का हिस्सा होता है। और 'बनी के चेहरे पै, लाखों निसार होते हैं।' उगते सूर्य के समान, पराक्रमी शूरवीर शकारि, बहुयुद्ध विजेता चन्द्रगुप्त से सामान्यत: जनसामान्य प्रसन्न थे ही, प्रसन्नता का अन्य कारण चन्द्रगुप्त द्वितीय का जनवादी (साम्यवादी कम्युनिस्ट से अर्थ, भाव नहीं है), जनतावादी, मानवतावादी, लोकतंत्रवादी होना भी है।

चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में चीनी यात्री फाह्यान ने भारत का भ्रमण किया। फाह्यान (400-411) ने तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति तथा व्यवस्था का अत्यन्त सजीव उल्लेख किया है। मध्यप्रदेश का वर्णन करते हुए फाह्यान ने लिखा है कि 'लोग राजा की भूमि जोतते हैं और लगान के रूप में कुछ अंश राजा को देते हैं।' कैसी सुन्दर, लोकतांत्रिक ही नहीं शुद्ध मानवीय व्यवस्था की ओर इंगित करते हुए फाह्यान लिखते हैं- और जब चाहते हैं, तब उसकी भूमि को छोड़ देते हैं।' इससे भी आगे (अधिक) यह वर्णन है कि और जहाँ मन में आता है, जाकर रहते हैं। राजा चन्द्रगुप्त और शासकीय विभाग अध्यक्ष (सम्बद्ध) और विनय-स्थिति-स्थापक- की सुव्यवस्था यह है कि- 'राजा न प्राणदंड देता है और न शारीरिक दंड।'

अब यदि इस व्यवस्था का लाभ उठाकर, राज्य/प्रशासन को हानि की जाती है, हानि दी जाती है, कराई जाती है, जानबूझकर, विशेष इच्छा से कराई जाती है तो अपराध की गुरूता या लघुता को दृष्टि में रखते हुए अर्थदंड दिया जाता है।

क्या, यह ढिलाई नहीं थी ? अव्यवस्था कारक नहीं थी यह? तो बार-बार राजद्रोह, करने वाले अपराधी का दाहिना हाथ काट लिया जाता है। 'राज्य अधिकारियों को नियत वेतन मिलता है- फाह्यान ने यह भी लिखा है- आगे सामाजिक नैतिक वर्णन में लिखा गया कि- 'नीच चांडालों के अतिरिक्त न तो कोई जीव-हिंसा करता है, न मदिरापान करता और न लहसुन-प्याज खाता है। समाज को खराब कौन करता है- मांस, मछली, अण्डा, शराब- जीव हिंसा से प्राप्त मांस-मछली नहीं, मदिरा (शराब) नहीं, और तो और प्याज लहसुन तक नहीं। कैसा सात्विक सतोगुणी समाज था। फाह्यान ने लिखा- लोग धनी और उदार थे। (स्वाभाविक ही था- जहाँ सुमति,

तहाँ सम्पत्ति नाना), अच्छे धार्मिक कार्य करने में एक दूसरे से स्पर्धा (होड़) करते थे। 'वाह! देश में चोर-डाकुओं का कोई भय नहीं था। धन प्राचुर्य ही इसका कारण नहीं है, सम्राट का सदाशयी, धर्म-धुरीन, नैतिक, किन्तु राष्ट्र द्रोहियों के लिये पूर्ण कठोर होना भी इसके कारण हैं। यह 'स्वर्गादपि गरीयसी' भारत वर्ष में, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का भारत के स्वर्णिम युग जैसा राज्य, शासन मात्र शकविजयादि विजयों से ही नहीं हुआ। और ये विजय भी कहीं खैरात में नही मिल गयी। चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलिपुत्र (पटना) थी, किंतु परवर्ती कुंतल नरेशों के अभिलेखों में उसे पाटलिपुत्र वराधीश्वर एवं उज्जयिनीपुर वराधीखर (उज्जैन राज्य का श्रेष्ठ नरवर सम्राट)- दोनों कहा है। बहुत संभव है कि शक रूद्रसिंह की पराजय के बाद चन्द्रगुप्त ने अपने राज्य की दूसरी राजधानी उज्जयिनी बनाई हो। साहित्य ग्रंथों में विक्रमादित्य को भी इन उपर्युक्त दोनों ही नगरों से सम्बन्ध किया गया है। उज्जयिनी विजय के पश्चात् ही कभी मालवा संवत् विक्रमादित्य के नाम से संबंद्ध होकर, विक्रम-संवत् नाम से अभिहित होने लगा होगा। यों यह संवत् 38 ई.पू. से ही प्रारंभ हो गया प्रतीत होता है। वरिष्ठ पत्रकार प्रदीप कुमार ने अमर उजाला आगरा, पृष्ठ 10 'प्रवाह' स्तंभ में 'चीन की चाल को समझे' में लिखा है कि 'करीब 2300 साल पहले चन्द्रगुप्त मौर्य ने विश्वविजयी यूनानी सेना को पराजित कर, मगध से आगे बढ़कर अफगानिस्तान तक राज्यसत्ता कायम की थी।'

विक्रमादित्य के पराक्रम को स्मरण कर विक्रम संवत् 2047 में श्री मदन मोहन व्यास-केकड़ी (राजस्थान) ने शुभकामना दीं जन-जन को- 'स्वास्ति-प्रजाभ्यः परिपालयन्तान्, न्यायेन मार्गेण महीमहीशाः। गौ ब्राहमणेभ्यो शुभ-मस्तु नित्यम्, लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तुः।। वि.स. 2051 के प्रारंभ में श्री प्रेमनारायण ठक्कर ने 'विक्रम तिथि गणना' का आग्रह किया- 'हम पिंजड़े के पंछी, सदियों से है आदि। जाने क्या सुख कितना है? यदि हमें मिले आजादी हम भूल गये, हम क्या थे? संस्कृत, संस्कृति को भूले। पहिचान न पाये निज को, पर संस्कृति फूले तिथियाँ क्या होती है? क्या नाम माह के होते? नक्षत्र भला क्या होते? संस्कार लुप्त है होते 'विक्रम' की शुभ स्मृति में, तिथि गणना हम अपनावें। विक्रम की तिथि को लिखकर, गौरव से शीश उठवैं।। इस चन्द्रगुप्त मौर्य ने चाणक्य के सहयोग से नंदवंश का अंत किया था। विक्रमादित्य से कौन जुड़ना न चाहेगा। सवाई माधोपुर के चित्रकार श्री कान्तिचन्द्र भारद्वाज ने वि.सं. 2053 का, नववर्ष प्रतिपदा पर स्वागत किया- 'स्फटिक रचित पीठे, रमय कैलाश श्रृंगे। विकच कमल पत्रे, र्खचन्ती महेशम् करधृत धनवाद्या, पीत वर्णा यताक्षी। सुकविभिरिय मुक्ता, भैरवी भैरव स्त्री।' आधारित चित्र रचना से। डॉ. विश्वनाथ शुक्ल व श्री कैलाश नाथ द्विवेदी ने 'नव संवत् सरस्य नव प्रभातम् शुभभवतुः (वि.सं. 2060) ऐसे किया- 'प्रथम चैत्र शुक्ल बुद्धवासरे, भवति दुर्मुख नाम संवत् सरेः। तव स्वागतं भुवि भारते, कुरू कल्याणं जन हे तवे।'।। नव संवत्सर प्रतिपदा वि.स. 2052 का हार्दिक अभिनंदन करते हुए- श्री प्रेमठक्कर ने कहा- हे विक्रम! तुम भारत का स्वर्णिम युग लौटाओ। प्रतिवर्ष तुम्हारी स्मृति का पद- चिन्ह हमें दे जाओ।। गीत के अंत में कहा कि -खोयी उस संस्कृति का सद्ज्ञान कराने आओ।। हे विक्रम लौटाओ ।। वि.स. 2046 के नववर्ष प्रतिपक्ष पर सर्वोत्तम त्रिवेदी लघु ने आध्यात्मिक भारत की महिमा में भौगोलिक वर्णन किया था, जिसके अनुसार ही श्री कांतिचन्द्र भारद्वाज ने तदानुसार भारत माता चित्रण किया था।

आज वि.स. 2074 है, चल रहा है, चलता रहेगा-'तो कुछ बात थी (ना) कि, आखिर हस्ती मिटती नहीं विक्रमादित्य की।' वैसे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य से पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य के (340 ई. पूर्व में) जन्म का वर्णन मिलता है। जिसने नंद वंश की समाप्ति और पंजाब सिंध में विदेशी शासन का अन्त कर पूरे भारत पर आधिपत्य स्थापित किया था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के पराक्रम की स्मृति में प्रचलित मुद्राओं के चित्र मिलते हैं।

चन्द्रगुप्त के विक्रमादित्य होने के कारणों में उसका योग्य, चतुर, कूटनीतिज्ञ, नीतिज्ञ (नीति प्रवीण) होना भी है। पूर्व में बंगाल से उत्तर-पश्चिम में अरब सागर तक के साम्राज्य को स्थिरता प्रदान करने की दृष्टि से चंद्रगुप्त ने अनेक शक्तिशाली एवं ऐश्वर्योन्मुखी राजपरिवारों से विवाह-सम्बन्ध स्थापित करने की सुनीति अपनाई। द्वितीय रानी 'कुबेर नागा'- नाग कुल संभूता थी। इससे उत्पन्न प्रभावती गुप्त, वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय को ब्याही गई थी। कुंतल प्रदेश के कदंब नरेश शांतिवर्मन

के 'तालगुंड अभिलेख' से विदित है कि राजा काकुत्स्थ वर्मन की पुत्रियाँ गुप्त एवं अन्य राजाओं को ब्याहीं थी।

साम्राज्य संचालन सुव्यवस्थार्थ- सम्राट स्वयं सर्वोच्च था, सहायतार्थ मंत्रिपरिषद् होती थी, दूसरा उच्च अधिकारी युवराज होता था। वह मंत्रिपरिषद् का मुख्य अधिकारी व अध्यक्ष था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के मंत्री थे शिखरस्वामी। इन्हें 'करमचंद अभिलेख' में कुमरामात्य भी कहा है। ज्ञातव्य है कि युवराजों की सहायतार्थ स्वतंत्र परिषद् भी हुआ करती थी। वीरसेन शास्त्र को 'अन्वय प्राप्त सचिव' कहा है। ये चन्द्रगुप्त के संधि विग्रहिक विभिन्न राजाओं से संधि की योजना अथवा विग्रह(संबंध न होने देने/तोड़ने) संबंधित सलाहकार, योजक निदेशक होते थे। तत्कालीन शासकीय विभागाध्यक्षों में- (1) कुमारामात्याधिकरण (2) बलाधिकरण (3) रणभांडाधिकरण (4) दंडपाशाधिकरण (5) विनय शूर (6) महा प्रतिहार, (7) तलवर(?) (8) महादंडनायक (9) विनय स्थिति स्थापक (10) भटाश्वति और (11) उपरिक आदि मुख्य थे।

कहा था कि 'बनी के चेहरे पर, लाखों निसार होते है'- बन्नी ब्याह होने को सज-धज तैयार हो रही या सद्य: विवाहिता का अर्थ- जिसकी बात, स्थिति, हालत बनी हुई हो, उसे बहुत सहयोगी, प्रशंसक मिल जाते हैं। अनजाने लोग भी रिश्तेदार बनने को उद्यत हो जाते हैं। और भले, नैतिक, देवीय, धार्मिक, आध्यात्मिक हस्तियों पर तो ईश्वरीय शक्तियाँ सुख, यश, आनंद की वर्षा करने को सामान्यत: प्रतिपल उद्यत रहती ही हैं। चन्द्रगुप्त को 'न्याय' हेतु भी समाहित किया जाता है। कहते हैं दैवीय सिंहासन था बैठने पर उसमें लगी काष्ठ की 28/32 पुतलिकाएँ न्यायार्थ सहायक होती थीं। कदाचित यह भी उस समय के नवरत्न प्रभृति सहायकों की व्यवस्था हो।

कादम्बिनी में भी यह छपा था, पू.स्व. रामशरण पीतलिया के द्वारा लिखित नौटंकी में विक्रमादित्य के दरबारी कलाकार, पखावजी के कामवन (काम्यकवन) अब कामां (जि.भरतपुर) राजस्थान के राजा कामसेन के दरबार की नर्तकी के नृत्य में पखावज बजाने का वर्णन हुआ था। कलाकार माधवानल ने, नृत्यरत कामकंदला के पखावली का अँगूठा, न होने या मोम का होने की घोषणा की थी। यह बात सत्य सिद्ध हुई। अत: राजा से प्राप्त माला, नर्तकी ने कलाकार को भेंट कर दी थी।

चंद्रगुप्त विक्रमादित्य हमारी भारतीय संस्कृति के महान कीर्तिस्तंभ थे। उनके प्रशासनिक एवं नैतिक सामाजिक गुणों क्रिया-कलापों पर विस्तार से वर्णन होना चाहिए। सेमीनारों के द्वारा विश्वविद्यालयों के ही नहीं, प्राथमिक शिक्षा के बालकों को भी उचित स्तरीय वर्णन- विवरण उपलब्ध कराकर, उनके पाठ्यक्रमों में पुन: प्रस्थापित कराने की महती आवश्यकता है।

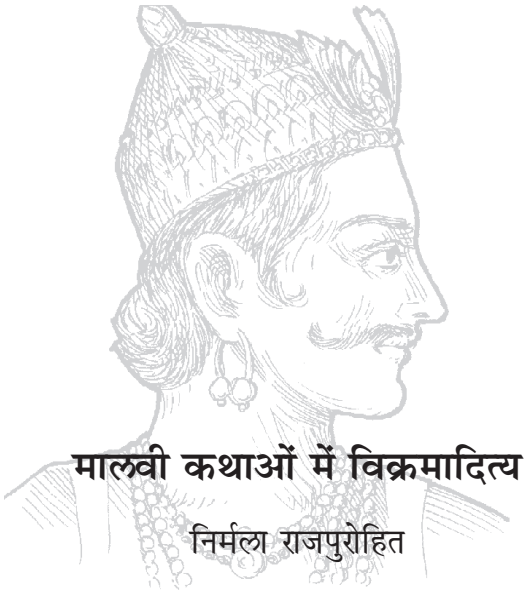

मालवी कथाओं में विक्रमादित्य

निर्मला राजपुरोहित

राजा विक्रम

राजा विक्रम की दो राण्याँ थी। एक को नाम आलावती ने एक को नाम भालावती थो। दास्यां ए वणा ने किदो, के कामरूदेस सी दो भंमरजोगी आया है। वी तमासो घणो हऊ करे है। तो राण्याँ ए कीदो तू जा ने वणाने बुलईने ला। दासी गई ने वणा भंमरजोगी ने कीदो म्हाका राणीसा थाने मेल में बुलई रिया है। भंमरजोगी तो वाट रज जोई रिया था। म्हाको मेल ती कदी बुलावो आवे ने मैं जावां। वी झट राणी का में पोंची ग्या। रानी बोल्या–थें तमासा करो हो कई? हाँ अन्नदाता! मैं तमासो करीने अपणों गुजारो करां। राण्या बोली, ठीक है, बताड़ो यांको तमासो? तो भंमरजोगी बोल्या–पेला हम राजा का दर्शन करीलां, फेर तमासो करांगा? राण्याँ बोली, वी तो उज्जण नगरी को पेरो देवा ने ग्या हैं। परोड़े बेताक आवेगा। राजा को पेरो काल भेरू तक पुरो बईग्यो। वी घरे आवां लागा तो काल भेरू आड़ा फरीग्या ने कीदो राजा आज तू घरे मतीजा। आज म्हारा कने रइजा। थारा मेल में दो भंमरजोगी बैठा है। राजा बोल्या या बात हांची बात वेगा तो मैं थारो मंदर बंदाई दूँगा, ने झूठी बात वेगा तो मैं थानें खोदी ने नदी में फेंकाड़ दूँगा? म्हारी राण्या असी कोनी, के वी भंमरजोगी ने मेल में बैठाड़ेगा। वणा ए कालभेरू की बात नी मानी ने आगे चाल्या, तो कालका माता बोली राजा–आज की रेण घरे मती जाओ? म्हारा मंदर मेज रई जाओ? राजा तो नी मान्या ने फेर आगे चाल्या तो हरसद्धि माता ए बरजा ने कीदो राजा आज मेल में मती जाओ? म्हारा मंदर में रई जाओं? थाकां मेल में भंमरजोगी बैठा है! अरे माता, या बात हांची वे तो थारो मंदर बंदाडदूँ, ने झूठी बात वे तों थने खोदी ने नदी में फेंकाड दूँ? वणा देवी की भी बात नी मानी ने फेर आगे चाल्या तो महांकाल बाबा बोल्या राजा आज की रात म्हारा मंदर में रई जाऔ? थांकी जान के खतरो है? उज्जण का हगरा देवी देवता ए राजा ने वरजा पण राजा ए एक की बात नी मानी। कामस देस की राजा की राखी डोरा बेन थी वा मोंयण थी। वणे भी राजा ने खुब ना कीदो के भई,

आज की रात की बात है! म्हारा घरे रईजाओ, वणाए कणी की भी बात नी मानी ने राजा मेल में अईग्या। घरे अई ने मेल का चढ़ाव चढवा लागा तो जूता खटांग खटांग बाजा। भंमरजोगी राजा की पग की हणकार हुणी तो वी वणा पर लपक्या ने दौड़या, तो राजा तो उल्टा पगें न्हारा। वणा ए मन में कीदौ, के देवी देवता की बात हांची थी। वणा सब ए म्हने धणो रोक्यो, पण मैं वणा की बात नी मानी।

भंमरजोगी तो जाण जुगारा था। वणा ए कांकरा मंतरी ने राजा का ऊपर फेंक्या, तो राजा विक्रम कुतरों वणीग्या। कुतरो दौड़तो-दौड़तो बेन घरे पोंचीग्यो। बेन ओटला पे बैठी थी। बेन ए वीने घर में वार दीदो ने कमाड़ दर्र ने पाछी ओटला पे अईने बैठीगी। भंमरजोगी बेन का घरे पोंचया। ने बेन कीदों थारा घर में म्हारो चोर है। बेन बोली, अठे ती चलयो जाजे, नी तो हिंगड़ा की दूँगा तो फाथों फाड़ लाखुँगा। भंमरजोगी डरया, ने फेर पुछयो कावो वेन तू गुणा भणी थकी है। बेन बोली, मैं पन्द्रा गुणा भणी थकीं हूँ। तो वी बोल्या अपणे तो दस गुणाज भण्या थका हाँ। या अपणा ती पाँच गुणा जादा भणी थकी है। या अपणा ने दाद नी देगा। वी बठे ती चलयाग्या। फेरं बेन बोली- भई, थने सब देवी-देवता ए ने मैं भी कीदों थो, पण थे एक की भी नी चालवा दीदी। अभे फजीता में पडिग्यो नी? मैं तो थारी बेन हुँ। म्हने तो म्हारी प्रित निभाणी पड़ेगा। तू भूको वइग्यो बेगा। मैं थने रोटी खवाडुँ, पण मैं थारो धरम नी बटारूं। बेन गाँव में गई ने दूद लईने, आई, भई ने दूद पायो, ने कीदो, के तू अभे अठे सी ताम्बाबर नगरी में जाजे ने वठे एक हामें हाम राजा को मेल है। वणी मेल का झरोखा में वणी राजा की कंवरी बैठी है, वा थने पन्नी लेगा। बेन भी कामरूदेस की थी, वा भी तंतर मंतर घणो जाणती थी। बा तंतर विद्या ती हेमरी वणीगी, ने वणी भई (कुतरा) ने वणायो तोतो, ने दोई भई बेन उड़ता-उड़ता एक वड़ला का झाड़का पे बइग्या। बेन बोली, वावणी झरोखा में कंवरी बैठी है, तो तू उड़ीने वणी का खोरा में जईने बैठी जा। तोतो उड़ीने कंवरी का खोरा में जईने बैठीग्यो। बेन घरे अइगी। रोज वणी तोता ने हंपड़ावे, हऊ खवाड़े, पीवाड़े, हऊ पींजरो मंगाइ लिनों, वीने वणी पींजरा में बैठावे बीकी खुब आक्ता-साक्ता करें। एक दिन वीने वा कंवरी न्हवाड़ी री थी। तो वणी का गला में एक ओरो वंद्यो थो। उ टूटीग्यो। तो उ तोतो मनख वईग्यो। कंवरी वणी मनख ने देखी ने घबराणी। राजा विक्रम बोल्या तू घबरा मती! मैं तो उज्जण नगरी को राजा विक्रम हुँ। म्हारी बेन ए तोतो वणई ने म्हने थारा कने मेल्यो, ने कीदौं के वा कंवरी थारा ती व्याव कर लेगा। कंवरी बोली मैं व्याव तो थारा तीज करूँगा। पण ये अठे ली जाओ? ने कठे भी एक खोली लईने रइलो। राजा बैठ ती लिकरया तो एक माली घेर रईग्या। माली ने कीदौ में थाको काम करूंगा। ने अठेज रूंगा, राजा, वणी माली को बगीचा ने पाणी पावे, फूलड़ा तोड़े, वणी की निगराणी राखे।

ताम्बावर नगरी का राजा अपणी कंवरी को व्याव करवा लागा। गांम गांम का राजकुमार ने बुलाया। सों पेला हथणी वरमाला ल्हाकती थी। तो कंवरी ए वणी हथणी ने कीदो, ए हथणी, वणी उज्जण नगरी का राजा का गला में वरमाला ल्हाकजे। सब देस का राजा का कंवर सभागार में बैठा था। आखा गांम का लोग भी देखवा ने आया। राजा ए हथणी ने वरमाला हाथ में दई दीदी, ने कीदो के जा जो बुद्धिमान राजकुमार वे वणी का गरा में या वरमाला ल्हाकी आ। उज्जण का राजा हगरा का पाछे बैठा था। वा हथणी हगरा राजकुमार ने उलांगी ने वणी माली का छोरा (राजा विक्रम) का गला में वा वरमाला ल्हाची आई। मेल का लोगां ए वणी माली का छोरा (विक्रम) ने भगई दीदो। ने फेर राजा ए हथणी ने वरमाला दीदी के जा, राजा का कणी भी कंवर का गरा में या वरमाला ल्हाकी आ! हथणी पाछी दौड़ी गई ने फेर वणी माली का छोरा (विक्रम) का गला में वरमाला ल्हाकी आई। फेर गांम का मनख ग्या ने वणी माली का छोरा (विक्रम) ने कांकड़ बारते करी आया। राजा बोल्या फेरती वरमाला ल्हाको। तीसरी वखत हथणी फेर कांकड़ उलांगी ने वणी मालीं का छोरा का गला में वरमाला ल्हाकी आई। राजा बोल्या, के अथे चोथे चाँवला है। अभे या हथणी जणी का भी गरा में वरमाला ल्हाकी देगा, उज वणी को पति वेगा। माली का छोरा ने और दूरो न्हवाड़ी दीदो। फेर भी वा हथवी बठे ज गई ने वणी छोरा का गला में वरमाला ल्हाकी आई। राजा बोल्या वा ठीक है। अभे भोज अणी कंवरी को पति हैं। कंवरी बोली, म्हारे तो योज पति अच्छे हैं। अणी तीज व्याव करूँगा? राजा ए माली का घरे हगरो ब्याव को समान पोंचाड्यो। छोरा के हल्दी पीठी लगई, अटने राजा की कंवरी के भी तेलवान चढ़ायो। बरात अई, राजा ए कंवरी को

व्याव माली का छोरा का हांते कर दीदो। राजा ए डायचा में एक मेल नोकर-चाकर, दास-दासी, हाथी घोड़ा पालकी सब दई दीदा ने कीदो के अभें थें अणी मेल में आराम ती रो। कंवरी ए राजा ने कीदो के इ राजा विक्रम है।

भंमरजोगी ने मालम पड़ी के राजा विक्रम तांबावन नगरी में है। चलो वठे चालां। दोई राण्या ने दोई भंमरजोगी ताम्बावन नगरी ग्या। मेल में पोंचया ने जई ने राजा ने कीदो, हम अहे खेल तमासो करां, तो हगरा जणा देखवा ने आवणा चईये। घरे एक मनख भी नी रेणो चईये। राजा बोल्या हाँ सब आवेगा। अठे कोई भी नी रेगा। वणा ए तमासो चालु करयो, हगरी दूर नजर दौड़ई, ने फेर राजा न कीदो, सब मनख आया। पण आपका बेटी जमई नी आया। राजा बोल्या, मैं अभी लईने अऊँ। राजा मेला में आया ने बेटी जमई ने कीदो बेटा चालो। वणा भंमरजोगी ए जमईसा ने बुलाया है। राजा की कंवरी ए वणी जमई को जीव हेड़ी ने अपणी नथ में ल्हाकी लिदो। ने खाली खोली मेल दीदी। ने पालकी में बैठई ने रवाना कर दीदा। भंमरजोगी देखी ने बोल्यो के राजा खाली खोली लई ने आया है। भंमरजोगी ए राजा ने कीदो, राजा थांकी बेटी की नथ में जीव है वा लईने आओ? राजा फेर मेल में गयो, ने बेटी ने कीदो बेटा थारी नथ दई दे। वणा ए नथ मंगई है। कंवरी ए नथ में ती जीव लिकारी ने गला का हार में ल्हाकी लीदो। ने नथ राजा ने दई दीदी। भंमरजोगी ए राजा ने कीदो, खाली नथ कई लाया राजा! थांकी बेटी का गला में हार है उ लईने आओ। राजा फेर कंवरी कने ग्या। बेटा, यो हार वी भंमरजोगी मंगई रिया? कंवरी ए उ हार तोड़ा तोड़ो करीने फेंकी दीदो ने कीदो, के लई जाओ यो हार! राजा तोड़यो थरो हार लई जईने ल्हाकी लीदो ने कीदो लो यो हार? हार का हगरा मोती बखरीग्या। भंमरजोगी ए वणा दोई राण्याँ ने मुर्गी वणई दीदी, ने कीदो के इ हगरा मोती झट झट चुगो? या वात राजा विक्रम की बेन ने मालम पड़ी के ओ हो इ भंमरजोगी म्हारा भई कने भी पोंचीग्या। भई की खोरी खाली पड़ी है। ने वणा दोई रांड़ा (राण्याँ) ने मुर्गी करी है। अगर वी सब मोती चुगी जाएगा तो म्हारो भई मरी जाएगा। मोयण वेन हेमरी वणी ने अतरी उतावर वी आई के वणाए पाँच दस मोती चुगया, वेगा ने अई ने दोई मुर्गी दीदी लात की, तो दोई मुर्गीयाँ मरीगी। बेन ए दोई ने मार ल्हाकी। वणा भंमरजोगी ने मालम पड़ी के वा मोंचण बेन अईगी, तो वी दोई जोगी न्हईग्या वणी बेन ए बीच में ली एक मोती लोक्यो ने भई ल्हाकी दीदो। भई सरजीवन वईग्यो। राजा विक्रम उठ्या ने कीदों बेन तू अईगी। हाँ, भई मैं अईगी। म्हारा भई में बखो पड्यो, तों आणो पड्यो। थें कणी की भी एक बात नी मानी। हगरा देवी-देवता आड़ा फर्या, पण कणी को भी केणो नी कर्यो। तो थने दुख बांटे आयो। हाँ बेन, म्हने तो थेंज वंचाड्यो।

भई विक्रम बेन के पगे पड्यो। फेर राजा विक्रम बोल्यो, के बेन चालां अभी हगरी दूर मंदर बंदाणा है। कणी देवता का मंदर बणाया, ने कणी देवीयाँ का ओटला ने मंदर वणाया। राजा ए अपणों वचन निभायो। फेर बेन ने कीदो, अभे तू बोल थारे कई चईये? म्हने वंचावा वारी तू है। तू जो मांगेगा मैं वा चीज थने दूँगा? अरे भई थारी जान बंचीगी। अणी ती बड़ी कई चीज है। राजा विक्रम बोल्या, असो तो नी वे। कई तो लेणों पड़ेगा।

मोंचण बेन बोली तू नी मानी रियो है, तो असो कर के रामघाट पे तीन पेड़ी होना (सोना) की बंदाड़दे। ने वणी को नाम राखीदे मोंचन बेन की पेढ़ी। लोग हंपडेगा तो केगा के या मोचन बेन की पेढ़ी है। राजा विक्रम ए मोंचण बेन का नाम की तीन पेढ़ी होना की बंदई दीदी। भई-भई का घरे। ने बेन बेन का घरे। राजा विक्रम ए फेर दूसरो ब्याव कर्यो। वणा को मेल फेर आबाद वईग्यो। वणाए अपणो राज हमारी लीदो। ने बेन को आणो जाणो बेतो रेतो।

भावार्थ

राजा विक्रमादित्य की दो रानियाँ थीं। एक का नाम आलावती और दूसरी का नाम भालावती था। दासी ने रानियों से कहा- कामरू देश से दो भंवरजोगी आए हैं। वह खेल तमाशे बहुत अच्छे करते हैं। रानियों ने दासियों से कहा- तू जा और उन्हें बुलाकर ले आ। दासी गई और भंवरजोगी को कहा- हमारी रानी साहिबा तुमको महल में बुला रही हैं। भंवरजोगी बुलाने का इन्तजार ही कर रहे थे। कब महल में से बुलावा आये और कब हम जाएँ। वह दोनों रानी के महल में पहुँच गए। रानी ने कहा- तुम खेल तमाशे करते हो क्या? हाँ अन्नदाता! हम अपना गुजारा खेल तमाशे करके ही करते हैं। रानियों ने कहा- दिखाओ तुम्हारे खेल तमाशे? भंवरजोगी बोले- पहले हम राजा के दर्शन करेंगे, फिर तमाशे शुरू करेंगे? रानियों ने कहा- राजा उज्जैन नगरी का

पहरा देने गए हैं, वह सुबह होते आएँगे। राजा सारे नगर का पहरा लगाकर काल भैरव तक आए। पहरा पूरा होने के बाद घर जाने लगे। काल भैरव ने उनका रास्ता रोक लिया और कहने लगे- राजा आज तू अपने महल में मत जा। आज की रात विश्राम यहाँ पर ही कर ले। तेरे महल में भंवरजोगी बैठे हुए हैं। राजा विक्रम बोले- अगर यह बात सच हुई तो मैं तेरा मन्दिर बनवा दूँगा और झूठ बात हुई तो मैं तुझे खुदवाकर नदी में फिकवा दूँगा। मेरी रानियाँ इस प्रकार की नहीं हैं कि वह भंवरजोगी को महल में बिठाएंगी। वह काल भैरव की बात को अस्वीकारते हुए आगे की ओर चल दिये। रास्ते में कालिका माता ने कहा- राजा आज की रात्रि घर मत जाओ। मेरे मन्दिर में ही विश्राम कर लो। तुम्हारे महल में भंवरजोगी बैठे हुए हैं। अरे माता! यह बात सच हुई तो मैं तुम्हारा मन्दिर बनवा दूँगा और अगर झूठ हुई तो मैं तुम्हें खुदवाकर नदी में फिकवा दूँगा। राजा उनकी बात को नकारते हुए फिर आगे की ओर चल दिये। फिर हरसिद्धि माता ने उनको रोका और कहा- राजा आज महल में मत जाना। राजा नहीं माने। और फिर आगे चल दिये। महाकाल बाबा ने उनका रास्ता रोककर कहा- आज रात्रि विश्राम मेरे यहाँ कर लो। पर आपके महल में मत जाओ आपकी जान को खतरा है? उज्जैन के सभी देवी-देवताओं ने उनको कहा- पर उन्होंने किसी की भी बात नहीं मानी। कामरूदेश की राजा की राखी धागे की एक मोचन बहन थी। उसने भी राजा को बहुत मना किया, भाई आज की रात की ही तो बात है। मेरे घर पर ही रह जाओ। उन्होंने अपनी बहन की भी बात नहीं सुनी और अपने महल में आ गए। महल में आकर सीढ़ियाँ चढ़ने लगे, उनके जूतों की आवाज सुनकर भंवरजोगी उनके ऊपर प्रहार करने के लिए दौड़े तो राजा ने उल्टे पाँव वहाँ से दौड़ लगा दी और भाग गए। उन्होंने अपने मन में विचार किया कि सब देवी-देवता की बात सही निकली। उन्होंने मुझे रोकने की बहुत कोशिश की। पर मैंने उनकी एक बात न सुनी।

भंवरजोगी जानकार थे। उनको तंत्र-मंत्र विद्या आती थी। उन्होंने कंकर को अभिमंत्रित करके ऊपर फेंक दिये। राजा विक्रम कुत्ता बन गए। कुत्ता दौड़ता हुआ अपनी बहन के घर पहुँच गया। बहन समझ गयी थी, वह अपने घर के चबूतरे पर बैठी थी। बहन ने उसे घर के अन्दर करके बाहर से दरवाजा लगा दिया और फिर चबूतरे पर बैठ गई। इतने में भंवरजोगी आ गए। उन्होंने बहन को कहा- तेरे घर में हमारा चोर है। बहन ने कहा- यहाँ से चले जाना, नहीं तो सिंग से ऐसा मारूँगी कि तुम्हारा सिर ही फट जाएगा। भंवरजोगी डरने लगे। उन्होंनें बहन से पूछा- तू कितनी पुस्तक पढ़ी हुई है। बहन ने कहा- मैं पन्द्रह पुस्तक पढ़ी हुई हूँ। वह दोनों बोले- अपन लोग तो दस पुस्तक ही पढ़े हैं। यह अपने से पाँच पुस्तक अधिक पढ़ी हुई है। यह अपना विश्वास नहीं करेगी। ऐसा आपस में कहकर वहाँ से चले गए।

फिर बहन ने कहा-भाई, तुझे सारे देवी-देवता ने कहा- मैंने भी कहा, पर तूने किसी की भी एक बात नहीं मानी। अब तेरी कैसी दुर्दशा हो रही है? मैं तो तेरी बहन हूँ। मुझे तो तेरी प्रीति निभाना पड़ेगी। तू भूखा हो गया होगा? तुझे भोजन करा देती हूँ। मैं तेरा धर्म भ्रष्ट क्यों करूँ? बहन गाँव में गई और दूध लेकर आई। भाई को दूध पिलाया और कहा कि यहाँ से थोड़ी दूर पर एक ताम्बावर नगरी है। वहाँ जाना, उस नगरी में जाते ही सामने एक राजा का महल है। उस महल के अन्दर झरोखे में उस राजा की राजकुमारी बैठी हुई है। वह तुमसे विवाह कर लेगी। बहन भी तंत्र विद्या जानती थी। क्योंकि वह भी कामरूदेश की थी। उसने अपनी तंत्र विद्या से भाई को मिट्ठू बना दिया और खुद चील बन गई। दोनों भाई-बहन उड़ते-उड़ते ताम्बावर नगरी पहुँच गए और वटवृक्ष के पेड़ पर जाकर बैठ गए। बहन ने भाई से कहा- वह उस झरोखे में राजकुमारी बैठी है, तू उड़कर उसकी गोद में जाकर बैठ जा। मिट्ठू उड़कर उस राजकुमारी की गोद में जाकर बैठ गया। बहन अपने घर चली गई। राजकुमारी ने मिट्ठू के लिए एक पिंजरा मंगवाया। उसमें उसको बिठाया। वह रोज मिट्ठू को नहलाती, खिलाती-पिलाती, उसकी काफी देखभाल करती। एक दिन राजकुमारी उसे नहला रही थी तो उसके गले में एक धागा बंधा हुआ था, वह टूट गया। उसके टूटते ही वह मनुष्य बन गया। राजकुमारी उसे देखकर घबरा गई। उसने राजकुमारी से कहा- तू घबरा मत! मैं तो उज्जैन नगरी का राजा विक्रमादित्य हूँ। मेरी बहन मायावी है, उसने मुझे तोता बनाकर तुम्हारे पास भेज दिया और कहा- कि जा वह राजकुमारी तुझसे विवाह कर लेगी। राजकुमारी ने कहा- तुम यहाँ से चले जाओ। कहीं पर भी एक कमरे में रह लेना। राजा विक्रम वहाँ से निकला तो एक माली के यहाँ पहुँच गया। माली से

जाकर कहा- मुझे कोई काम हो तो दे दो? मैं तुम्हारे यहाँ काम करूँगा, बगीचे को पानी पिलाऊँगा, फूल तोडूँगा, रखवाली करूँगा। आपका सारा काम करूँगा और यहीं पर रहूँगा।

ताम्बावर नगरी के राजा ने अपनी राजकुमारी का विवाह करना तय किया। सभी राजकुमारों को बुलवाया। पहले राजाओं के यहाँ हथिनी वरमाला डालती थी। वह जिसके भी गले में माला डाल देती, राजा उसी से अपनी कन्या का विवाह कर देते थे। राजकुमारी ने हथिनी से कहा- ए हथिनी, उस उज्जैन नगरी के राजा के गले में वरमाला डालना। सारे देश के राजकुमार सभाकक्ष में बैठे हुए थे। सारे गाँव के लोग भी वरमाला देखने आए। राजा ने हथिनी के सूड़ में वरमाला दे दी और कहा कि जो बुद्धिमान तथा समझदार राजकुमार हो, उसके गले में ये वरमाला डाल देना। उज्जैन का राजकुमार सबसे पीछे बैठा हुआ था। हथिनी सारे राजकुमारों को छोड़कर सबसे पीछे बैठा माली का लड़का, (राजा विक्रम) उसके गले में वरमाला डालकर आ गई। महल के लोगों ने उस माली के लड़के को वहाँ से भगा दिया। फिर राजा ने हथिनी को वरमाला दी और कहा- किसी भी राजकुमार पर ये वरमाला डाल दे? हथिनी वापस दौड़ी-दौड़ी गई और माली के लड़के के गले में वरमाला डाल आई। फिर गाँव के लोग उस माली के लड़के को गाँव के बाहर छोड़कर आ गए। राजा बोले- फिर से वरमाला डालो? तीसरी बार हथिनी गाँव की सीमा पर गई और फिर से उस माली के लड़के (विक्रम) के गले में वरमाला डाल आई। राजा बोले अब चौथा चाकर है! अब ये हथिनी जिसके भी गले में वरमाला डाल देगी, वही मेरी पुत्री का पति होगा। माली के लड़के को और दूर भगा दिया। फिर भी वह हथिनी वहाँ गई और उस माली के लड़के के गले में वरमाला डाल आई। राजा बोले- ठीक है! अब यही इस राजकुमारी का पति है। राजा ने माली के यहाँ सारा विवाह का सामान पहुँचा दिया। लड़के को हल्दी उबटन लग गए। राजकुमारी को भी उबटन लग गया। बारात आई। विवाह हो गया। माली के लड़के के साथ राजकुमारी का विवाह करके दहेज में एक महल, नौकर, दास-दासी, हाथी-घोड़े, पालकी सब दिये और कहा कि अब इस महल में एशोआराम से रहना। राजकुमारी ने अपने पिता से कहा कि आपके जो दामाद हैं, वही राजा विक्रमादित्य हैं। भंवरजोगी को पता चला कि राजा विक्रम ताम्बावर नगरी में है। चलो वहीं चलते हैं। चारों (दोनों रानी, दोनों भंवर जोगी) ताम्बावर नगरी पहुँच गए। महल में जाकर राजा से कहा- हम यहाँ पर खेल तमाशे करने आए हैं। आप सब लोग भी देखने आना। घर पर कोई भी नहीं रहना चाहिए। राजा ने कहा- सब आएँगे। महल में कोई भी नहीं रहेगा। खेल तमाशा शुरू हुआ। उन दोनों ने सारे दर्शकों पर नजर डाली। फिर राजा से कहा- आप सब आए, पर आपके बेटी-दामाद नहीं आए। राजा बोले- मैं अभी लेकर आता हूँ। राजा महल में गए, बेटी-दामाद को कहा- बेटा चलो, भंवरजोगी ने जमाईसा को बुलवाया है। राजकुमारी ने दामाद के प्राण निकालकर अपनी नथ में डाल लिया। और खाली चोला राजा के साथ पालकी में बिठाकर रवाना कर दिया। भंवरजोगी देखकर बोले कि राजा खाली चोला लेकर आया है। भंवरजोगी ने राजा से कहा- आपकी बेटी की नथ में आपके दामाद के प्राण हैं, उसे लेकर आओ? राजा वापस महल में गए, बेटी से कहा तुम्हारी नथ दे दो, उन्होंने नथ मंगवाई है। राजकुमारी ने नथ में से प्राण निकालकर गले के हार में डाल दिया और नथ राजा को दे दी। भंवरजोगी ने कहा- खाली नथ लेकर क्यों आए राजा? तुम्हारी बेटी के गले में जो हार है, वह लेकर आओ। फिर राजा राजकुमारी के पास गए और बोले- बेटा ये हार व नथ दोनों मंगवा रहे हैं। राजकुमारी ने वह हार तोड़-मरोड़कर जमीन पर फेंक दिया। उसके सारे मोती बिखर गए। भंवरजोगी ने उन दोनों रानियों को मुर्गी बना दिया और कहा कि ये सारे मोती जल्दी-जल्दी चुग लो? यह सारी बातें राजा विक्रम की बहन को पता चली। वह बोली- ओ हो! ये भंवरजोगी मेरे भाई के पास भी पहुँच गए। भाई का चोला खाली पड़ा है और उन दोनों रानियों को मुर्गियाँ बनाया है। अगर वह सारे मोती चुग जाएंगी तो मेरा भाई मर जाएगा। मोचन बहन चील बनकर इतनी जल्दी आई कि उन्होंने पाँच-दस मोती ही चुगे थे। उसने दोनों मुर्गियों को लातों से मारकर मार डाला। दोनों मुर्गियाँ मर गई। भंवरजोगी को इस बात का पता चला कि मोंचन बहन आ गई। तो वह दोनों जोगी भाग गए। बहन ने मोतियों के बीच में से प्राण वाला मोती उठाया और भाई के डाल दिया। भाई पुनर्जीवित हो गया। राजा विक्रम उठे और कहा- बहन तुम आ गई। मेरे भाई पे विपदा आई, तो मुझे आना पड़ा। तुमने किसी का भी कहना नहीं किया। सारे देवी-देवता ने मना किया, पर किसी का भी कहना नहीं माना। तो तुम्हें इतनी मुसीबत झेलना पड़ी। भाई विक्रम बोले- हाँ बहन, मुझे आपने ही बचाया।

भाई विक्रम ने बहन के पैर छुए और कहा- बहन चलें! जगह-जगह मन्दिर बनवाना है। चबूतरे बनवाना है। किसी के मन्दिर बनवाए, किसी के चबूतरे बनवाए। राजा ने अपना वचन निभाया। फिर बहन से कहा- अब तुम बोलो तुम्हें क्या चाहिये? मुझे बचाने वाली तुम हो। तुम जो मांगोगी वह मैं तुम्हें दूँगा। बहन ने कहा अरे भाई! तुम्हारी जान बच गई। इससे बड़ा उपहार मेरे लिए क्या हो सकता है? राजा विक्रम बोले- ऐसा नहीं होता है, कुछ तो लेना ही पड़ेगा।

मोचन ने कहा- अगर तुम नहीं मानते हो, तो ऐसा करो कि रामघाट पर तीन सीढ़ियाँ सोने की बनवा दो और उस पर नाम लिखवा दो 'मोचन बहन की सीढ़ियाँ' जनता वहाँ पर नहाएगी तो कहेगी कि यह मोचन बहन की सीढ़ियाँ हैं। राजा विक्रम ने बहन के नाम की तीन सीढ़ियाँ बनवा दीं। दोनों अपने-अपने घर चले गए फिर राजा विक्रम ने दूसरा विवाह कर लिया। अपना राजपाट संभाल लिया तथा महल आबाद हो गया। बहन का आना-जाना भी होता रहता।

राजा इन्दर

एक राजा भगोर थो। वणा के एक बेटी थी। गाँव की सखियाँ वणा ने खेलवा ने लेवा ने अई। ने वणा की माँ ने कीदो, के मैं बाईसा ने लई जावां। तो वणा ए किदो, के बाईसा का बापुसा ने पुछणो पड़ेगा। तो सखियाँ बोली के बापुसा ने कई पुछे? आप बाईसा को व्याव करी ने सासरे पोचई दोगा तो फेर कई खेलांगा? माँ बोली- वा, जाओ, वेगी आवजो। गाँम की सब छोरयाँ भेरी बईने खेलवा लागी। खेलता-खेलता बादरा बईग्या, राजा इन्दर मेघ लईन आया, पाणी चड्यो। छोर्याँ बोली अरे इन्दर राजा आप अबी मत बरसो। म्हाको खेल पुरा वई जाय जदी आजो। दफोर तक वणा को खेल पुरो वियो ने रमी खेली ने सब घरे अईगी। राजा की बेटी घरे अई ने हुईगी। तो राजा इन्दर ए घरे अईने वणा को बारणों बजायो? राजा की बेटी बोली- आप कुण है? मैं राजा इन्दर हूँ। आप ए कीदो थे के आजो, यूं थोड़ी कीदो थो के पड़ जो। मैं तो आपका वचन को पालन करयो। मैं बारणो नी खोलुंगा, मैं तो कुंवारी हूँ। बारणो तो आपने खोलनो ज पड़ेगा। आप कुंवरी हो तो म्हारा ती गांधर्व वीवा कर लो। गांधर्व विवा करागां तो लोग कई केगा। तो इन्दर बोल्या के आप म्हारा ती गांधर्व वीवा नी करोगा तो मूं नगर उलट-पुलट कर दूँगा। ने म्हारा ती व्याव कर लोगा तो परवार का ने गाँम कई नी केगा। कणी का भी मन में ऐसो विचार नी आवेगा। के अणे यो कई कर्यो। वणी लड़की ए बारणो खोल्यो ने दोई ए गांधर विवा कर लिदो। हऊ तरे ती दोई जणा रेवा लागा। दो चार मईना लिकर्या ने बाईसा के गरभ रइग्यो। तो माँ ने वीको पेट असो लागे के जणे कोई मईना रइग्या तो माँ ए जईने राजा ने कीदो के अपणे छोरो ढुंढ़ी ने बेटी को व्याव करदां। करने इ वर नी मिल्यो तो राजा ए पण्डित ने पुछ्यो, तो पण्डित बोल्यो के इको तो कटने भी वर नी मिले, ने नी लगन है अणी का किस्मत में। पण म्हने ऐसो लागे के इका लगन वइग्या। तो माँ ने बाप दोई घबराणा। वणा ने अन-पाणी नी भावे। तो बेटी ए माँ-बाप ने पुछ्यो आप क्यों घबरई रिया। तो राजा बोल्या के मैं तो आपका व्याव बाते घबरई रिया हाँ। म्हानें लड़कों नी मिली रियो। तो बेटी बोली के म्हारो व्याव तो वईग्यो? कणी का हांते? राजा इन्दर का हांते। आप घबराओ मती। राजा ने राणी घणा सुख वइग्या, के म्हाने तो राजा इन्दर हरका जमई मिल्या। व्याव करता तो आदो राजपाट देणो पड़तो। वना खरचा ती अपणा ने जमई हऊ मिल्या बेटी के नो मईना पुरा विया ने लड़को वियो। तो उ तो राजा का कंवर घड़ी वदता पल वदे। तो खेल भी ऐसा खेले के गाम का छोरा छोरी ने भेरा करले, तो कर्णी ने कामदार को काम होंपे, तो कणी ने मंत्री को ने कणी ने नोकर, ने उ खुद राजा वणे। वस्ती में चार पाँच लुगायाँ भेरी वी। तो वी कई री, के इ तो बाईसां का कंवर है। पण बाईसा ने तो पन्नाया ज कोनी, के बाप का ठीकाणां इं कोनी। अपणा ने तो मालम इजनी पड़ी। लुगायां ए अपणा-अपणा बच्चा ने कीदो आज थें सब जईने कीजो, के अपणा-अपणा बाप को नाम जो बताड़ेगा उ राजा वणेगा। सब छोरा ए अपणा अपणा बाप का नाम बतई दीदा, पण राजा का बेटा ए वणी का बाप को नाम नी बतायो। तो राजा कुंवर बोल्यो के आज अपणी कचेरी की छुट्टी। मूं काले म्हारा बाप को नाम पूछी ने आऊंगा जदी खेलांगा। घरे जई ने वणे माँ ने पुछ्यो के माँ म्हारा पिताजी को नाम कई है? माँ बोली थारा बाप का नाम मैं तो नी बतऊ, वी राते बारा बजे आवेगा तो तू वणा ने वणा को नाम पुछी लिजे ने वणा ने देखी भी लिजे। अबे वणी का पिताजी तो इन्दर लोक में से मृत्यु लोक में आवे अतरे उ लड़को सुई जाय। हवेरे उठी ने पुछवा लागो के माँ, म्हारा पिताजी? बेटा तूज वणा को

नाम पूछजे मैं नी बतई सकुं। युं करता-करता दो तीन दन वइग्या। वणी लड़का ने रोज नींद अई जाय। गांम में लुगायां बाता करें के देख्यों छोरो आज भी नाम पुछी ने नी आयो। वणी ने तो बाप को नाम इ नी मिल्यो। लुगायाँ राजी वइंगी। के उ तो आयो न कोनी। अभे अपणा छोरा साता ती रमेगा। तीसरे दन बाईसा ए कईं कर्‌यो के वणी छोरा की आँगरी में चीरो दई दीदो ने वणी में मरच भर दीदी। ने बीने कीदो के तू चुपचाप हुई रीजे। ने थारा पिताजी आवे तो तू म्हारा से मती बोलजे ने थारा पिताजी ती ज पुछजे। अभे वणी को हाथ बरी रियो थो तो वणी ने नींद अईज कोनी। पण पिताजी के आवा की बखत वी ने वणी ने नींद अइगी। पिताजी आया माँ ए वणा ने भोजन कराया दोई जणा ए खादो पीदो। अतरे चार बजीगी तो वणा के जावा की बखत वईगी। माँ ए जई ने धीरेक ती वणी छोरा के चिमट्‌यो भरयो तो एकदम छोरो उठ्‌यो। तो माँ बोली हे वी थारा पिताजी जई रिया बारते लिकरी ग्या। राजा इन्दर के वणा की पालकी अइगी। तो वी पालकी में बैठीग्या। पालकी उड़ी तो वणी छोरा ए पालकी का पागो पकड़ी लिदो ने वेकुण्ठ में पोंचीग्यो। तो वठे परियाँ इन्दर लोक में राजा इन्दर का हामे नाची री। वी नाचता-नाचता वणी लड़का का हामें नाचवा लांगी गी ने लटका करवा लागीगी तो इन्दर देखी ने बोल्या के रोज तो म्हनें देखी ने नाचे ने आज इ म्हारा पाछे देखी ने नाचती जईरी। परियाँ बोली- आज यो अतरो रूपवान कुण है? राजा ए पाछे फरीने देख्यो, के म्हारा पाछे कुण उब्बो है इ तो वणी का हामे देखी ने नाची री है। राजा ए पाछे फरी ने देख्यो तो वणा को लड़को ज उब्बो थे। वणा ए वीने देखी ने कीदो के- साला तू अठे अइग्यो, साला तू गदो क्यों नी वइग्यो, अतरो कई ने राजा ए वणी लड़का ने लात की दीदी। लड़को इन्द्रासण से धरती पे पड्‌यो, ने पड़ता इ उ गदो वइग्यो ने मरीग्यो। ने फेर गदड़ी का पेरे जनम लिदो। तो वा गदडी कुमार का अठे थी। गदड़ी के बच्चों वियो तो उ गदो वियो। गदा ए जनम लिदो। तो वणे कीदो के अणी नगर का राजा की लड़की का हांते म्हने पन्नई दे तो ठीक नी तो यो नगर उलट-पुलट कर दूंगा। तो कुमार घबराणों के म्हारो तो गदो ने राजा की लड़की यो कस्तर व्याव वे। राजा ने नगे पड़ी जाएगा तो वी म्हने बकेगा। के कारे म्हारी बेटी थारा गदा बातें? कुमार को गदो दन में तीन दाण बोले- के राजा अणी की बेटी म्हने पन्नई दे तो ठीक, नी तो नगर उलट-पुलट कर इंगा। कुमार ए वणी की लुगई ने किदो के अपणे तो गदड़ा का ढाँचा में समान भरी ने अठे ली चालां। दोई जणा ए समान बांद्‌यो ने बठे ती लिकर्‌या। गोयरा बारते आया ने चौकीदार ए पुछ्‌यो के थांके असो कई दुख पड्‌यो, जो अठे ती जई रिया हो। मैं तो थाने नी जावा दूँ। राजा म्हने लड़ेगा। चोकीदार ए जई ने राजा ने कीदो के आज कुमार बा गॉम छोड़ी ने जई रिया था। तो राजा ए कुमार बा ने राज में बुलायो। ने वणी ती पूछ्‌यो के तू गॉम छोड़ी ने क्यो जई रियो। कुमार बा ए राजा ने कीदो के होकम आप आज हॉजे म्हारा घरे पदारजो ने रोटी बठे ज जीमजो। आरे यार तु अतरी क मोटी बात पे गॉम छोड़ी ने जई रियो थो। आज हांजे ज अई जाऊँगा जिमवा ने। रात भी वठे ज रइ जाऊँगा। राजा हांजे कुमार का उठे आया ने रोट्‌या पाणी खादी ने खाटलो ढार दिदो। गादी तो थी कोनी, वणी पे गदड़ा की गुणती बिछई दीदी। होकम म्हारा घरे गादी गोदड़ा कोनी, मैं तो अणा पेज हुबां। राजा बोल्या के कई बात नी। मैं भी हुई जऊँगा अणी पे। राजा के वणी गुणती की डोर्‌याँ गच्चे तो नींद भी नी आवे। कुमार वणा ती वात करतो जाय के अणा ने आज हुवा नही देणा। राते बारा बजे गदो बोलेगा तो अणा ने हुणावणो पड़ेगा। रात की बारा वजवा वारी थी, ने कुमार बा आँख मींची ने हुईग्या। बारा बजी ने गदो बोल्यो कोई भी हुणतो वे तो हुणजो। अणी राजा की बेटी ने म्हने पन्नई दे तो ठीक नी तो मूं नगर उलट- पुलट कर दूँगा। राजा झट बोल्यो के म्हारी नगरी साड़ा तीन दन में सोना की वई जाएगा तो मैं थने म्हारी बेटी पन्नई दूंगा। राजा बोल्या- है यो कोई अवतारी। कई गदो असो थोड़ी बोली सके। तीन दन में आखी नगरी सोना की वईगी। राजा देखी ने कुमार ने किदो, के कारे यो गदो कईं कइरियो? तो कुमार बोल्यो के होकम मूं अणी ज दुख ती अठे जई रियो थो। राजा ए कुमार ली किदो-वा ठीक है। मैं म्हारी बेटी को व्याव अणी ती करवा ने राजी हूँ। मैं व्याव वाते सब समान थारा अठेती पोंचई रियो हूँ। सक्कर, तेल, गोर, मरच, मसाला, गऊँ, मेदी ने पीठी। ने थें व्याव की त्यारी करो। गाम ने नोतो ने कुंवासियाँ ने बुलाओ ने वरात लई ने म्हारा अठे अई जाओ। मैं म्हारी बेटी ने थांका गदा ती पन्नई दूँगा। गाम वारा ए हुण्यो तो वी वातां करवा लागा, के राजा ने कईं हुजयो, बाईसा ने वणी कुमार का गदा ती पन्नई रिया। राजा का दुवारे सेनई बाजी री, बरात दरवाजे अईगी, व्याव वईग्यो, बेटी वदा वईगी। राजा बोल्या- म्हारी बेटी अणी का घरे कस्तर रेगा। राजा ए कुमार बा ने बुलायो ने कीदो के म्हारी बेटी और जमई ने म्हारा घरे मेल

दो। इन दोई म्हारा अठे रेगा। मैं अणाने म्हारो आदो राजपाट दई दुँगा। कुमार यो हुणी ने राजी वईग्यो। के हऊ वियो, म्हारा ती इको फंद छूट्यो। यो दो काले और कई मांगतो तो मूं कठे ती लातो। राजा ए एक कमरो वणी गदा ने दई दिदो ने वठे विने बंदई दीदो। ने बेटी ने घर में लइग्या। बेटी अपणा कमरा में गई ने रोबा लागी। रोता-रोता रात पड़ीगी। रात बारा बजे बाद गदो अपणी खोरी उतार देतो ने मनख वइ जातो। वणे राते अपणी लुगई की रोवा की आवाज हुणी तो उ वणी का कमरा में ग्यो, ने पुछवा लागो, कंवरी आप क्यों रोई रिया हो? तो कंवरी बोली- आप कुण हो? मूं तो राजा इन्दर को बेटा हूँ। मूं म्हारा बाप का हराप ती गदो वइग्यो हुँ। दन भर तो मूं गदा का वेस में रूगा ने राते बारा बजे बाद मूं आदमी को भेस में मूं आपका हांते रूगा। आप अथे भोजन वणाओ, अपणे दोई खावा। राजा की बेटी ए रसोई वणई दोई जणा ए खादी पीदी अतरे चार वजीगी। वणा इन्दर का बेटा ए पाछो गदा को चोगो पेरी लिदो। अभे अस्तर करता-करता छे: मईना वईग्या। राजा की बेटी को गरभ रइग्यो। वणा की माँ देख्यो के बेटी तो गरभवती वईगी। अणी कने कुण आवे, इकी अबे नगे राखणी पड़ेगा। राणीसा ए अपणी दास्यां ने किदो अणी को ध्यान राखजो, अठे अणी कने कुण आवे? दास्या गोखड़ा में जई ने बइगी ने वणी में ती वी झांकी ने देखी री। दास्या ए वणी गदा ने अपणी खोरी (योगो) उतारता थका देख्यो। तो वणा ने उ राजा का कंवर हरको रूपारो राजकुमार नग आया। वी राजकुमार बाईसा का कमरा में ग्या। वी दोई हऊ हऊ वातां करे ने खुब परसन वइ रिया। वणा दास्यां ए जई ने राणीसा ने कीदो के राणीसा, बाईसा ने जमईसा दोई घणा हऊ रे है। जमईसा सो घणा रूपारा है। राणीसा बोल्या थांए कई देख्यो? म्हाए देख्यो के राते बारा बजे गदा ए अपणी खोर उतारी ने मेली दीदी। ने राजा का कंवर वइग्या। आप अभे होच मती करो। वी दोई जणा तो घणा हऊ रइ रिया है। राणीसा ए दास्यां ने किदो के थें असो करजो के वी यो चोगो उतारे जदी थे वणी ने तोकी ने लियावजो। तो असो करो के थें दने अई जाजो, ने घर में दबई ने बई जाजो। वी राते खोर उतारे ने वी बाईसा कने जाय तो थे झट खोर लईने म्हने दइ दीजो। राणीसा चारा को ओगारें भेरों करी ने बैठा था। के दास्यां कदी चोगो लईने आवे ने कदी वणी ने बास। गदा ए राते बारा बजे चोगो उतार्यो ने बाईसा कने ग्या। तो दास्यां ए झट चोगो तोक्यो ने राणीसा ने लइ जइ ने दई दिदो। राणीसा ए चोगो लईने वणी ओगारा पे मेल दीदो ने झट वणी में व्हादी लगई दीदी। ने बारी दीदो। जेसे इ चोगो बर्यो तो जमईसा बाईसा ने कई रिया के मूं वरी रियो? मूं बरी रियो? जमईसा ए बाईसा ने कीदो अपणे अठे ती लिकरा ने उज्जण नगरी में जई ने रांगा। दोई जणा वणी गॉम ती लिकरीग्या। वणा का जावा का बाद वणा का हिस्सा को मेल थो उ पड़वा लागो, आँखों मेल पडिग्यो। ऐरे मेरे का मेल, मकान, शपरा सब पडीग्या। खण्डेर वईग्यो। धरती पे मेल सब उंदा चित्ता वेवा लागा। बठे कई नगे नी आवे, सब जगा एक हरकी वइगी। यो हगरो देखी ने राजा बोल्या के म्हारा जमईसा तो कोई अवतारी था। जो म्हारी बेटी ने लईने अठे ती चलया ग्या। बाईसा चालता-चालता उज्जण पोंची ग्या। सिपरा कनारे कुमार गारो खोदी-खोदी ने लई जइ रियो थो। तो वठे नरो मोटो खाड़ो वइग्यो। तो वी बाईसा वणी खाड़ा में जई ने बइग्या। हवेरे कुमार दो गदा लइने गारो लेवा ने आयो वणे आता इ वणा बाईसा ने कीदो-बेन थें अठे कई करी रिया? रात भर का ठण्डा मरता बोगा। म्हारा घरे चालो। कुमार ए एक गदा में तो गारो भरयो ने एक गदा पे वणा बेन ने बैठाया। आप तो म्हारे धरम की बेन हो। कुमार वांजो थो। बी दोई जणा घर में रोज लड़ता के मूं तो अभे नातरो लियऊँगा तू म्हने रोज लड़े। अतरा में कुमार गदड़ा लईने घरे अइग्यो। वणी का हांते तो बाईसा था। तो लुगई बोली के अरे लाकड़ा पड्या आज तो तू नातरो लईने अईज ग्यो। तो कुमार बोल्यो के अरे रांड, तू थारा मुंडे लगाम दे। या तो म्हारे धरम की बेन है। लुगई हरमईगी, ने केवा लागी बेन म्हने माफ कर दीजो, मैं आपने ओरखी कोनी। झणी बेन के वा कुमारण पगे लागी। अभे वणा ने रेता रेता दो चार दन वईग्या। कुमार ने कुमारण तो भोरा था। पण वा कुमार की बाई हमजणी थी। वणे-वणी बईसा ने पुछयो- का बेटी थे गरभवती हो कई? म्हारा बेटा न वऊ तो घणा हुदा है विचारा। वणा के कई लाछण नी लागी जाय। बाईसा बोल्या मासा, आप चिंता मती करो, म्हारे तो म्हारा पति को गरभ है। बाईसा का रेवा ती वणी कुमार का घरे नवे नन्द का वासा वईग्या। एक घर में निमाड़ो पाकी रियो थो। तो वी बरतन भी ताम्बा पीत्तल का वईग्या। ऐरे मेरे आस-पड़ोस के भी आनन्द का ठाठ वइग्या। आस-पड़ोस भी वणी कुमार ने केवा लागीग्या के इ बाईसा आया जदी ती म्हाके घर में आनन्द ही आनन्द वईग्या। बाईसा ने कुमार की लुगई हऊ राखती थी। अड़ोस भी केवा लागीग्या के अणा की बेन तो म्हाकी भी बेन

है। बाईसा के दन पुरा विया ने नम्में मईने बेटो वियो। कुमार ए जोतीसी ती नाम छणायो। तो वणी को नाम राजा विक्रम आयो है। हऊ तरे सी वणा को दूरज, जलमा पूजयो तो आरवी उज्जण का लोग ने बुलाया। कां कि वणा के कोई ओलाद नी थी। आखी नगरी का लोग बच्चा वाले गेणा गांठा कपड़ा लत्ता लई ने आया।

विक्रम थोड़ा मोटा विया तो वणा ने स्कुल मेलवा लागा। वी स्कुल ती नी आवे अतरे कोई रोटी नी खाता। वणा का आवा का बाद सब हांते रोटी खाता। एक दाण नावी ए उज्जण नगरी में इंडी पीटई की एक बरस में एक दाण एक घर को एक मनख राजा वणेगा अबे जो भी राजा वणवा ने जातो वणा ने जोगण्या खई जाती। एक दन राजा विक्रम ए कीदो- नाना-नानी, मामा-मामी आप सब क्यऊँ रोई रिया। तो नानी मा ए किदो- के भई थारा मामाजी के राजा वणवा को टेम आयो है। तो विक्रम बोल्यो हऊ बात है। नी बेटा राजा वणनो हऊ कोनी, जो राजा वणे वणा ने जोगण्या खई जाय, वी वणा ने जीवतो नी खो दे। राजा विक्रम बोल्या आखा गांम वारा ने भेरा करो, जो म्हारी बात ने मानेगा, तो राजा अमर रेगा। गॉम बारा ने भेरा कर्‌या। वणा ए राजा विक्रम ने किदो- के एक माणी उड़द को आटो पीसाजों, ने वणी को वणा जो पोला पुतलो, माथा का ऊपर कांणो राखजो, वणी में भरजो देसी हेंत। ने राजगादी पे वणी पुतला ने बैठावजो। गुलाब जामू, जलेबी, लड्डू, कलाकंद, चक्की, घेवर, फींणी, रबड़ी, मालफा, कड़ी सब तरे का थाल भरी ने राजा का ऐरे मेरे मेल दो, ने जतरे भी तरे का फल-फूल वे वणी का थल भरी ने मेल दो। गोस भूंजी ने परातां भरी-भरी ने मेल दो, दारू का ढोल भरी-भरी ने मेल दो, हांज की बखत जोगण्या आवेगा, तो इस सब चीजां खावेगा। जोगण्या आई ने हगरा का पेला दारू पीदो, फेर मांस खादो, चणा भुंगड़ा, सेव परमल, फल-फूल, मिठाईयाँ सब खईने वी तो मगन वइगी। वणा का पेट भरईग्या। ने बोली के ओ हो अणा राजा को घर तो घणो हऊ। अणा का घरे तो खुब पकवान है, खवाय कोनी। फेर वणा ए राजा ने देखयो- तो केवा लागी के अभे राजा ने चाखी ने देखा, के राजा कसोक मीठो है। वी सब राजा ने खावा ने गई, ने राजा के बरको भइयो तो हेत लिकर्‌यो तो केवालागी, अरे यो तो घणो मीठो राजा है। अभे अठे जो भी हुणतो वे तो हुणजो, मैं तो आपका वचन में बंदी जावांगा। आप जो भी कोगा उ म्हे सब करांगा। राजा विक्रम तलवार लईने आड़ में उबा था। वी बारे लिकर्‌या ने जोगण्या की चोटी पकड़ी ने कीदो के बंदो रांडा वचन में। हाँ होकम बंदा आपका वचन में। राजा विक्रम बोल्या अठे जतरा भी सीसा पड्‌या है, थे हगरी अणा सीसा में उतरी जाओ। हगरी जोगण्या सीसा में उतरीगी। तो विक्रम ए हगरा सीसा जमीन में गड़बई दीदा। बारा बरस में एक दाण सिंगत का साल में वणा ने छूट है। गाँम का लोग बोल्या भाणेजलाल विक्रम, जोगण्याँ ने आप ए वस में करी है। आप अणी ती अणी राजगादी का हकदार हो। आप अणी राजगादी पे बैठोगा, मैं नी बैठूँगा।

राजा विक्रम ने उज्जण की राजगादी पे बैठई दीदा, ने वी राजा विक्रमादित्य वइग्या।

कुमार बा के भी वांजा की वांज खुलीगी। वणा का अठे भी बेटो वियो। बामण बा ती वणी को नाम पुछाड्‌यो तो वणी को नाम आयो बटवर वास्या। आठ- दस साल को बेटो वियो ने कुमार बा की माँ मरीग्या। पाँच-दस बरस विया ने कुमार बा भी मरीग्या। तो राजा विक्रम ए कीदो मामीसां आप तो राज में म्हाका हांते जा रो। तो मामीसा बोल्या के नी भाणेजलाल मूं तो आपका हांते नी रई सकुं। मूं अठे कस्तर रूंगा। म्हने दोस लागेगा। मूं भाणेज का घर को कस्तर खऊँगा। मामी राजमेल में नी रिया ने बणा का घरे चलया ग्या। जंगल में जाती ने लकड्‌याँ लईने बेंचती ने दोई माँ-बेटा को पेट भर लेती। माँ रोज वणी बेटा ने कोड्‌या रमवा ने दई जाती। उ छोर छोरी ने एक-एक कोड़ी रोज देतो ने कोडी देगा। वी रोज आई जाता। तो वणा छोरा -छोरी के नरी कोड्‌या भेरी बई जाती, तो वी वेंचा देता। एक दन बटवर बास्या रोयो के बाई मूं तो थारा हांते अऊँगा माँ ए घणो हमजायो पण उ नी मान्यो, ने माँ का हांते वईग्यो। तो जंगल में एक बड़ो भारी तराव थो। माँ ए वीने तराव की पार पे बैठाड़ी दीदो। तो भगवान का घर ती परियाँ बठे न्हावा ने आई। वी वणी तराव में हपड़ी री थी। तो वी वणी छोरा ने देखी ने घबरईगी। के ओ हो यो कुण छोरो है? वी तो कपड़ा ने गेणा गांठा पेरी ने उड़ीगी। वणी में ती एक को झांझरियो पठे ज रईग्यो। तो बटवट बास्या ने लादो। तो एक लकड़ी में वणी झांझर ने पोई लीदो, ने वणी लकड़ी ने घुमई रियो। तो तराव का पार ती वणजारा की बारद अई री थी। तो वणजारा ए कीदो के नाना यो झांझर म्हने

दई दे। बटवर वास्या बोल्यो- लो लई लो। ला दे मूं थने इका हो (सौ) रूपया दूंगा। कई यो हो रूपया को ज है, तो उ बोल्यो- हजार दई दूँगा। तो कई हजार रूपया को ज है? तो लाख लई लिजे। तो कई लाख रूपया को ज हैं? तो वणजारो बोल्यो- के हो यो कोई जाणकार। बटवर बास्या ए पुछयो, वणजारा तू कठे जाएगा? वणजारा ए कीदो, मूं चिन्नी देस जऊँगा। थारा चीन्नी देस का राजा ने 'जै राम-रायी' में यो झांझर्‌यो दई दीजे। वणजारो चीन्नी देस ग्यो, ने राजा ने जई ने कीदो के, होकम मालवा देस का बटवर बास्या ए राम-रायी में एक झांझरियो दई मेल्यो है। वणी राजा ए कीदो- के कारे वणजारा तू पाछो कदी जाएगा? तू जदी भी जाय तो म्हारा कने ती कई ने कई निसाणी लई जाये। वणा ए भी म्हारा वाते अतरो जबरो झांझर्‌यो मेल्यो है। नी तो म्हारी इज्जत जाएगा। चीन्नी राजा एक वीने घोड़ा की तोबरां में हिरा- जवारात ने मोरां भरी ने दीदी। और कीदो के मालवा देस का बटवर बास्या ने म्हारी जै राम-रामी में दीजें। वणजारो अई ने तराव का कनारे वणी बटवर बास्या ने ढुंढे। तो उ नी मिल्यो। पुछतो-पुछतो वणजारो गॉम में पोंचीग्यो। गॉम में जइने पुछयो के कारे भई, बटवर बास्या कठे रे? गॉम की लुगायाँ दाँत काड़ती जाय के गॉम के याँ बटवर बास्या कोई नी है। यॉ तो बटवद्‌यो है बटवर्‌यो। तों कठे है भई ऊ? उ छोरा मेरे कोड्‌याँ खेलतो वेगा। वठे जई ने वण वणजारा ए देख्यो ने वीने अवाज लगई। ओ बटवर बास्या उ झट उठी ने अईग्यो। ने केना लागो थे अइग्या वणजारा? बटवर बास्या कने चड्‌डी भी पेरवा ने नी थी। बिचारो गरीब थो। बणजारा ऐ वीने कीदो- के मूं चीन्नी देस ग्यो थो, तो वठे का राजा तो वठे था राजा ऐ आप वाते 'जै राम-रामी' में घोड़ा की तोबरा भेजी है। वणे तो हाथ में भी नी लीए। ने कीदो के कारे वणजारा, अभे तू कठे जाएगा? वणजारो बोल्यो- यूं तो अभी कुच भुज जाऊंगा। तो असो करजे कि के इ तोबरां वठे का राजा ने 'जै राम-रामी' में दई दीजे। वणजारा ए कुच भुच जई ने वी तोबरा वठे का राजा ने दई दीदी। तो कुछ भुज वारा राजा ए 'सीस री पाग हिरा जवारात की जड़ी थकी, ने दस अंगोठी मालव देस का बटवर वास्या ने 'जै राम-रामी' में दीजे। वणजारो पाछो मालवा देस आयो ने हीरा जवारात ती जड़ी पाग ने दस अंगोठ्‌या लई ने देवा लागो तो बटवर बास्या बोल्यो- के तू म्हारी आड़ी ती इसब राखी ले। ने तू कणी भी देस का चारी आड़ी कठे भी जाएगा, ने कठे भी करेगा, तो थने वसूली कर कठे भी नी लागेगा। यों हुणी ने वणजारो फिरी वइग्यों।

राजा विक्रम बटवर बास्या ने ढुंठी ने राज मेल में लाया। वीकी हऊ खिलई-पीलई करी ने हऊ ध्यान राख्यो। के यो थोड़ो कामजोर हैं। अणी ती इने काठो करनो। थोड़ा जाडो वई जाएगा। तो इको व्याव कर दांगा राज विक्रम एक बटवर बास्या ने किदो के जो एक झांझर थाऐ चीन्नी देस पोंचायो तो असो एक और झांझर चीन्नी देस पोंचई दांगा तो विने सान्ती वर जाएगा के इ म्हारा हांते व्याव कर लेगा। वणी ज तराव की पार वे बटवर बास्या ग्यो। तो वठे परियाँ न्हई री यो। बटवर परियाँ ती बोलयो- के पेला थांको एक झांझरियो पडिग्यो थे। तो मैं वीने चीन्नी देस पोंचई दीदो था। तो चीन्नी देस की लड़की ए प्रण करयो थो के जणे यो झांझर्‌यो पोंचायो वणी का हांते ज व्याव करूँ? तो म्हने थें एक झांझर्‌यो और दो तो वीने बठे पोंचऊ ने मूं वणी का हांते व्याव करूँ। तो वणा परियाँ ए एक झांझर्‌यो और लिकारी ने राजा विक्रम ने दई दीदां।

राजा विक्रम कपड़ा लत्ता ने झांझरियों लइने चीन्नी देस ग्या। राजा का मेल में पोचया। वठे का राजा एक विक्रम राजा को आब आदर करयों। राजा विक्रम ए वणा ने कपड़ा ने उ झांझर्‌यो दई दीदो। ऐ कीदो के अथे व्याव तो जरूर करांगा पणे थोडा दन बाद करांगा। चीन्नी राजा बोल्या- कदी करोगा? राजा विक्रम बोल्या-साल भर बाद करांगा क्योकि व्याव कर दांगा तो लोग बाग केगा के अतरी कई जल्दी थी। कई ने कई वियो वेगा। अणी वाते अपणे कोई अतावर नी है। आप चिंता मती करो। राजा विक्रम बोल्या-आप यो मत हमज जो के इ अतरो जबरो पायजब लाया है तो म्हने भी हरकों देणों पड़ेगा। आपने कई भी नी करनो है। म्हाके कई भी नी चइये। आप लोगा अतरा बराती लइने अइ जावांगा। म्हाके तो बस छोटी चईये। इ सब वातां करी ने राजा विक्रम मालव देस अइग्य। अठे अई ने वणाए बटवर बास्या ने हमजाणों चालू कर्‌यो। क्योंकि उ तो छोर छोरी हरको बणा का हांते खेलनो वणी में अक्कल तो थी कोनी, धरती पे हुई जाणो, नीचे थाली मेली ने रोटी खई लेगीं। विक्रम बोल्या- हऊ रेणो, हऊ न्हाणो धोणो, हऊ पाटला पे बैठी ने रोटी तो खाणी। हऊ अदप कायदो वणी बटवर बास्या ने हिकायो। थोड़ो मोटो वियो तो उ हमजदार वईग्यो। फेर बटवर

बास्या की माँ ने लाया। वी तो जंगल में लकड़ी वेंची ने अपणों पेट भरी रिया था। वणा ने लाया ने हऊ अदप कायदा हिकाया, बोलता चालता हिकाया। आप कदी चोका में जई ने रोटी मती लावजो, नीचे बैठी ने रोटी मती खाजो, नीचे मती बैठजों। आप तो होकम करजो आपकी बऊवा आपने जठे बैठोगा वठे हगरी चीज लइने देगा। राजा विक्रम ऐ दोई माँ वेटा ने हऊ शिक्षा अपणा हरका करया। ने फेर व्याव की त्यारी में लागी ग्या।

राजा विक्रम पाछा चीन्नी देस ग्या। कीदो- अभे लगन लिकराओ। व्याव करांगा। लगन लिकाया। व्याव की तारीक पक्की करी। ने लगन लईने पाछा अपणा देस अइग्या। बटवर बास्या ने वाने बैठाया। मेंदी, पीठी लगाया, मंगल गीत गाया, लाडा को सेरो सजायो घोडी चढ्या ने बरात चीन्नी देस खन्ना बी। चीन्नी देस बरात पोंची, बरात को सुवागत करयो, मंगलाचार विया। बटवर बास्या ने राजा की बेटी को व्याव बईग्यो। चीन्नी देस का राज ए राजा विक्रम ने कीदो के म्हाके कोई दूसरी ओलाद नी है। बस या एक इज बेटी हैं। तो आप ऐसो करो के अणा जमइसन नें, ने बाईसा ने अठे ज मेली जाओ। तो राजा विक्रम ऐ होचयों के अणा के कोई घर बार तो है कोनी। अणीं राजा की बेटी ने कठे तक राज में राखांगा। तो काम तो घणो हऊ है। बटवर बास्या ने राजा की बेटी ने बठे ज छोडी ने सब मालवा देस अईग्या।

बटवर बास्या की माँ सब रेन-सेन, तौर- तरीका, रीति-रिवाज, खाणो पीनो, चालनो सब ठीकाणा हरको करवा लागी ग्या। तो राजा विक्रम ऐ बणा की चीन्नी देस जावा की त्यारी कर दीदी। बेटी का हारा में (सासरा म) गॉम वारा वाते कपड़ा, साड़िया, नारेल सामान लई ने बटवर बास्या की माँ ने लइने राजा विक्रम चीन्नी देस ग्या। गॉम का लोग बटवर वास्या की माँ से मिलवा ने आया। तो लुगाया ने साड़ी ब्लाऊज, आदमियाँ ने नारेल, छोर- छोरी ने कपड़ा जसा लोग आवता असी चीजां देता ग्या। गाँव का लोग बोल्या- राजा रजवाड़ा का ठीकाणा दार घणा हऊ मनख हैं।

राजा विक्रम बटवर बास्या की माँ ने वठे ज छोडी ने वी उज्जण अईग्या। बटवर वास्या चीन्नी देस को राज करवा लागो। और राजा विक्रम अपणो उज्जण को राज हमारी ने राज करवा लागीग्या।

भावार्थ

एक राजा भगोर थे। उनकी एक लड़की थी। गाँव की सभी लड़कियाँ उसके साथ खेलने के लिये आई। उन्होंने माता रानी से कहा- हम बाइसा को ले जायें। तब उन्होंने कहा- बाईसा के पिताजी से पूछना पड़ेगा। तब सखियाँ बोली- पिताजी से क्या पूछना? आप बाईसा का विवाह करके ससुराल पहुँचा दोगे तो फिर क्या खेलेंगे? माताजी ने कहा- अच्छा जाओ, जल्दी आना। गाँव की सब लड़कियाँ इकट्ठी होकर खेलने लगी, एकदम काली घटा छाई और मेघ बरसने लगे। राजा की लड़की ने राजा इन्द्र से प्रार्थना की और कहा कि आप अभी मत आना हमारा खेल पूरा हो जाये, तब आना। दोपहर तक उनका खेल पूरा हो गया। तब राजा की लड़की घर आकर सो गई। राजा इन्द्र ने घर आकर उनका दरवाजा खटखटाया। लड़की बोली- आप कौन हो? मैं राजा इन्द्र हूँ। आपने कहा था न, कि हमारा खेल पूरा हो जाये तब आना। तो मैं आ गया। आपने कहा था कि आना, ऐसा थोड़ी कहा कि बरसना। मैंने तो आपके वचन का पालन किया। राजा की लड़की ने कहा- मैं दरवाजा नहीं खोलूँगी, मैं कुँवारी हूँ। राजा इन्द्र ने कहा- दरवाजा तो आपको खोलना ही पड़ेगा। आप कुँवारी हैं तो मुझसे गंधर्व विवाह कर लो। लड़की ने कहा- गंधर्व विवाह करेंगे तो लोग क्या कहेंगे? राजा इन्द्र बोले- आप मुझसे गंधर्व विवाह नहीं करोगी तो मैं सारी नगरी को उलट-पुलट करके रख दूँगा। विवाह कर लोगी तो गाँव के तथा परिवार के लोग कुछ भी नहीं कहेंगे। किसी के मन में भी ऐसा विचार नहीं आएगा कि इसने यह क्या किया। राजा की लड़की ने दरवाजा खोला और उन दोनों ने गंधर्व विवाह कर लिया। अच्छी तरह से दोनों रहने लगे। लड़की गर्भवती हुई। माँ ने देखा तो उन्हें शंका हुई। उन्होंने राजा से कहा- कि अपनी बेटी के लिये कोई वर ढूंढकर उसका विवाह करा दो। राजा ने लड़का ढूँढना शुरू कर दिया, पर उन्हें कोई लड़का नहीं मिला। राजा ने ज्योतिषी से पूछा? ज्योतिषी ने कहा- मुझे तो ऐसा लगता है कि राजकुमारी का लग्न हो गया। यह सुनकर राजा और रानी घबराने लगे, परेशान हो गए। उन्होंने खाना-पीना छोड़ दिया। तब लड़की ने राजा से पूछा कि माँ-पिताजी आप दोनों घबराए हुए क्यों है? राजा ने कहा- हमें तो आपके विवाह की चिंता है। हमें कोई

लड़का ही नजर नहीं आ रहा है। इसलिये हमें खाना-पीना अच्छा नहीं लग रहा है। तब लड़की ने कहा- मेरा विवाह तो हो गया। राजा इन्द्र के साथ। आप लोग घबराओ नहीं। राजा-रानी यह सुनकर बहुत खुश हो गए और कहा- हमें राजा इन्द्र जैसा दामाद मिल गया। विवाह करते तो आधा राज-पाट देना पड़ता। बिना खर्च से बहुत अच्छे दामाद मिल गये। लड़की के गर्भ के नौ महीने पूरे हुए और उसने एक पुत्र को जन्म दिया। वह तो राजा के राजकुमार जैसा पल-पल बढ़ने लगा। गाँव के बच्चों को इकट्ठा करके खेल भी ऐसे खेलता कि किसी को कामदार, किसी को मंत्री, किसी को नौकर बनाता और वह खुद राजा बनता और अपनी राजसभा बनाकर खेलता। बच्चे खेल कर अपने घर जाकर अपने-अपने माता-पिता को कहते कि वह राजा का कुंवर हमारे साथ खेलता है, तो मुझे कामदार बनाता है, दूसरे को मंत्री बनाता है और बाकी को नौकर बनाता है और खुद राजा बनता हैं। गाँव की औरतें इकट्ठी होकर बात करती, यह तो बाईसा का कुंवर है, पर बाईसा का विवाह कहाँ हुआ? और उसके पिता का तो पता ही नहीं? सब औरतों ने अपने-अपने बच्चों को कहा- आज तुम सब जाकर यह कहना कि सब अपने-अपने पिता का नाम बताएंगे, वही राजा बनेगा। सब बच्चों ने तो अपने पिता का नाम बता दिया। पर राजा के लड़के ने अपने पिता का नाम नहीं बताया। लड़के ने कहा- आज अपनी कचहरी की छुट्टी। मैं कल मेरे पिताजी का नाम पूछकर आऊँगा, तब सब खेलेंगे। घर जाकर लड़के ने अपनी माँ से पूछा? माँ मेरे पिताजी का नाम क्या है? माँ ने कहा- तेरे पिताजी का नाम मैं नहीं बताऊँगी। वह रात को बारह बजे आएंगे तो तू उनका नाम पूछ लेना और उनको देख भी लेना। वह इन्द्र लोक में से मृत्युलोक में आएंगे? रात के बारह बजे तक तो लड़का सो जाता। सुबह उठकर वह पूछने लगा कि मेरे पिताजी? तो माँ ने कहा- बेटा तूझे ही उनका नाम पूछना पड़ेगा। मैं नहीं बता सकती। ऐसा करते-करते दो-तीन दिन बीत गये। लड़के को रोज नींद आ जाती। गाँव में औरतें बात करती कि लड़का आज भी नाम पूछकर नहीं आया। उसको तो पिता का नाम ही नहीं मालूम। औरतें खुश हो गई कि वह तो आया ही नहीं। अब अपने बच्चे आराम से खेलेंगे। फिर बाईसा को एक तरकीब सूझी। उन्होंने अपने लड़के की अँगुली में चीरा लगाया और उसमें मिर्ची लगा दी और उसे कहा- चुपचाप सोए रहना। तुझे जलन के कारण नींद नहीं आएगी। रात को तेरे पिताजी आएंगे, तो उनसे उनका नाम पूछ लेना। मुझसे मत बोलना। हाथ जलने के कारण उसे नींद नहीं आई, पर उसके पिताजी के आने का समय हुआ और उसे नींद आ गई। पिताजी आए, माँ ने भोजन बनाया, दोनों ने भोजन किया। इतने में सुबह के चार बज गए तो उनके जाने का समय हो गया। माँ ने उसे धीरे से नोचकर उठाया और कहा- देख वह तेरे पिताजी जा रहे हैं। राजा इन्द्र का विमान आ गया। वह उसमें बैठ गए, उनका विमान उड़ने लगा तो लड़के ने उसे दौड़कर पकड़ लिया और वह वैकुण्ठपुरी पहुँच गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि इन्द्र की अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं। नृत्य करते-करते वह उस लड़के के सामने नृत्य करने लगी। अप्सराएँ मन में विचार करने लगी कि आज यह इतना रूपवान कौन है? राजा अप्सराओं को देखकर बोले कि रोज तो यह मुझे देखकर नृत्य करती है, पर आज तो ये पीछे देख-देखकर नृत्य कर रही हैं। राजा ने पीछे मुड़कर देखा, तो उनके पीछे उनका पुत्र ही खड़ा था। उन्होंने उसे देखा और कहा- अरे! तू यहाँ आ गया। अरे साले! तू गधा क्यों नहीं बन गया। इतना कहा और उसे एक लात मार दी। लड़का इन्द्रपुरी से पृथ्वी पर गिरा और गिरते ही वह गधा बन गया और मर गया। उसने एक गधी के गर्भ से जन्म लिया। कुम्हार के यहाँ पलकर बड़ा हुआ। उसने अपने मालिक से कहा- इस नगर के राजा अपनी लड़की का विवाह मेरे साथ कर दे तो ठीक, वर्ना यह नगर में उलट-पुलट कर दूँगा। ये बात सुनकर कुम्हार घबरा गया। उसे लगा मेरे गधे के साथ राजा की लड़की का विवाह कैसे हो सकता है? असम्भव! राजा को अगर इसका पता चल जाएगा तो वह मुझे माफ नहीं करेंगे और कहेंगे कि मेरी लड़की तेरे गधे के लिये क्यों? कुम्हार का गधा दिन में तीन बार बोलता और बार-बार यही बात दोहराता कि राजा अपनी लड़की का विवाह मेरे साथ कर देते हैं तो ठीक वर्ना सारी नगरी उलट-पुलट करके रख दूँगा। कुम्हार ने अपनी पत्नी से कहा- अपना सारा सामान भरकर यहाँ से चलो। गधे पर अपना सारा सामान लाद दिया और कुम्हार-कुम्हारिन वहाँ से निकल पड़े। गाँव के बाहर निकले ही थे कि चौकीदार ने उनसे पूछा- तुम पर ऐसा कौन सा दुःख आ पड़ा जो यहाँ से जा रहे हो। मैं तुम्हें यहाँ से नहीं जाने दूँगा। कुम्हार बोला -राजा मुझ पर नाराज होंगे। तुमसे राजा ने कुछ कहा तो नहीं? चौकीदार ने राजा से

कहा- राजन् आज कुम्हार गाँव छोड़कर जा रहा है। राजा ने कहा- क्यों जा रहा है? उसे राजमहल में बुलाकर लाओ? कुम्हार महल में गया, राजा ने उससे पूछा- तू गाँव छोड़कर क्यों जाना चाहता है? कुम्हार बोला- राजन् आज शाम आप मेरे घर पर भोजन करने पधारना। अरे! इतनी छोटी सी बात पर तू गाँव छोड़कर जा रहा था। मैं तेरे यहाँ आज शाम को ही आ जाऊँगा और रात्रि विश्राम भी वहीं पर करूँगा। राजा शाम के समय घूमते हुए कुम्हार के यहाँ पहुँचे। कुम्हार ने उनका अच्छा आदर-सत्कार किया, भोजन करवाया। बाहर खाट बिछा दी। गद्दे तो थे नहीं, उसने गधे की पीठ की बोझा ढोने की गुन्ती खाट पर बिछा दी और राजा से कहा- राजन् मेरे यहाँ गादी नहीं है, मैं तो इसी पर सोता हूँ। राजा ने कहा- कोई बात नहीं, मैं भी इसी पर सो जाऊँगा। राजा सो गए। पर उन्हें नरेटी की रस्सी चुभ रही थी, इस कारण उन्हें नींद नहीं आई। कुम्हार उनसे बात करता ही रहा ताकि राजा को नींद न आए। रात को बारह बजे गधा बोलेगा तो इन्हें सुनाना पड़ेगा। रात को बारह बजने वाले थे कि कुम्हार आँख बंद करके सो गया। बारह बजे और गधा बोला- अगर कोई भी सुनता हो तो सुन, इस गाँव के राजा की लड़की से मेरा विवाह करा दें तो ठीक, वर्ना मैं इस नगर को तहस-नहस कर दूँगा। यह बात राजा सुन रहा था। राजा जल्दी से उठे और बोले- मेरी नगरी साढ़े तीन दिन में सोने की हो जाएगी तो मैं मेरी लड़की का विवाह तुझसे कर दूँगा? राजा सोचने लगे कि यह कोई अवतारी है क्या? क्या गधा भी इस प्रकार बोल सकता है? साढ़े तीन दिन में सारी नगरी सोने की हो गई। राजा ने कुम्हार से कहा- क्यों रे ये गधा क्या बोल रहा है? कुम्हार बोला- राजन् मैं इस दु:ख के कारण ही यहाँ से जा रहा था? राजा ने कुम्हार से कहा- अच्छा ठीक है। मैं मेरी लड़की का विवाह इससे करने को तैयार हूँ। मैं विवाह के लिये घी, शक्कर, तेल, गुड़, मिर्च-मसाले, गेहूँ, मेहंदी, पीठी (उबटन) सारा सामान तुम्हारे यहाँ पहुँचा रहा हूँ और तुम भी विवाह की तैयारी करो। सारे गाँव को निमंत्रण भेजो, कुंवासियों को बुलाओ और बारात लेकर मेरे यहाँ आ आओ। मैं मेरी लड़की का विवाह तेरे गधे से कर दूँगा। गाँव के लोगों को मालूम पड़ा, तो कहने लगे राजा को क्या हो गया? राजकुमारी का विवाह इस कुम्हार के गधे से कर रहे है। राजा के द्वार पर शहनाई बजने लगी। बारात द्वार पर आ गई। विवाह हुआ, लड़की की विदाई हुई। वह अपने घर पहुँची तो राजा ने कहा- हमारी बेटी-वहाँ पर कैसे रहेगी? उन्होंने कुम्हार को बुलवाया और कहा- हमारी बेटी और दामाद जी को हमारे यहाँ भेज दो। ये दोनों हमारे यहाँ रहेंगे। मैं इनको अपना आधा राज-पाट दे दूँगा। कुम्हार यह सुनकर बहुत खुश हो गया, अच्छा हुआ इससे पीछा तो छूटा। ये गधा पता नहीं कल और क्या माँगता? तो मैं कहाँ से लाता। कुम्हार ने राजकुमारी और गधे को महल में पहुँचा दिया। राजा ने एक कमरा उस गधे को दे दिया और गधा वहाँ पर बंधवा दिया। अपनी लड़की को अंदर ले गए। लड़की अपने कमरे में गई और रोने लगी। रोते-रोते रात हो गई। रात को बारह बजे के बाद गधा अपना गधे का चोला उतारकर मनुष्य रूप धारण कर लेता है। उसने रात को अपनी पत्नी की रोने की आवाज सुनी। वह उसके कमरे में गया और कहा- राजकुमारी आप क्यों रो रही हो? राजकुमारी ने कहा- आप कौन हैं? मैं राजा इन्द्र का पुत्र हूँ, और मेरे पिता के श्राप के कारण गधा हो गया हूँ। दिन भर गधे के वेश में रहूँगा। और रात के बारह बजे के बाद मनुष्य रूप में आपके साथ रहूँगा। आप भोजन बनाओ। हम दोनों भोजन करेंगे। राजकुमारी ने भोजन बनाया दोनों ने खाया-पिया इतने में चार बज गये। उसने वापस अपना मनुष्य रूप का चोला उतारकर गधे का चोला पहन लिया। ऐसा करते-करते छः माह बीत गए। और राजा की लड़की गर्भवती हो गई। उनकी माता ने देखा तो कहने लगी- हमारी बेटी तो गर्भवती हो गई? इनके पास कौन आता-जाता है? इसका ध्यान रखना पड़ेगा। रानी ने अपनी दासियों से कहा- यहाँ कौन आता-जाता है, इसका तुम ध्यान रखना। दासियाँ छोटे-छोटे गोखड़े (झरोखे) में जाकर बैठ गई और उसमें से वह झाँकने लगी। दासियों ने गधे को चोला उतारते हुए देखा। उनको बहुत ही रूपवान, सुन्दर राजा का राजकुमार दिखाई दिया। वह राजकुमार बाईसा के कमरे की ओर गए। उन्होंने देखा। वह दोनों अच्छी बातें कर रहे हैं, बहुत प्रसन्न हैं। दासियों ने रानी से जाकर कहा कि रानी माँ बाईसा और दामादजी दोनों बहुत अच्छी तरह से रह रहे हैं। दामाद जी तो बहुत ही सुन्दर और रूपवान है। रानी ने कहा- तुमने क्या देखा? हमने देखा कि रात को बारह बजे गधे ने अपना चोला उतारकर रख दिया और राजा के राजकुमार जैसा हो गया और बाईसा के कमरे में चले गये। अब आपको बाईसा की चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है। रानी ने दासियों से

कहा- तुम अब ऐसा करो कि जब वह अपना चोला उतार दे, तो तुम उसे उठाकर ले आना। दासियाँ चुपचाप छिपकर महल में बैठ गई। जैसे ही गधे ने अपना चोला रात को उतारकर रखा और बाईसा के पास गए, दासियों चोला उठाकर ले गई और उन्होंने वह चोला रानी को दे दिया। रानी घास-फूस लेकर बैठी ही थी, कब ये चोला लेकर आए और मैं उसे जलाऊँ। रानी ने उसे जला दिया। जैसे ही रानी ने चोला जलाया तो दामाद जी ने अपनी पत्नी से कहा-मैं जल रहा हूँ। तो उसने कहा-आप और मैं यहाँ से निकलकर उज्जैन नगरी में चलते है, वहाँ पर ही रहेंगे। दोनों उस गाँव से निकल गए। उनके जाने के बाद उनके हिस्से में जो महल आया था, वह सारा महल धरासायी हो गया। आसपास के भी सारे महल, मकान, झोपड़ी सब गिर गए, जैसे सारी पृथ्वी पर भूकंप आ गया हो। सब दूर खण्डहर हो गया। पृथ्वी सारी एक जैसी हो गई। यह सब देखकर राजा ने कहा- मेरे दामादजी कोई अवतारी पुरुष थे, जो हमारी बेटी को लेकर यहाँ से चले गए। दामादजी और बेटी चलते-चलते उज्जैन पहुँच गए। वहाँ क्षिप्रा किनारे एक कुम्हार मिट्टी खोदकर ले जा रहा था। उस जगह बहुत बड़ा गड्ढा हो गया। तो बाईसा उस गड्ढे में जाकर बैठ गए। सुबह कुम्हार दो गधे लेकर मिट्टी लेने गया, वहाँ उन बाईसा को गड्ढे में बैठा देखकर उनसे कहा- बहन आप यहाँ क्यों बैठी हो? रात भर से ठण्ड में ठिठुर गई हो। आप हमारे घर चलो। कुम्हार ने एक गधे में मिट्टी भरी और गधे पर बहन को बिठाया और अपने घर ले गया और कहा कि आप तो मेरी धर्म बहन हैं। कुम्हार को कोई संतान नहीं थी। इसलिये उनमें अक्सर झगड़े होते थे। कुम्हार कहता- मैं दूसरी औरत लाऊँगा? कुम्हार गधे लेकर घर आया तो उसके साथ तो बाईसा थी। पत्नी देखकर बोली- अरे दुष्ट! आज तो तू दूसरी औरत लेकर आ ही गया। कुम्हार बोला- अरी चाण्डाल! तू अपने मुँह पर लगाम दे। यह तो मेरी धर्म की बहन हैं। पत्नी शर्मिंदा हो गई और कहने लगी- बहन मुझे माफ करना, मैं आपको समझ नहीं पाई। उसने अपनी मुँह बोली ननद के पैर स्पर्श किये। बहन को रहते हुए दो-चार दिन हो गए तो कुम्हार की माँ बड़ी समझदार थी। उसने बाईसा से पूछा- क्यों बेटी तुम गर्भवती हो क्या? क्योंकि मेरे बेटे-बहू तो बहुत ही भोले तथा सीधे-सादे है। उन पर कोई कलंक नहीं लगना चाहिये। बाईसा ने कहा- माताजी आप चिंता न करे। यह तो मेरे पति का गर्भ है। बाईसा के रहने से कुम्हार के यहाँ खूब ठाठ-बाट हो गए। घर में निमाड़ा (मिट्टी के बर्तन पकने का भट्टा) पक रहा था तो वह भी ताम्बे-पीतल का हो गया। आस-पड़ोस में भी सबके यहाँ ठाठ हो गए। आस-पास वाले कुम्हार को कहने लगे कि ये बाईसा जब से यहाँ आए हैं, हम सब के यहाँ आनंद ही आनंद हो गया है। बाईसा को कुम्हार की पत्नी बहुत अच्छा रखती थी। बाईसा को थोड़े दिन बाद पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। कुम्हार ने ज्योतिषी से उसका नाम पूछा। ज्योतिषी ने कुण्डली बनाकर कहा- इसका नाम तो राजा विक्रम आया है। उनका सूर्य पूजन और जलवा पूजन कुम्हार ने बड़ी धूमधाम से किया। पूरी नगरी को बुलाया। क्योंकि उनको कोई संतान नहीं थी। उज्जैन नगरी के लोग बच्चे के लिये वस्त्राभूषण लेकर आए। विक्रम थोड़े बड़े हुए तो उन्हें स्कूल भेजने लगे। जब तक विक्रम स्कूल से नहीं आते, तब तक कोई भी भोजन नहीं करता था। उनके आने के बाद सब साथ में भोजन करते। एक बार वहाँ के राजा ने नाई के द्वारा उज्जैन नगरी में हुंडी पिटवाई कि एक वर्ष में एक बार एक घर का एक सदस्य राजा बनेगा। जो भी राजा बनने जाता, योगिनियाँ (पाखंडी) खा जाती। एक दिन विक्रम ने घर पर देखा कि नाना-नानी, मामा-मामी सब रो रहे हैं। उन्होंने उनसे पूछा- आप सब क्यों रो रहे हो? तो नानी ने कहा- तेरे मामाजी का राजा बनने का समय आया है। विक्रम बोले- राजा बनना तो बहुत अच्छी बात है। नहीं बेटा जो राजा बनता है उनको योगीनियाँ खा जाती हैं। जिन्दा नहीं रहने देती। विक्रम बोले- सारे गाँव को इकट्ठा करो और जो मेरी बात को मानेगा, तो राजा अमर रहेगा। गाँव वालों को इकट्ठा किया। उन्होंने विक्रम से कहा- भानेजलाल आप जो भी कहेंगे वह काम हम करेंगे। विक्रम ने कहा- एक कुन्टल उड़द का आटा पिसवाना। उसका पोला पुतला बनवाना और सिर के ऊपर एक गड्डा रखना, उसमें देशी शहद भरना और उस पुतले को राजगद्दी पर बिठा देना। पुतले को गुलाब जामुन, लड्डू, कलाकंद, घेवर, फेनी, रबडी, मालपूएँ, कढ़ी सब तरह के थाल भरकर पुतले (राजा) के आस-पास रख देना और जितने भी तरह के फल-फूल हैं, उनको भी थाल में रख देना। माँस को भूनकर एवं शराब के ड्रम भरकर रख देना। शाम के वक्त योगिनियाँ आएंगी तो ये सब चीजें खाएंगी। योगिनियाँ आई तो सबसे पहले शराब पी, फिर माँस खाया, फल-फूल मिठाईयाँ,

सेब चाने सारी चीजें खा-पीकर मगन हो गई। उनका पेट भर गया। वह कहने लगी- ओ हो, इन राजा का घर तो बहुत अच्छा है। इनके यहाँ तो इतने पकवान हैं कि खाए नहीं जा रहे हैं। फिर उन्होंने राजा को देखा तो कहने लगी- अब राजा को चखकर देखें वह कितने मीठे है? वह सब राजा को खाने गई। मुँह से कौर तोड़ा तो उसमें से शहद निकला। कहने लगी अरे! यह तो बहुत मीठा राजा है।

अब यहाँ जो भी सुन रहा हो तो सुनो हम सब आपके वचन का पालन करेंगे और जो भी हमें कहोगे हम करेंगे। विक्रम तलवार लेकर एक कोने में छिपकर खड़े थे। वह बाहर निकले और योगिनियों की चोटी पकड़ी और कहा- यहाँ पर ये शीशे पड़े हुए हैं, तुम सब इन शीशें में उतर जाओ। योगिनियाँ सब शीशे में उतर गई। विक्रम ने शीशे जमीन में गढ़वा दिये। बारह वर्ष में एक बार सिंहस्थ के समय छूट है। गाँव के लोगों ने कहा भानेज लाल विक्रम योगिनियों को तो आपने वश में किया है। विक्रम के कुम्हार मामाजी ने कहा- इस राजगद्दी के हकदार तो आप हैं, मैं नहीं विक्रम को उज्जैन की राजगद्दी पर बिठा दिया है और वह राजा विक्रमादित्य हो गए। इधर कुम्हार मामा के यहाँ भी बांझ खुल गई और उनके यहाँ लड़का हुआ। पंडितजी से उसका नाम पुछवाया तो पंडित बोले इसका नाम बटवर बादशाह आया है। बेटा आठ-दस वर्ष का हुआ और कुम्हार की माँ मर गई। थोड़े साल बाद कुम्हार मामा भी मर गये। राजा विक्रम ने कुम्हारन मामी से कहा- आप अब हमारे साथ राज महल में ही रहोगे। मामी कहने लगी-नहीं भाजेनलाल मैं आपके यहाँ नहीं रह सकती, मैं कैसे रहूँ। मुझे दोष (पाप) लगेगा। मैं आपके यहाँ का कैसे खाऊँ-पीऊँगी। मामी राज महल में नहीं रही और उनके घर चली गई। वह रोज जंगल में जाकर लकड़ियाँ लाती और बेच देती और दोनों माँ-बेटे का गुजारा कर लेती। माँ उसे रोज कौड़िये दे जाती और कहती तू यहाँ पर खेलना। वह बच्चों का साथ खेलता खोरोजा बनाता और एक-एक कौड़ी रोज बच्चों को बाँटता। आस-पास की औरतें अपने बच्चों को तैयार करके भेज देती, जाओ तुम्हें बटवर बादशाह कौड़ी देगा। बच्चे रोज खेलने आते, उनके पास बहुत सारी कौड़ियाँ इकट्ठी हो जाती तो वह बेच देते। एक दिन बटवर बादशाह रोने लगा, माँ मैं तो तेरे साथ चलूँगा। माँ ने उसे बहुत समझाया, पर वह नहीं माना और माँ के साथ चल दिया। जंगल में एक बहुत बड़ा तालाब था। माँ ने उसे तालाब की पाल पर बैठा दिया। तो वैकुण्ठधाम से परियाँ वहाँ पर नहाने आई। वह नहा रही थी कि उनकी नजर उस लड़के पर पड़ी तो वह घबरा गई और कहने लगी- अरे! कौन लड़का है। वह अपने कपड़े, आभूषण पहनती हुई उड़ गई। उनमें से एक की पायल वहाँ रह गई तो वह बटवर बादशाह को मिली। बटवर बादशाह ने वह पायल एक लकड़ी में पिरौली और उस लकड़ी को घुमाने लगा। वो तालाब की पाल में बनजारे की बारद (सामान से लदे बैलों का समुह) आ रही थी। तो बनजारे ने कहा- अरे नाना! ये पायल मुझे दे दे। लेकिन इसके तुझे सौ रूपये दूँगा। बटवर बादशाह बोला- यह पायल सौ रूपये की नहीं हैं। बनजारा बोला- हजार दूँगा। बटवर बादशाह बोला- क्या ये हजार रूपये की नहीं है? बनजारा ने कहा- एक लाख रूपये ले लेना। तो क्या लाख रूपये का ही है? बनजारा बोला- ये है कोई जानकार? बटवर बादशाह ने उनसे पूछा- बनजारे तू कहाँ जाएगा? बनजारा बोला- मैं चीन देश जाऊँगा। तेरे चीन देश के राजा को मेरा प्रणाम कहना और ये पायल उनको दे देना। बनजारा चीन देश गया, वहाँ उसने राजा से जाकर कहा- मालवा देश के बटवर बादशाह ने सलामी में एक पायल भेजी है। उस राजा ने कहा- अरे बनजारे! तू वापस कब जाएगा? तू जब भी जाय तो मेरे पास से उनके लिये कुछ भी निशानी ले जाना। उन्होंने मेरे लिये इतनी कीमती पायल भेजी है। बनजारा जाने लगा तो चीन देश के राजा ने घोड़े की लोबरे (घोड़े को चंदी खिलाने का थैला) में हीरा-जवाहरात और मोहरे भर कर दी और कहा- मालवा देश के बटवर बादशाह को मेरे प्रणाम के साथ यह थैला दे देना। बनजारा आकर तालाब के किनारे (पाल) पर उस बटवर बादशाह को ढूँढने लगा, वह वहाँ नहीं मिला, तो पूछता-पूछता गाँव में पहुँच गया। वहाँ जाकर पूछा- अरे भाई! बटवर बादशाह कहाँ रहता है? गाँव की औरतें हँसते हुए कहने लगी कि यहाँ बटवर बादशाह कोई नहीं है? यहाँ तो बटवर्या है। बटवर्या कहाँ है वह? वो वहाँ सामने लड़कों के साथ खेल रहा होगा। वहाँ जाकर देखो। बनजारा थोड़ा आगे गया और उसने उसे आवाज लगाई अरे ओ बटवर बादशाह! वह झट उठकर आ गया और कहने लगा, तुम आ गए बनजारे? बटवर बादशाह ने उससे कहा- मैं चीन देश गया था। तो वहाँ

के राजा ने आपके लिये राम-राम कहा और उसके साथ में घोड़े की तोबरा भेजी है। बटवर बादशाह ने उसको हाथ भी नहीं लगाया और उससे कहा- क्यों रे बनजारे! अब तू कहाँ जाएगा? मैं तो अब कुच-भुज जाऊँगा। तो ऐसा करना कि ये तोबरा वहाँ के राजा को मेरी राम-राम के साथ दे देना। बनजारे ने कुच-भुज जाकर वह तोबरे राजा को दे दी। कुच-भुज के राजा ने सिर की पगड़ी, हीरा जड़ी, जवाहरात और दस अँगूठी मालवा देश के बटवर बादशाह को राम-राम में भेजी। बनजारा हीरा जड़ी पगड़ी और दस अँगुठियाँ बटवर बादशाह को देने लगा तो बटवर बादशाह बोला- तू यह बस मेरी और से रख ले और तू किसी भी देश या चारों तरफ कहीं भी जाएगा और कहीं भी घूमेगा तो तुझे वसूली कर कहीं भी नहीं देना पड़ेगा। बनजारा यह सुनकर स्वतंत्र हो गया।

राजा विक्रम बटवर बादशाह को ढूँढकर राजमहल में लाया। उसको अच्छा खिलाया-पिलाया उसका अच्छा ध्यान रखा कि ये थोड़ा कमजोर है। इसलिये थोड़ा मजबूत और ताकतवर बनाया। यह अच्छा दिखने लगेगा तो इसका विवाह कर देंगे। राजा विक्रम ने बटवर बादशाह को कहा- जो एक पायल तुमने चीन देश पहुँचाई थी, ऐसी ही एक पायल और चीन देश पहुँचा देंगे, तो उसको शांति हो जाएगी, ये मेरे साथ विवाह कर लेगा। उसी तालाब की पाट पर बटवर बादशाह गया। वहाँ पर परियाँ नहा रही थी। बटवर परियों से बोला- पहले तुम्हारी एक पायल गिर गई थी तो मैंने उसे चीन देश पहुँचा दिया था। चीन देश की लड़की ने प्रण किया था, जिसने भी पायल पहुँचाई है, मैं उसी के साथ विवाह करूँगी। तो तुम मुझे एक पायल और दो। मैं वह पायल वहाँ पहुँचा दूँगा। परियों ने एक पायल निकालकर राजा विक्रम को दे दी। राजा विक्रम ने उन्हें कपड़े व पायल लेकर चीन देश गए। राजा के महल में पहुँचे। राजा ने विक्रम का आदर सत्कार किया। राजा विक्रम कपड़े और पायल दे दिये और कहा कि विवाह थोड़े समय बाद करेंगे। चीनी राजा बोले- कब करेंगे? राजा विक्रम बोले- एक वर्ष बाद करेंगे। क्योंकि विवाह जल्दी कर देंगे। तो लोग बाग कहेंगे कि इतनी क्या जल्दी थी? अगर जल्दी विवाह कर दिया तो कुछ न कुछ हुआ होगा? ऐसा लोग कहेंगे। इसलिये अपने को कोई जल्दी है नहीं? आप चिंता न करे, राजा विक्रम बोले- आप ये मत समझना कि मैं इतनी वजनदार पायल लाया हूँ, इसलिये मुझे भी ऐसा देना पड़ेगा। हमें कुछ भी नहीं चाहिये, आपको कुछ भी नहीं करना है। आप कहेंगे इतने बाराती लेकर आ जाएंगे। हमें तो बस लड़की चाहिये। ये बस बातें करके राजा विक्रम अपने मालव देश आ गए। यहाँ आकर उन्होंने बटवर बादशाह की शिक्षा-दीक्षा का प्रबंध किया। अपनी मामी को भी अपने महल में ले आए और राजा बटवर बादशाह की शादी की तैयारी शुरू कर दी।

राजा विक्रम वापस चीन देश गए। वहाँ जाकर लग्न निकलवाया और विवाह की तारीख तय हुई। लग्न लेकर वापस अपने देश आ गए। बटवर बादशाह को पाट पर बैठाया, मेहंदी- उबटन लगाया, मंगल गीत गाये गए। दूल्हे का शेहरा सजा, घोड़ी चढ़ा और बारात चीन देश रवाना हुई। चीन देश बारात पहुँची, बारात का स्वागत हुआ। मंगलाचार हुए। बटवर बादशाह और राजा की लड़ी का विवाह हो गया। चीन देश के राजा ने राजा विक्रम से कहा-हमें तो दूसरी कोई संतान नहीं हैं। बस यही एक लड़की हैं। तो आप ऐसा करो कि राजकुमारी व दामाद जी हमारे यहीं पर रूक जाये? राजा विक्रम ने सोचा कि इनका कोई घर तो है नहीं और इस राजा की लड़की को कितने दिन तक अपने महल में रखेंगे। तो ये काम तो बहुत ही अच्छा है। बटवर बादशाह और राजकुमारी को वहीं छोड़कर सब मालवा देश आ गए।

बटवर बादशाह की माँ भी सब रहन-सहन तौर तरीके, रीति-रिवाज सब कुछ अच्छी तरह सीख गई थी। तो विक्रम ने उनको भी चीन देश जाने की तैयारी कर दी। बेटे के ससुराल में गाँव वालों के लिये कपड़े, साड़ियाँ, नारियल इत्यादि सामान खरीदा और बटवर बादशाह की माँ को लेकर राजा विक्रम चीन देश गए। गाँव के लोग बटरवर बादशाह की माता से मिलने आए तो औरतों को साड़ी, ब्लाऊज एवं पुरुषों को नारियल भेंट में दिये। सब लोगों ने बटवर एवं उनकी माता की बहुत तरीफ की।

राजा विक्रम बटवर बादशाह की माता को वहीं छोड़कर उज्जैन आ गए। बटवर बादशाह चीन देश पर राज्य करने लगे और राजा विक्रम अपना राज्य संहाल कर राज करने लगे।

विक्रम राजा

एक बामण थो। उ राजा विक्रम का मेल में रेतो थो। बामण बोल्यो राजा साब, म्हारा हरको कोई काम ने तो बताड़ो। राजा विक्रम बोल्या पंडितजी थांका हरको कोई काम तो नी है। पण थे नवरा वो तो, असो करो के थें गंगाजी चलया जाओ, ने वठे ती गंगाजल लई आओ। पंडितजी बोल्या के गंगाजी लेवाने तो चलयो जऊँ। पण म्हारी गोराणी म्हारा पगे पड्या बना रोटी नी खाय। राजा बोल्या, के थांको फोटू खेंचाड़ी ने थांका षर में लगई दो। पंडितजी ए अपणो फोटू खेंचाडी ने घर में लुगई दीदो। ने गंगाजी चाली पड्या। गोराणी माँ रोज रोटी वणावे, भोग लगावे, ने पंडितजी का फोटू ने के चालो, म्हाराजजी रोटी खावां। अतरो कई ने गोराजी रोटी खई लेती। एक दन पंडितजी को घर बलीग्यो। तो गोराणी माँ, फोटू कने जइने बोली, चालो पंडितजी अपणो घर बरी रियो। तो कई फोटू भी चाल्यो है। यूं करता-करता गोराणी माँ भी बरीग्या। ने घर भी बरीग्यो। घर राखोड़ा को ढेर बइग्यो। आठ-पन्द्रा दन में पंडितजी गंगाजल लइने आई ग्या। तो गांम का लोग देखी ने बोल्या, म्हाराज थांको घर तो बरीग्यो ने घर हांते गोराणी माँ भी बरीग्या। पंडितजी बोल्या के राजा विक्रम कने ती म्हारी लुगई लुंगा। वणा एक म्हने गंगाजी मेल्यो थो। म्हराज जी, राजा विक्रम कने ग्या ने वणा ने किदो, राजासा मैं आपका काम ती ग्यों थो, ने अटने म्हारी लुगाई ने म्हारो घर दोई बरीगया। अभे मैं कई करूँ राजा विक्रम बोल्या, म्हाराजजी सांचो दूसरो व्याव करई दां। म्हाराजजी बोल्या, म्हारे तो म्हारीज लुगई चईये। राज बोल्या, घर बरीगयो, लुगई बरीगी, अभे कठे ती लऊँ। बामण के सौ एक इज रट लागी। म्हारी की म्हारी लुगई लईने दो।

राजा बोल्या, ठेरो, म्हाराजजी कठे ती भी थांकी लुगई लई ने दूंगा। राजा विक्रम बामण की लुगई ढुंड़वाने उज्जण में लिकर्‌या। वठे एक दूसरो राजा सवा मण सोनो रोज पुन करतो थो। एक दन राजा हुत्तों था, तो हगरी देवियाँ, चौसठ जोगणी भूकी माता, चावण्डा माता, चोबीस खम्बा माता बणी राजा ने तोकी ने उन्ना-उन्ना तेल का कड़ाया में ल्हाकी दीदो। ने पाछो लिकार लिदो। ने वणी पे अमरत को छाँटो ल्हाकी ने वणी ने सरजीवन कर दीदो। उ जीवतो वइग्यो तो सवा मण सोनो वणी ने दई दीदो तो राजा उण सोनो पुन करे। उ वणी कने नी राखें। अतरा कठीन ती उ सोनो कमावे।

राजा विक्रम वणी पंडित की लुगई ढुंडवा ने जई रिया था। तो वणाने की सब जोगण्याँ दिखी। वणा ने देखी ने राजा विक्रम एक खुणां में दबई ग्या। ने चुपके-चुपके देखता जई रिया। वी हगरी जोगण्याँ बठे बरवरी थकी मिठई पड़ी थी। लो वी खई री थी। वणा को पेट भरईग्यो, तो बोली के जो भी कोई मनख बे, उ अपणा कने ती अन-धन मांगे तो अपणे दई दा। राजा विक्रम वणा की बात हुणी रियो थो। तो बारते लिकरी ने आयो। ने वणा जोगण्या ने कीदो, के मैं बचन मांगु, तो थे हगरी जोगण्याँ दोगा? तो चौसट जोगणी बोली, के वाचा चुकांगा तो तीन लोक में झूटा पड़ागा। थें मांगोगा जो दूंगा। राजा विक्रम बोल्या, के थें या उज्जण नगरी छोड़ी ने, सिपारा नदी पार करी ने चलीं जाओं। जोगण्याँ बोली, अरे राजा आप यू कईं करो? राजा विक्रम बोल्या, के म्हारों कीदो नी करो तो वचन हरो? अरे राजा, अन-धन मांगो, जतरो मांगोगा अतरो दांगा। म्हाने लिकारी ने आपने कई मिलेगा। राजा विक्रम बोल्या, मैं अन-धन ने कई करूँ? थें तो मनख मारो ने बणाने तेल तरो, ने फेर बीने जीवतो करी ने वीने होनो दो। तो उ होनो कतरो कठीन को वे। तो नदी पार करी ने चली जाओ अठे ती। ने यो अमरत म्हने दई दो। पणा में ती चार जोगण्याँ बोली के राज हम तो लंगड़ी लूली हाँ, कठे जावांगा, म्हाने तो आप अठे ज रेवा दो। म्है चारी तो नी जावांगा। अठे नदी कनारे पड़ी रांगा। आप म्हाने थोडीक जगा दई दों। तो भूकी माता, चॉवण्डा माता, चोवीस खम्बा माता, ने चौसट जोगणी इ चार बेनां नी गई। तो आज भी नदी कनारे इ चारी जगा जगा बैठी हैं। राजा ने कीदो, आप कने ती अथे हम कई नी मांगागा। बस म्हे तो बारे वरस में एक दाण भोग लांगा। बाकी बंची थकी जोगण्याँ ने राजा ए लिकार दीदी। ने वणा का कने ती अमरत को कुप्पो लइ लिदो। ने राजा घरे चलायाग्या। राजा ए वणी राखोड़ा का ढेर पे अमरत छाँट्यो, तो वा बामणी बारे बरस की छोटी वईने बैठी वईगी। ने फेर वणा एक वणी बामण ने कीदो, के तो पंडितजी थांकी लुगई। राजा ए बामण ने वणी की लुगई सुपरत कर दीदी। बामण का पाछा घरवासा बइग्या।

भावार्थ

एक ब्राह्मण था। वह राजा विक्रम के महल में रहता था। ब्राह्मण बोला- राजा साहब, मेरे लिए कोई कार्य हो तो बताइयेगा।

राजा विक्रम ने कहा- पंडितजी आप जैसा कोई कार्य तो नहीं है। अगर आप फुर्सत हो तो ऐसा करो कि आप गंगाजी चले जाओ और वहाँ से गंगाजल ले आओ। पंडितजी बोले- मैं गंगाजल लेने तो चला जाऊँगा पर मेरी पत्नी मेरे चरण-स्पर्श किये बिना भोजन नहीं करती हैं। राजा विक्रम बोले-आपका फोटो खिंचवाकर आपके घर में लगा दो। आपकी पत्नी रोज उसे देखकर चरण स्पर्श करेगी और उसके बाद में भोजन कर लेगी। पंडितजी ने अपना फोटो खिंचवाकर घर में लगा दिया और गंगाजी के लिये प्रस्थान कर गए। पंडिताईन रोज भोजन बनाती, भोग लगाती, फिर पंडितजी के फोटो के पास जाकर कहती, चलो आप भी भोजन कर लो। इतना कहकर फिर वह भोजन करती। एक दिन पंडितजी का घर जल गया। तो पंडिताईन ने फोटो को जाकर कहा- चलो पंडितजी अपना घर जल गया है। फोटो भी कभी चला है। ऐसे पंडितजी से बातें करती रही और वह खुद भी मकान के साथ जल गई। मकान राख के ढेर में बदल गया। दस-पन्द्रह दिन में पंडितजी गंगाजल लेकर आ गए। गाँव के लोगों ने उनसे कहा- पंडितजी आपका घर जल गया और साथ में गोराणी जी भी जल गई। पंडितजी बोले, राजा विक्रम के पास से मेरी पत्नी लूँगा। मैं तो उनको सौंपकर गया था। उन्होंने ही मुझे गंगाजल लेने के लिये भेजा था। पंडितजी राजा विक्रम के पास गए और उनको कहा- राजा साहब मैं आपके काम से गया था और मैं जब आया तब तक मेरा घर और मेरी पत्नी दोनों जल गए। अब मैं क्या करूँ? राजा विक्रम बोले- पंडितजी आपका दूसरा विवाह करवा देंगे। पंडितजी बोले- मुझे तो मेरी पत्नी ही चाहिये। राजा बोले- घर और पत्नी दोनों जल गए। अब मैं कहाँ से लाऊँ। ब्राह्मण को एक ही रट लगी हुई थी कि मुझे मेरी पत्नी लाकर दे दो।

राजा विक्रम बोले- ठहरो महाराज जी, कहीं से भी मैं आपकी पत्नी लाकर दूँगा। राजा विक्रम ब्राह्मण पत्नी को ढूंढने उज्जैन में निकाले। वहाँ पर एक दूसरा ही राजा सवा मन सोने का रोज दान पुण्य करता था। एक दिन राजा सो रहा था तो नगर की सारी देवियाँ चौसठ योगिनी, भूखी माता, चावण्डा माता, चौबीस खम्भा माताजी उस राजा को उठाकर गरम-गरम तेल के कढ़ाव में डाले और निकले और फिर उस पर अमृत के छींटे डालकर उसको जीवित कर दें और उसको सवा मन सोना दे दे। वही सोना राजा दान करता। अपने पास नहीं रखता। इतनी कठिनाई से वह सोना कमाता।

राजा विक्रम उस पंडित पत्नी को ढूंढने जा रहे थे, तो रास्ते में उन्हें सारी योगिनियाँ दिखाई दी। उनको देखकर राजा विक्रम एक कोने में छुप गए। छुप-छुपकर उनको देखते रहे। वहाँ पर मिठाइयाँ बिखरी हुई पड़ी थी, तो सारी योगिनियाँ खा रही थी। उनका पेट जब भर गया, तो कहने लगी, जो भी कोई इंसान अपने पास अन्न-धन मांगेगा तो हम उसे दे देंगे। यह बात राजा विक्रम सुन रहे थे। वह बाहर निकलकर आए और उन योगिनियों से कहा- मैं तुमसे वचन मांगता हूँ, तुम सब दोगी? उनमें से चौसठ योगिनियाँ बोली- हम अगर आपको वचन देते हैं तो तीन लोक में हम झूठी साबित हो जाएंगी। आप जो भी मांगोगे, हम देंगे। राजा विक्रम ने कहा- तुम सब यह उज्जैन नगरी छोड़कर क्षिप्रा पार करके चली जाओ। योगिनियों ने कहा-अरे राजा! आप ऐसा क्यों कर रहे हैं। राजा विक्रम ने कहा- अगर तुम मेरा कहना नहीं मानोगी तो मैंने जो वचन लिया है, वह हार जाओगी। अरे राजा! आप अन्न-धन जितना भी मांगो हम देंगे। हमको निकालकर आपको क्या मिलेगा? मैं अन्न-धन को लेकर क्या करूँगा? तुम तो लोगों को मारती हो और उनको तेल में भूनकर वापस निकालती हो और फिर उसे सोना देती हो। तो वह सोना कितने कठिनाई का है। तुम तो क्षिप्रा पार करके यहाँ से चली जाओ और यह अमृत मुझे दे दो। उनमें से चार योगिनियों ने कहा- राजा विक्रम हम अपंग है, लूली हैं, हम कहीं नहीं जाएंगी। हमें तो आप यहीं पर रहने दो। हम चारों तो नहीं जाएंगी। यहाँ नदी के किनारे पड़ी रहेगी। आप हमें थोड़ी जगह दे दीजिये। भूखी माता, चावण्डा माता, चौबीस खम्बा माता और चौसठ योगिनी माता ये चारों बहने नहीं गई और आज भी ये चारों नदी के तट पर जगह-जगह विराजमान हैं। उन्होंने राजा से कहा- अब हम आपसे कुछ भी नहीं मांगेंगे। सिर्फ बारह वर्ष में एक बार भाग जरूर लेंगे। बाकी बची हुई योगिनियाँ को राजा ने निकाल दिया और उनके पास से अमृत ले लिया।

अमृत लेकर राजा घर चले गए। वहाँ जाकर उस राख के ढेर पर अमृत छींट दिया तो वह ब्राह्मणी बारह वर्ष की लड़की होकर प्रकट हो गई। राजा विक्रम ने ब्राह्मण से कहा-

पंडितजी यह लो आपकी पत्नी। राजा ने पंडितजी को उनकी पत्नी सुपुर्द कर दी। राजा ने अपना वचन निभा दिया। ब्राह्मण-ब्राह्मणी का फिर से नया जीवन शुरू हो गया।

मालवी गीतों में विक्रमादित्य

गजानन

राजा विक्रम की नगरिया चलो देखी जावांगा।
देखी आवांगा के दर्शन करीके आवांगा। 2
कहाँ बस्या है महाकाल और कहाँ बस्या हरसिद्धि
अरे कठे तो बस्या रे बाबा गणपतिया। 2 राजा विक्रम .....
ताल वस्या है महाकाल ने पाल बस्या हरसिद्धि,
अरे चिंतामण बस्या रे बाबा गणपतिया। 2 राजा विक्रम .....
कई चढ़े है महाकाल ने कई चढ़े हरसिद्धि
अरे कई तो चढ़ रे बाबा गणपतिया। 2 राजा विक्रम .....
दूध चढे है महाकाल ने फूल चढ़े हरसिद्धि
अरे लड्डू तो चढ़े रे बाबा गणपतिया। 2 राजा विक्रम .....
कई करे हे महाकाल और कई करे हरसिद्धि
अरे कई तो करे रे बाबा गणपतिया। 2 राजा विक्रम .....
आस बंदावे महाकाल और गादे मरे हरसिद्धि
अरे पालणियों बंदावे रे बाबा गणपतिया,
अरे आंगणिया खेलावे रे बाबा गणपतिया। 2 राजा विक्रम .....
राजा विक्रम की नगरिया चलो देखी आवांगा।

शनि जी

सूरज का अवतार सनीदेव फेरांगा माला तमारी जी। 2
धरती के लाग्या आसमान गरण हुआ अति भारी जी। सूरज .....
गंगा के लाग्या जमना के लाग्या, लाग्या सरजू भाई जी,
रतन सागर के ऐसा लाग्या पाणी खारो कर डार्यो जी। सूरज .....
राम के लाग्या, लछमण के लाग्या सीता माई जी,
राजा रावण के ऐसा लाग्या, कुल का नामस कराया जी। सूरज ....
राजा के लाग्या, परजा के लाग्या, लाग्या दुनिया सारी जी,
राजा विक्रम के ऐसा लाग्या, चोरंग्या कर डाल्या जी।
शनीवार शनीदेव मनांवा, भेंसा पे सवारी जी,
अस्सी कली को लेगों पेर्यो, ऊपर काली कमलिया जी।
सूरज का अवतार शनीदेव फेरांगा माला तमारी जी।

नवग्रह

नवग्रह देवता ने नीत उठ सुमरू सुभर्या कारज सरेगा।
राहू तो म्हारी सहाय करेगा शनी जी कारज सुधारेगा,
वृहस्पति को टेको लागो दुश्मन सबऽ जावेगा। नवग्रह .....
मंगल तो म्हारी मनसा पुरदे, सूरज सदा सुख लावेगा
बुध तो म्हारी बांह बिराजे, हार कभी नहीं आवेगा। नवग्रह.....
केतू तो म्हारे करज उतारे, पनोती लछमी लावेगा।
चन्द्रमा सनमुख बिराजे अनधन लछमी लावेगा। नवग्रह.....
कहत कबिरा सुनो विक्रमादित्य जो कोई ध्यान धरावेगा,
अनचित विया फल पावेगा। नवग्रह.....

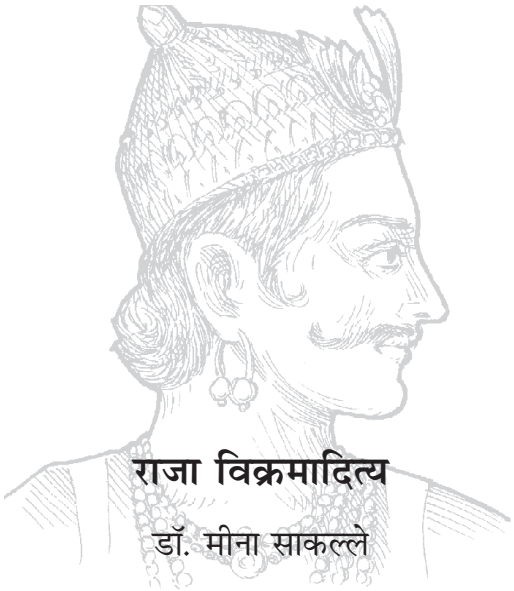

राजा विक्रमादित्य

डॉ. मीना साकल्ले

एक राजा रह्य नऽ ओकी एक छोरी रह्य। ओखऽ राजा नऽ पूछयो- बेटा तू आप वर, वरऽज कि बाप वर, वरऽज। ओनऽ कयो-पिताजी हऊँ आप वरनी की वरती नऽलाय वर नी नी वरती। मखऽ एक रात मऽजी चार लोक लोकई देगा ओका सी याव करूँगा। राजा नऽ दूसरा देस का राजा नऽ खऽ चिठ्ठी लिखी दी कि हमारी बेटी को स्वयंवर छे। जी ओका सी चार बोल एक रात मऽ बोली देगा ओका सी हम हमारी छोरी को याव करी देवागाँ नऽ हमारो राजपाट धन-दौलत सबई दई देगाँ। फिरी स्वयंवर ओकारचयो। रात मऽ सभा बढऽ। सबई राजा जायऽ ओका सी बोलाऽ पर ऊ कोई सीनी बोलऽ। असो करता-करता एक बरस हुई गयो। फिरी विक्रमादित्य राजा आयो। ओनऽ सुनयो कि उज्जैन को आयऽ। ओ बी आनो बोलाड़ण खऽ। रात मऽ ओबी बटी गई नऽ ये बी कुरसी पर बठी गयो। ओनऽकयो-राणी बोलऽ। ओखऽवीर आदतो थे। ओनऽ त्रिशूल खऽ भरी दिया नऽ कय-हऊँलखऽकयणी कऊँन तू हुँकारा। दऽमखऽ रात बिताड़णूंज। एनऽकयो-ऊ। हुँकारा देणऽ लगी गयो। देख भई चारा छोरा विद्या सीखण परदेस गया। व्हाँ सी वछा आया तो धन कमई नऽलाया। चलता-चलता उनखऽ रात हुई गई। गाँव दूर रही गयो। जंगळ मऽ रही गया। ओनऽकयो-भाई अपुन तीन जन सोवाज, एकजन पहरो देगा। सुतार का छोरा को नबंर थो। ओनऽकयो- अपनी रात कसी बीतऽगा। ओनऽ एक लाकड़ी ली नऽ ओकी अच्छी फुतळेण घड़ी दी। ओको पहेर पूरो हुयो कि ओनऽ सोनार का छोरा खऽजगाड़ी दी। ओनऽ कयो- एनऽ फुतळेण कि बाई गड़ीज तो अपुन एखऽ सब जेवर पैरई देवाँज तो ओनऽ चौदी का सबई जेवर लणईनऽ पैरई दिया। तीसरा पहेर ओनऽ कोकई। साड़ी बुननऽ खऽ जगाड़ी दियो। ओनऽकयो -ई दुईनऽन असो करयो तोम्हारी रात कसी खूंटऽगा। तो ओनऽ ऊ फुतळेण खऽ चोरई बणई नऽ पैरई दी। चवथो पहेर हुयो कि लामण का छोरा खऽ जगाड़ी दियो कि भाई अबँ तू जाग हऊँ सोउज। चवथो पहेर ऊ गयोज जामण को छोरो उठ्यो। दिसा जंगळ गयो, न्हायो। जबै तक जरा-जरा

उजारो हुई गयो। ओनऽ ऊ फुतळेण खऽ उभेक देखी। ओनऽ कयो-लीननऽ नऽ अपनी विद्‌या लतई तो हऊँबी बताऊँज कि हऊँ कोई सीखी नऽ आयोज। ओनऽ ली प्राणायाम करीनऽ। ओगऽ जीव नाखी दियो। वो सुम-सुभ करीनऽ फिरणऽ लगी व्हौ। फिरी ऊ तीनई जागया। ई चारई जन लड़ण लगया कि ई म्हारी बैरो आय, ऊ कय म्हारी बैरो। विक्रमादित्य ऊ त्रिसूल सी पूछऽ -देख एमऽ के को सच्चो हात छे जे का सी याव करणूँ। त्रिसूल नऽ बोल्यो- कि जेनऽ एमऽ जीव नाख्यो ऊ बामण की लुगाई होणु चायजे। ऊ राजा की छोरी खऽ गुस्सो आयो। ओनऽ त्रिसूळ खऽलात मारी दी। ओका सी कसो आव करी ले। ऊ तो ओका बाप हुयो। ओमऽ तो आनेऽ जीव नाख्योज। ई तीन मऽसी कोई बी ओका सी याद करी ले। एक बखत राणी बोली। दासी नऽ न कयो। नगारा पर डंका हुआ कि राजकुमारी एक वखत बोळी। फिरी विक्रमादित्य कय-देखऽ राजकुमारी बोल फिरी ऊनी बोळी। किरी दासी व्हाँ बठे थी ओनऽ कयो- देख दासी हऊँ कयणीं 'बोलूँज नऽ' हुँकारा दीजे। मखऽ रात बिताय गूंज दासी नऽ कयो- हव राजा हऊँ हुंकारा देऊँज, कहो वार्ता। एक राजा को छोरो, ब्रामण को छोरो, माळई को नऽ वाव्या को छोरो, ई चारई विद्‌या सीखणऽ परदेस गया। एक सहेर मऽ आया। व्हाँ राजा की छोरी को महेक थो। ओका ओटका पर ई सोई गया। अवै ई पछा घर जाता था। तो बामण को छोरो बोल्यो - हऊँ बाटी, दाळ साल भरी सी खातो रह्‌यो तो म्हारी माय खऽ बोलँगा कि अच्छी दाळ, चॉवल, रोटी बना। बाण्यो को छोरो बोल्यो- कि हऊँ म्हारी माय खऽ बोलूँगा कि अच्छो साजो घिंयुनऽ पोरण -पोळई खवाड़। मालई को छोरो कये-हऊँ म्हारी माय सी कऊँगा कि अच्छी मेथी की भाजी दाळ नऽ नाखी नऽ जुवार को रोटी मखऽ खवाड़। राजा को छोरो कय-हऊँ जाऊँगा नऽ कऊँगा कि मखऽ अच्छा पाँच पकवान ळणईनऽ खवाड़ा। ऊ राजा की छोरी सुख्या करी। ओनऽ नौकर नऽ खऽकयो- जाओ इनखऽ म्हारा पास लाओ। रात खऽ पहरो दीजो। बड़ी फजर सीई उठी नऽ न नी जायऽ। ऊ चारई नऽरन ऊपर बुलाया। बामणी खऽ बुलई-बाई ई छोरा खऽ लईजा। एखऽ दाळ भात रोटी भाजी बणई नऽ खवाड़जे। लणियाणी खऽ बुलई। लाई तू एखऽ लई जा ई वाण्या को छोरो आयऽ। अच्छी पोरण-पोलई नऽ तजो घिंयु बवईनऽ खवाड़ माकेण रनऽ बुलई-वाई ई माळई को छोरो आयऽ ताजी मेथी दाल मऽनाखीनऽ जुवार कि रोटी खवाड़। ऊ राजा का छोरा का लेणऽ ओनऽ खुद पकवान बनाया। अवै ई चारई आया कि अपुण अच्छा तृप्त सी भोजन करी आयाज। आज रहाँज आराम करॉगा। काल जावाँगा। अवँ चारई अरू आपस मऽ बात करण लग्या। राजा को छोरो पूछऽ- बामण थारी दाळ, चॉवल रोटी कसी लणी थी। ओनऽकयो-दाळ चॉवल रोटी तो अच्छी लणी थी पण सामान कोई तुच्छ घर को आयऽ। वाण्या का छोरा खऽपूछयो- पोरणपोळई मऽ तुखऽ लाजो घिंयु मिल्यो कि नई। ओनऽ कयो- भाई पारेळ पोळई तो अच्छी बणी थी भोगऽ लाजो घिंयु भी थे। पण ओमे उंदरी को बच्चों पड़ी गयो होय, असो स्वाद आयो। माकई का छोरा खऽ पूछयो- कारे थारी मेथी का भाजी आनऽ जुवार का रोटी कई अच्छी लणी की नई। भाई जुवार की रोटी नऽ भाजी तो अच्छी बणी थी, पण दाळ मऽ असो लग्यो कि कई दुई एक बसी भाजी का फुंदा नखई गया होयऽ। अवै बामण को छोरो राजा का छोरा खऽ पूछऽ- कवो भाई थारा पाँच पकवान कसा बणया। भाई पाँच पकवान तो भोत अच्छा बणयो पण बनावण बाळी आदमी का पेट की थी। ऊ राजा की छोरी नऽ सुनी लियो। ओनऽ कयो- कोई यहाँ है। दासी नौकर नऽन कयो-हवे, हम हाजिर छे। जाओ इनको पहरो करो। बड़ी .फ़जर सी ई उठीनऽ जातीनी रह्‌य। बड़ी .फ़जर उठयो कि नौकरनऽन कयो- भाई, तुम बाई साब खऽ मिकी नऽ जाओ। चारई नऽख गिरफ्तार करी लिया। बामणी खऽ बोलाड़ी। बामणीखऽ कयो- तूनऽदाळ भाजी रोटी कसी बणई। ओनऽकयो-बाईसाब मन सब अच्छी बणई पण काल म्हार घर तेली का रहां सी। सामान आयो थो तो ओनऽ मोटा चोखा नऽ लाल घऊँथा। ओकी बात सच्ची निकली। बामण का छोरा खऽ लरी करी दिया। बणियाणी खऽ बोलायो। ओखऽकयो- बाई तूनऽ लाजो घिंमुनऽ पोरण-पोळई खचाड़ी थी कि नई। ऊ बोलू हव, मनऽ लो ताजा घिंयु की पोरण पोळई खवाड़ी दी। घिंयु तो ताजोज गरम कियो थो पण ओमऽ गरम करता बखत उंदरी गिरी गई, झट मनऽ निकाळी नऽ फेंकी दी। वाण्या का छोरा खऽ घरी करी दियो कि भाई थारी वात सच्ची निकळई। माळेण खऽ बुलई। ओखऽ पूछयो कि -कवो बईण तूनऽ ताजी भाजी नऽ जुवार की रोटी इनखऽ खिलाई। मनऽ ताजी भाजी नऽ रोटी खिलाई, पण म्हारी छोरी नानी सी रह्‌य, ऊ खेळती -खेळती आई तो काल की बासी भाजी पड़ी थी

ओमनऽ नाखी गई। ओखऽ भी बरी करी दियो कि भाई थारी वात भी सच्ची छे। राजा का छोरा खऽ गिरफ्तार रख्यो। या एकदम ओकी माय का महेळ मऽ गई। माय कि छाती पर बठी गई नऽ पूछ- बोळ हऊँ कुनका पेट की आयऽ। कटोरो ओका कंठ पर धरी दियो कि सच्ची बोळ नई तो हऊँ तूखऽ मार नाखूँजा। ओनऽ कयो -बेटा थारो बाप तो लड़ई पर गयो थो। बारा महिना मऽ आयो। तो बेटा तू बिस्तर पाड़णऽ बाळा आदमी की आयऽ। विक्रमादित्य बोल्यो कि देख दासी एका मऽ कुण होसियार समझणूँ। दासी बोळी कि बामण को छोरो जी पैंचाणी गयो कि तुच्छ घर को सामान आयोज। ऊ रानी नऽ दासी खऽलाल मारीनऽ आनऽ कई दियो कि ऊ माळई का छोरा खऽ साबास कयणूँ कि भाजी मऽ सी बासी भाजी का फुंदा नऽ खऽ पैचाणी लियो। ऐलो राणी बोळी कि नंगारा पर डंको देवाण्यो कि राणी हुई बखत लोकी। किरी ओनऽ कयो- देख राणी बोळऽ पण ऊ कई बोळी नी। फिरी राणी का गळा मऽहार थो। नथ ओयऽ बीर भरी दिया कि हार तू हंकारा दऽ हमरखऽरात बिलावणूँज। ओनऽ हव कईं दियो। राजा बोल्या-एक तीर मारखा रह्य, ओकी बैरो कि नथ मऽसी पाँच वखत तीर छोड़ा। ऊ सुकाती जाय। बैरो कय-म्हारी नाक मऽ तीर भरई गया तो हऊँ मरी जाऊँगा। एक डोकरी ओका रहौ बठणऽ आई। ओन कयो- बईण तू सुकाती क्यों जायऽज, थारा घर मऽ सब बात को आनंद छे। ओनऽकयो-माय म्हारो घणी रोजाना पाँच तीर नाक मऽसी झोड़ज। यदि म्हारी नाक मऽ भरई गयो तो हऊँ मरी जाऊँगा। एकासी हऊँ सुकाती जाऊँज। फिरी रोजाना ई म्हारा सी पूछऽज-कवो म्हारा समान तीर छोड़णऽ वाळो कोई दुनिया मऽ होयऽजा। डोकरी नऽ कयो-याणी मऽसी तू कई दिजे कि तुम भायेरऽ तो निकळो, देखी तो दुनिया मऽ आरूबी छे। असो बहाना सी ऊ ढूँढण जायऽगा, लो एक दुई महिना भायेर तो रह्यगा। ऊ निकळयो घर सी भायरऽ। एक किरसान हळ खेरतो थो। ओखऽ कयो- तू बठी जा अपुन बीड़ी पी लेवाँ, किरी असू हळ गेरजे। ओन कयो- भाई सूर्यनारायण निकळयो जवँ मनऽ तीर छोड्यो नऽ पवँ सूर्यनारायण अस्त होयऽगा तवं म्हारो तीर पड़ऽज। म्हारो तीर एतो अद्धर जायऽज। वहाँ सी ई तीरमारखौ पूछऽ- क्यों रे भाई तुखऽ कई विद्या या छे। हऊँ विद्या सिखणऽ निकळयो। ऊ बोळऽ-भाई मखऽ या विद्या याद छे कि-हऊँ सवा पहेर मऽ गंगाजी को पाणी लई आऊँज। एत्ती विद्या मखऽ याद छे। आग चल्यो कि -चळ भाई अपुन आगऽ चळा। ओखऽ साथ मऽ लई लियो नऽ आजऽ चल्यो। दूसरो आदमी मिल्यो रस्ता मऽ। तीर मारखँ पूछऽ क्यों भाई लुखऽकई विद्या याद छे कि-कोई नाग काटऽ तो गंगाजी को पाणी होयऽ तो हऊँ सरच उतार देऊँ। तीरमारखाँ ओखऽ बी लईनऽ चल्यो। किरी आग चल्या। फिरी तीसरो आदमी मिल्यो। ओखऽ पूछयो- कारे भाई तूखऽ कई विद्या याद छे रे। ओनऽ कयो-देखऽ भाई हऊँ असो शब्द को बाण मारूँग कि न्हार केतरी बी दूर बठयो होयऽ ओखऽ जाई नऽ बाण लगज। तीरमारखाँ नऽ ओखऽ बी साथ लई लियो। फिरी आगऽ गया। चवथो आदमी मिल्यो। तीरमारखाँ नऽ पूछयो- केरे भाई तुखऽ कोई विद्या याद छे। ओनऽ कयो- देख भाई हऊँ ज्योतिषी जाणूँज। ई पाँचई जन आग चल्या। बड़ी भारी राजा की राजधानी आई। राजा की छोरी रवऽ साँप नऽ काटयो थो। उनकी एकज छोरी थी। ओनऽ ऐलान कराड़ी दियो कि जी म्ळारी छोरी को साँप उतारी देगा, ओका सी याव कराड़ी देऊँगा नऽ राज भी दई देऊँगा। ई पाँचई पहुँच्या। इननऽ कयो- अपना पास सबई छे। एनऽ ज्योतिषी सी पूछयो-भाई एकी अवरदा केतरी थे, धुकधुकी थी। ज्योतिषी नऽ कयो-तीन दिन हुई गया, साँप काटण खऽ। सवा पहेर का ईच मऽ ऐको जहेर उतार देगा तो लेस छे नई तो मरी जायऽगा। अवै तीरमारखाँ नऽ साँप उतारण वाळा खऽ कयो- के रे भाई तू साँप उतार। ओनऽ कयो-भाई सवा पहेर का भित्तरऽ गंगाजी को पाणी लई आन तो हऊँ जहेर उतार देऊँगा। नई तो थारी छोरी मरी जायऽगा। गंगाजी को पाणी लावणऽ गयो। ऊ सवा पहेर का भित्तरऽ एक पहेर बीनी हुयो थो कि ळई आयो। ओनऽकयो-हऊँ भोत दौड़ी नऽ लायोज, अभी सवा पहेर तो कोई पहेर बी नी हुयो थो। राजधानी का पास आयो थो, सोच्यो कि थोड़ो आराम करी लेऊँ । कळस लईनऽ झाड़ निच्चऽ सोई गयो। ओखऽ नींद लगी गई। ऊ नांग आयो तो ओका माथा पर फण उठई नऽ डोकऽ के ई उठऽ तो एखऽ काटी खाऊँ। अवै सवा पहेर पूरो होणऽ आयो कि चारई जन कदराया कि सवा पहेर हुई जायऽगा तो ई छोरी मरी जायऽगा। तीरमारखाँ नऽ पूछयो- ज्योतिषी देखो तो अब्बी तो क्यों नी आयो। ओनऽ देख्यो नऽ कयो-सांप तो ओका उप्पर फण फेळईनऽ बठयोज। ऊ उठऽगा कि ई काटी खायऽगा। ऊ सब्द बाण वाळा खऽ कयो तीरमारखाँ नऽ- के रे भाई थारा

सब्द को बाण ऊ सरप खऽ लगा। ऊ आदमी खऽ नी लगऽ। ऊ तीर ओका फण मऽ लग्यो नऽ तीर चली गयो नऽ फण ओका मुँडा मऽ लगी, ई जागी उठयो नऽ कदराण्यो कि सवा पहेर नी पूरा हुई जायऽ तो एकदम गंगाजळ उनका पास लई आयो। ऊ साँप उतार नऽ वाळा नऽ सरप उतार दियो गंगाजी का पानी सी। अवँ पाँचई जन लड़ऽ। राजा नऽ कयो- तुम पाँचई मऽ सी कोई बी ओका सी यवि करी लेओ । पण पाँचई जन लड़ऽ कि हऊँ करूँ, हऊँ करूँ। अवै विक्रमादित्य नऽ ऊहार सी पूछयो- बता एमऽ याव करणऽ को धरम के को छे। हार बोल्यो कि- जेनऽ साँप उतार्‌यो ओखऽ याव करणऽ को धरम छे। कदी ऊ सरप नी उतारयो तो ऊ बचती कसी। ऊ राजा की छोरी बोळ्यी- सरप उतार्‌यो ऊ तो ओको बाप आयऽ। आनेऽ ओखऽ जीवनदान दियो। ऊ चार मऽसी कोई ळ्ी एक याव करी लडा। तीन बखत छोरी बोळ्यी। दासी नऽ खबर भेजी दी। नेगार पर डंको बजाड़ी दियो। सब सभा खुस हई गई। राजा नऽ बोल्यो-देख राजकुमारी कई बोळ, पठा ऊ कईं बोळऽनी। एनऽकयो-पळंग का पाया तू हुँकारा दऽ। एनऽ ओमऽ लार भरी दियो। ओनऽ कयो-मखऽ एक पहेर अरू बिलावणूं ज तू हुंकारा दऽ। ओनऽकयो- हव तू वार्ता कह्य। हऊँ हुँकारा देऊँगा। अवै राजा नऽ कयो- एक डोकरी रह्य, ओका माथा पर ऊँट की पोटळ्ई जानऽ कांधा नऽ पर मल्ल (पहलवानी)। कुस्ती लड़्ी रह्याज नऽ जो हवा आई तो एक किरसान हक छोड़ीनऽ झाड़ का वई जराक सोयो थी कि ऊ पोटळ्ई ओका डोका पर पड़ी। ऊ खड़ो हुयो नऽ ऊँट की पोटळी फेंकी थी नऽ ळय-अरे म्हारा डोळा नऽम कांकरो पड़ी गयो। पोटळ्ई खऽ हाल सी हेड़ीन फेंकी दऽ। कांकरो सरी नऽ डोऽा नऽखऽ मसकी लिया नऽ हा. गरेण लगी गयो। विक्रमादित्य पाया खऽ पूँछऽ कि-एकाभऽ कुनखऽ बळवान समझणूँ। ऊ पलंग को पायो बोझऽ-डोकरी खऽ समझणूँ कि डोकरी हुई नऽ ओका को कांधा मल्ल कुस्ती लड़ी रह्याज न। माथा पर ऊँटकी पोटर्ळ लईनऽ चरी रहीज। ओखऽ पहलवान समझणूँ। ऊ राजा की छोटी खड झाळ आयी। ओनऽ परूंग का पाया खऽलात मारीनऽ कयो कि- जेका डोका मऽ ऊँट की पोटळी पड़ी नऽ ओखऽ कचरो समझी नऽ गली मऽ फेंकी दियो नऽ हक गेरण लग्यो ओखड बळवाण समझणूँ की। दासीनऽ रूखो-चार वखत राणी बोळ्यी। नंगारा पर डंको पिटाण्यो। दिन हुई गयो। याव की तैरयारी होणऽ लगी गई। सारी सभा हुई गई। विक्रमादित्य सी छोरी को याव हुई गयो। अवै रात मऽ महेक मऽ छोरी पाणी की झारी नऽ फल-फूल लईनऽ गई। ज्हाँ विक्रमादित्य सोयके थो। विक्रमादित्य मऽ छोरी खऽ आवती देखीनऽ झूठमूठ मुँडा पर रूमाल नाखी लियो। नऽ सोई गयो। राणी समझी कि ई रात भरी का उजगर्‌या छे तो इनखऽ नींद आई गई। राणी बी सोई गई। ऊ बी उजगरी थी ओखऽ बी नीद लगी गई। विक्रमादित्य उठयो ओनऽ एक चिठ्ठी लिखी-तूनऽ देस देस का राजा नऽखऽ तकलीफ दी नऽ कोई सी बोली नी हँई, म्हारा मऽ विद्‌या थी तो मनऽ तुखऽ बोलाड़ी। लगीण लगावण कि गुनाहगार छे- मनऽ तुखऽ रानी बणई नी हुई। म्हारा पेट को छोरो पइदा करने नऽऊ मखऽ छरूऽ तवै तूखऽ लई जाऊँगा। अवै राणी का पल्ला संग चिठ्ठी बाँधी नऽरात खऽई अपनी उज्जैन नगरी आई गयो। अवै दिन निकट्‌यो कि रानी का पल्ला पर कि एनऽ चिठ्ठी वॉची। ये तो रड़ण लगी गई। दासीनऽन एका माय-बाप खऽ कयो कि विक्रमादित्य तो रात खऽ चली गयो नऽ बाई साब खऽई चिठ्ठी दई गयो। माय-बाप आया एका पास। उनखऽ बड़ो दु:ख हुयो। देस, देस का राजा अपना-अपना घर चली गया। एक साल निकण्ई गयो- ई राणी नऽ ओकी माय खऽ कयो- मायम्हारा पिताजी खऽई बात कय- कि हऊँ असी का तक रहूँगा तुम्हारा रहौ। मखऽ पाँच सौ घोड़ा देओ नऽ नौकर का हात पाँच सौ घोड़ा उज्जैन नगरी मऽ पहुँचाड़ी देओ। मखऽ दस हजार रूप्या देओ। नौकर नऽखऽ समझई देजो कि हमारो एक सवार आवऽगा, ओका सुपरत सब घोडा करी दिजो नऽ वापस चली आजो। एनऽ मरद को भेस लियो। घोड़ा पर बठीनऽ चली ये बी उज्जैन नगरी। एका पिताजी का हात कि चिठ्ठी नौकर नऽखऽ बताई। नौकर नऽन घोड़ा एका सुपरत करी दिया नऽ पछा आई गया। ऐनऽ दिन निकट्‌यो तो नौकर लगाया। कोई चंदी नाखऽज कोई पाणी पिवाड्‌ज, कोई चासे घोड़ा नऽखऽ नाखऽ। उज्जैन नगरी मऽ ऐनऽ ऐलान कराड़ी दियो। माई घोड़ा बिकनऽ खऽ आयाज, जेखऽ लेणु होयऽ म्हारा पास आवजो। उज्जैन नगरी का लोग लेवऽ खऽ आवऽ पसंद आवऽ तो लेवऽ ऐका पास आयऽ। एनऽ पाँच सौ रूपया कि कीमत होय तो हजार बतावणूँ दुई सौ कि होय तो चार सौ रूप्या बतावणूँ। असी दूनी कीमत बतावणूँ। लोग देखी-देखी नऽ पाछा चली जायऽ। विक्रमादित्य खऽ मालूम हुयो। या उज्जैन नगरी मऽ घोड़ा वाळो आयेक छे, जेका

पास घोड़ा बिकनऽ खऽ छे। विक्रमादित्य नऽ कयो- हऊँ की देखण ऽखऽ जाऊँज, ऊ गयो। मरद का भेस मऽथी पहचानी लियो कि राजा आज आई रह्या। खोब उनको स्वागत सत्कार करयो। ओनऽ कयो-हऊँ तुमखऽ म्हारा घोड़ा था। एक पर राजा विक्रमादित्य सवार हुई गया। एक पर ई मरद का वेस मऽथी तो सवार हुई गई। बातचीत करता चल्या ई जंगल मऽा घोड़ा नऽ की चाल बतई। पछा आया। एका सी बातचीत करणऽम राना खऽ बड़ी परसन्नता हुई। राजा नऽ एखऽ कयो-हमारा महेक मऽ आवजो। अपुण सार कौसा खेलाँगा। मरद का वेस मऽ गई। अवै जुआँ पर एक घोड़ो लगई दियो ऊहादी गई। दूसरो डोक अरूहारी गई, दूसरो घोड़ो लगाई दियो। ओनऽ दूसरऽ दिन अरू बुलायो। फिरी ओनऽघोड़ो लगई दिया। पाँच सौ घोड़ा हारी गई। एक घोड़ो रही गयो। विक्रमादित्य बोल्यो-ये ली घोड़ी तू दॉव पर लगाई दऽ। ई मरद को वेस लईनऽ राणी बाकी-देखो राजा एक घोड़ो तो मखऽ चायजे कथई अपना जावऽ खऽ। म्हारी स्त्री बड़ी सुन्दर छे तुम बारूड तो ओखऽ दाँव पर लगई देऊँ। ई विक्रमादित्य तो खुस हुई गयो। ऊ दाँव ळी राणी मरद को वेस लईनऽहारी गई। राजा हऊँ बड़ा उच्चा घर को आयऽ म्हारी राणी दिन खऽनी तुम्हारा घर रह्या। रात खऽ हऊँ छोड़ी जाऊँगा। विक्रमादित्य नऽ मरद को वेस लिये राणी को हाल पकड़यो नऽ सबई बतई दियो। अब रात हुई घर गयो। एनऽ अच्छी जरी को लुगड़ो पैरी ली। सबई सिंगार करी लियो नऽ एखऽ तो मालूम थे। रात मऽ चली गई। असो करता बारा महिना हुई गया। दिन मऽ मरद बणी जायऽ नऽ रात मऽ रानी को भेस लईन राजा का पास चली जायऽ। असो करता-करता एखऽ गरभ रही गयो। एखऽ नवो महिनो लग्यो तो राणी अवै राजा कि निसानी कई लई जावॉ। एक तो ओका हात को मुँदड़ो एनऽ मजाक-मजाक नऽ हेड लियो। एक रूमाल लई लियो। फिरी राणी नऽ विचार कर्यो। ई निसाणीं खड झूठो कई दे। कि म्हारो रूमाल बीनी हँई नऽ मूदड़ो बीनी हँई। एनऽ गाळ मऽ राजा को बटको भरी लियो। ओका दाँत गड़ी गया। बड़ो नाराज होणऽ लग्यो। राणी ई तुमन ऽ कॉई करयो। म्हारा गाळ मऽ जखम हुई गयो। रानी बोली-राजा मनऽ तो मजाक करी। असो बोलीनऽ राजा खऽ नींद लगी कि ऊ निकळई आई। रात मऽ एनऽ घोड़ो दौड़यो नऽ पिताजी कि राजधानी मऽ आई गई। माय खऽ कयो थो कि बाप खड कई गई थी कि दासी नऽ पूछऽ तो कई दिजो विक्रमादित्य आया था ऊ ससुराल गई। अवै आई तो दासी नऽ पूछड- आई गया बाईसाब काँ गया था ससुराल। ऊ बोक-हव। भगवान सी विनती करऽई राणी जो हऊँ सच्ची पतिव्रता होऊँगा तो भगवान म्हारी बात राखी दीजे कि मखऽ पुत्र दीजे। देखो तो एखऽ दस मास पूरा हुआ कि पुत्र हुयो। राणी का पिताजी खऽ बड़ी खुसी हुई। उनका सहेर मऽ धूमधाम मची गई। अवै असो करता-करता छोरो सोला वरस को हुई गयो। फिरी ऊ माय एक दिन न्हाईनऽ कूकू लगाव बऽ बठी। ऊ पूछणऽ लग्यो-कवो माय तू कूकू लगावज तो तू सधवा छे। हऊँ तो म्हारा नाना का राज मऽ क्हाँ रही रह्योज। म्हारा पिताजी कौ छे। ओनऽकयो-बेटा तू सोला वरस की छे, बीस बरस की हुई जा। फिरी हँऊ थारा पिताजी बताऊँगा। फिरी छोरा नऽ जिव्द पकड़ी लई बता मखऽ। ओनऽई चिठ्टी धरी थी ऊ बतई दी। ओमऽ लिखेल थी ऊ सब वाची लियो। छोरा नऽ कयो-हऊँ म्हारा पिताजी का रजमऽ जाऊँगा। पण तूई बता कि हऊँ उनका पेट को आय। बेटा हऊँ बिल्कुल पतिव्रता छे। थारा बाप को आयऽज तू। अच्छो तो हऊँ अवै म्हारा बाप का राजमऽ जाऊँगा। नानाजी खऽ ओनऽ कयो- पाँच सौ रूप्या कथील का देओ नऽ ओपर चाँदी को बरक (धुंद) लगाड़ी देओ। नऽ दुई हजार अच्छी चाँदी का दई देओ। ऊ गयो घोड़ा पर रूप्या लाईनऽा माय खऽ पूछयो- म्हारा पिताजी कसा छे नऽ कौ बठेळ छे। माय नऽ कयो- बेटा ईच मऽ सी बठज ऊ थारा पिताजी आयऽ दूसरी तरफ थारा सौतेला भाई आय नऽ ओकी बाजू मऽजी बठेळ छे ऊ मंत्री आयऽ। बेटा नऽ कयो- अच्छा हऊँ जाईनऽ प्रणाम करूँ। ऊ उज्जैन मऽ पहुँची गयी। एक डोकरी माय भायेरऽ रह्यती थी। माय हऊँ पाँच रूप्या रोज देऊँगा तू मखऽ रोज सोनऽ दीजे नऽ म्हारा घोड़ा खऽ चंदी पाणी दाऊ देजे। माय नऽ हव कई दियो। अवँऊ वनजारा को दुल्लो को सिंगार करीनऽ सिप्रा का घाट पर बठी गया नऽ खोब रड़ऽ। लाईनऽ कयो- तुम्हारा रूप्या का जेतरा जेवर छे, ओका दूना हऊँ देऊज । तुम उखऽ दई देओ। असो करी नऽ ओनऽ ओका सब कथील का रूप्या बाटी दिया। अवै यो तो डोकरी माय का घर आई गयो। अवै ऊ बाईनऽ का आदमी काम पर सी आयाज। बाईनऽ बड़ा खुशी-खुशी बतायो कि देखो जी चीज तुम पचास रूप्या मऽ लाया था ओखऽ हमनऽ सौ रूप्या मऽ ऐची दी। आदमी नऽन ऊ रूप्या कूप्या तो कथीळ का निकल्या। फिरी

उननऽ पूछयो–तुम का सी लाया। बाईनऽ न पूछयो तो बोली– हम पाणी लेणऽ छीपराजी पर गया तो वहाँ एक बंजारो दुल्हो सुन्दर सो बठयो थो। रोई रह्यो थो कि ओकी वरात कोई नऽ लूटी ली। तो हमनऽ अपना जेवर ओखऽ ऐची दिया। अवै सब रूप्या राजा का यहाँ कचेरी मऽ जमा हुआ। छोरा नऽ सोच्यो– कि अपुन अपनर पिताजी खऽ का दरसन करां नऽ रूप्या नऽ की बात भी सुना। फटको कुरतो नऽ लंगी पैरी ली नऽ जोड़ा नऽ का हाँ सब गाँव का था जाई नऽ बठी गयो। बाप खऽ परणाम करी लियो। लोगनऽन कयो– एक ठग आसो आयो कि कथीळ को रूप्या पईनऽ सबई सोचा का जेवर लई लियो। फिरी राजा नऽ हुई पुलिस नऽ ख हुकुम दियो कि कुण ठग आयऽ जंगळ मऽ सबई गोव मऽ हौ बी होय तुम पकड़ी नऽ आओ। एनऽ हुई पुलिस नऽ खऽ देखी लिया। सभा समाप्त हुई गई। सब लोग अपना–अपना घर चल्या। ई दुई पुलिस की गया। उबी उनका पीछऽ चल्यो कि देखाँ तो खई ई का रह्यज। हुई चिपकई का घर मऽ घुसी गयो। तो ओनऽ की देखी नऽ अपना घर डोकरी का रहा आईनऽ सोई गयो। एनऽ सौन्दारा सी उठ्योनऽ नाई को उस्तरो तेक कंथी सबई खरीद लियो नऽ नाई वणी गयो। छोरानऽ झट दीसी नऽ बावड़ी देखी। इनको हात पकड़ी लियो नऽ कयो– देखो हऊँ नयो–नयो नाई आयोज इना सहरे मऽ म्हारा हाल सी एक कॉवा हजामत बनाड़ी लेओ। पसंद आई जाय तो। एनऽ अच्छी कटींग बनई नऽ उनका सब सरीर खऽतेक मालिस करी। साबुन का बट्टा दिया कि जाओ न्हावा। ओनऽ कयो–म्हारा पास एक धोती छे तुम ओखऽ लपटी लेओ। न्हाई नऽ उप्पर आई नऽ कपड़ा पेरी लीजो। ऊ वावड़ी मऽ उतर्‌या साबुन लगाणऽ लग्या कि एनऽ इनका कपड़ा उठाया। अपनी पेटी उस्तरो सामान सब फेंकया नऽ डोकरी का रहो आई गयो। न्हाई नऽ उप्पर आया तो देखज कपड़ा नी हँई। विचारा आवऽ तो कसा। व्हॉज बठी रह्या छोरो डोकरी घर आयो नऽ सब पुलिस वाला नऽ का कपड़ा कोठरी मऽ भरी दिया। नऽ एनऽ पॉडया पिंगल्या चकरी धरी हात मऽ पंचांग की वेस लाईन ऊ पुलिसवाळ्या नऽ का घर आयो। उनकी बौरो नऽ खऽ कयो– तुम्हारा आदमी चोर ढूँढण गयाज। चोर मिळी जायऽगा। उनखऽ राजा भी भोत इनाम देवऽगा। पण ऊ कळ आवऽगा। आज तो चोर तुम्हारा आदमी सरी का आवऽगा नंगा फुटड़गा। तुम ओखड अच्छी भायरी लईनऽ मारजो। ऊ आया रात खऽ। इन्नऽ देखी लियो, सनकड़ी का उजाळ्या मऽ देख्यो। पण ई अपना धणी सरी देखायज पण धणी नी हँई। ऊ बाना खोली खोली नऽ भित्तरऽ घुस्या तो ई मारणऽ लगी। अकै अड़ोस–पड़ोस कयाकि–तुम पागळ हुई गई नऽ काँई तुम्हारा आदमी आयऽ। फिरी उनखऽ कपड़ा दिया। पेरी नऽ ऊ दरबार मऽ गया। ऊ छोरो बी गयो कि कॉई होयऽज। ऊबी फाटका कपड़ा पेरीनऽ लोगनऽ का जोड़ा नऽ का रहा बठी गयो। अवै उननऽ राजा खऽ कयो–देखो भाई हमखऽ ठगनऽ न असो ठग्यो। तो हवलदार साब कयज–हऊँ आज ओखऽ देखूँगा। नऽ ठग खऽ पकडूगा। ई छोरा नऽ सुनी लियो। ई छोरो व्हाँ सी ओतरी बखत उठीह गयो। एक अच्छी जरी की साड़ी लई ली, फूक लई लिया, अगरबत्ती लई ली, सोना का जेवर पेरी लिया। चार बजे रात सी गाँव मायेर देवी का मंदर मऽ गयो। लुगई को भेस लाईनऽ पूजा करण गयो। अवै दरोगा साब गस्ती लगावता था। ओनऽ देखी नऽ कयो–कॉजाई रहीज लाई यहाँ तो भोत बड़ी ठग घूमी रह्योज। ओनऽ कयो– हऊँ तो साहूकार की वऊ आयड् म्हारो वरत छे। म्हारा ससरा नऽ कयोकि हवलदार साब गस्त लगई रह्याज। कोई डरनी हैई तुम चली जाओ। देखो बाई ठग ओल्याँग सी आवऽकरऽ लो तुम हमखऽ पुकारजो। हऊँ यहाँ आसपास छे। जराग भाग जाईनऽ ओनऽ झूठोज पुकारजो–दौड़ो हवलदार साब, दौड़ो ठग आयो। हवलदार साब घोड़ा खऽ दौड़ाता लाया ओको पास। ओनऽ झूठो कयो–साब तुमखऽ देखीनऽ इनी दसा गयोज। फिरी उन्नऽ उनी दिसा घोड़ो दौड़ायो। फिरी ऊ पछा आया तो कयज– पवड़ो हवलदार साब ई तो इनी दिसा गयाज। असो ओखऽ अल्याँग सी वोल्यौग खोब दौड़ायो। ऊ पसीना मऽ लथपथ हुई गया। फिरी ऊ लोकी– ई म्हारा पर हमलो करऽज, तो तुम असा करो, म्हारा कपड़ा पेरी लेओ नऽ हऊँ तुम्हारा पेरी लेऊँज। जवें ऊ पकड़ावगा। देखो तो हवलदार साब नऽ स्त्री को सिंगार भेस लई। लियो नऽ झट घोड़ा पर बठी नऽ खाना हुई गया। हवलदार देखो तो आरती लईनऽ देवी का पास उभया था पण कोई देखाय नी। असो करता–करता दिन निकल्यो सबई लोग दिसा जंगळ वाळ्या आया। हवलदार साब खऽ हँसऽ कि ई कॉई आयऽ। उन्नऽ फिरी कयो– देखो भाई चोरनऽ तो मखऽ बी डगी लियो। छोरो तो घोड़ा खऽ छोड़ीनऽ ज्हाँ रह्यतो थो व्हॉ चळी गयो। अरू रात खड दरबार भराणी। देखो तो हवलदार साब आया कि–मखऽ

बी ई ठम नऽ ठगी लियो। चीफ साब कयकि-आज हऊँ चोर खऽ गस्त लगाऊँगा। ई छोरा नऽ सुणी लियो। आयो भगवा कपड़ा लई नऽ एक चिमटो लई लियो। एक आदमी खड पटई नऽ एक मोटो लाकड़ो लईनऽ ओखड चार-पाँच रूप्या दईनऽ कयो कि ई वट का वृक्ष का निच्चऽ घुणी लगई। ओनऽ घुणी लगई दी, मृगछाला बिछई दी। दुई चिलम नऽ लई ली। एक मऽ नसो भरी दियो नऽ एक मऽ सादो गांजो भरी दियो। अवै चीफ साब खऽ दुई बजे रात खऽ बुलायो कि तुमखऽ रात भरी ड्यटी देबूँज तो तुमई शिवबूटी (चिलम) जरा सी पी लेओ तो तुमखऽ नींद नी आवड कि बड़ी फुरती रह्यगा। खूब नस्या वाली चिलम ओखऽ दई दी। नऽ गाँजा वाली खुद लई ली। एनऽ तो सट लगई कि एकदम नसा का मारऽ बेहोस हुई गया। एनऽ तो कॉई कर्‌यो एका भगवा कपड़ा एखऽ पेरई दिया नऽ एका कपड़ा खुद पेरी लियो। ओका नाक की जरा सी दाड़ी काटी ली। ये तो नसा मऽ बेहोस पड़यो थो। ई छोरो तो एका घर आई ग्यो ज्हाँ रह्यतो थो। देखो तो दिन निकल्यो गाँव वाळा नऽन चीफ साब खऽ पैचाणयो। राजा खऽ खबर हुई। राजा नऽ वैध खऽ बुलई नऽ नसो उतारड्यो। देखो तो राजा खऽ बड़ी फिकर हुई कि कॉई होयऽगा। भगवान ई तो बड़ो भारी ठग छेजी सबख ठगी लियो। रात खऽ कचेरी बठी। ऊ छोरो बी आई गयो। फाटका कपड़ा पेरी नऽ जोड़ा नऽ का पास बठी गयो कि कॉई बात होयज कि कॉई नई। अवै राजा नऽकयो- आज हऊँ गस्त लगाऊँगा। जंगल मऽ बी, गाँव मऽबी, सबई दूर लगाऊँगा नऽ माथा पर गठरी नऽ धोबेण को रूप धरीनऽ उज्जैन नगरी का तळाव मऽ कपड़ा धोणऽ आयो। व्हाँ कपड़ा नऽ की आवाज राजा खऽ आयी। राजा नऽ पूछयो- क्यो आई तू एतरी रात खऽ यहाँ जंगळ का तळाव मऽ कपड़ा धोणऽ क्यों आई। गॉव मऽ ठग छे। ओनऽ कयो- देखो साब दिन खऽ तो हऊँ बड़ा-बड़ा साब नऽ का कपड़ा धोऊँज। एक साहूकार की वऊ खऽ बच्चों हुयोज। ओका खराब कपड़ा रात खऽ हऊँ रहौ धोई जाऊँज। चोर हमारो कोई करऽगा। हमारा पास काई छे। जी हमारा सी लेवऽगा। देखो बाई तुमखऽ कोई बी देखाय कोई बी आवऽ मखऽ पुकारजो। ई जरा आग गया कि ई झूठीज बोली- राजा साब दौड़ो-दौड़ो ठग आयो। ये माटी कि हॉडली खऽ खड़ी लगई नऽ लई गई थी। ओखऽ ताळाव मऽ नाखी दी नऽ बठऽ-बठऽ कय-ई छे, ई छे नऽ पाणी उछाऽती जायऽ। ई तुम्हारा धाळ सी पानी मऽ कूदी पड़योज नऽ माथा खऽ धोती लपटी ली। राजा कूदण लग्या तळाव मऽ कि ओखऽ पकडूँ हऊँ। एनऽ छोरा नऽ हाथ पकड़ी लियो कि ई कपड़ा नऽ सुद्‌दा कसा जाओगा, सब गीळा हुई जायऽगा नऽ भारी बद्‌द हुई जायगा हऊँ एक धोती को टुकड़ो देऊँज तुम लपटी लेओ। राजा नऽ कपड़ा उतारी नऽ धड़ पर धरी दिया नऽ आधी धोती को कपड़ो पेरी नऽ तळाव मऽ कूदया। देखो तो ऊ ज्यों तीरऽ हॉडळी झकोका का मारे पछी-पछी जाती जायऽ। छोना नऽ राजा का सब कपड़ा पेरी लिया नऽ उनका घोड़ा पर सवार हुई गयो। जेतरा आला नऽ सूका कपड़ा था ऊसब लई आयो। गाँव भायेर एक तरफ पोटळी फेंकी नऽ यो राजधानी मऽ चली गयो। नौकर चाकर नऽ खऽ कयो-ई घोड़ा खऽ घुड़साळ मऽ बांधी देओ नऽ हऊँ थकी गयोज तो हात पकड़ी नऽ सोणड की जगह लई चलो। कोई बी आय नऽ कव-हऊँ राजा आय तो आवणऽ मत दीजो। ठग भोत पलकी गयोज। एनऽ भित्तरऽ सी बान्नो बंद करी दियो नऽ बपा का पलंग पर सोई गयो। राजा इनी पार तैरता आयो तो कपड़ा बी नी मिळऽ। राजा राजधानी मऽ गीता कपड़ा पेरेळ आयो। देखो तो दरबान नऽ खऽ हौ कमारऽ बान्नो खोलो। दरवान बोल्या-भाई तू कुण आयऽ नऽ एती रात खऽ काई कयज। ऊ कय-हऊँ राजा आयऽ, बान्नो खोलो। नौकर बोल्या- हमारा राजा तो आई नऽ सोई गयाज, तुम कौ का राजा आयऽ। अरे भाई तुम बान्नो तो खोलो तो सई हऊँराजा आयऽ। एक बुड्‌डा दरवान नऽ बोल्यो- खोलो तो सई देखा कुण आयऽ। बान्नो खोल्यो तो पैचाण लियो कि ई अपनाज राजा आयऽ। उन्नड कयो- तुम्हारा सरीका छे, तुम्हारो घोड़ो हमनऽ बौध्योज ऊ व्हॉ सोई गयोज नऽ हमखऽ बोली गयाज कि कोई आय तो बान्नो-बान्नो खोळूँज। एक दूसरा कपड़ा बुलाया नऽ पैर्‌या। सबई सोना खऽ हथियार लई नऽ महेल का आसपास तैनात करी दी। सबई सहेर का लोग इकठ्ठा हुई गया। राजा अटारी मऽ गयो। ओखऽ कयो- बान्नो खोळा ऊ बान्नो नी खोळऽ। फिरी सुतार नऽखऽ बुलई मऽ कयो-ई बान्नो फोड़ो कुण छे भित्तरऽ जी बान्नो नी खोळतो। छोरानऽ कयो-म्हारो जीव मखऽ बक्छो, म्हारा पर हति आर मत चलावओ। म्हारी एक विनती सुनो तो हऊँ बान्नो खोळूँज। ओखऽ मालूम छे कि ई भोत क्रोध मऽछे। बाप आय तो कॉई हुयो मनऽ वी एखऽ भोत ठगयोज राजा नऽ हव कयो। एन जरा सो बान्नो खोळी नऽ हात भायेर

करीनऽ ऊ चिठ्ठी दी। ऊ राजा कि लिखेल चिठ्ठी माय सी लई आयो थो। ऊ राजा खऽ दी। राजनऽ चिठ्ठी वाची कि ओका डोका नऽमऽ सी आंसू पडंग लगी गया। ओखऽ ऊ सबई बात नऽ याद आई गई कि हऊँ ई चिठ्ठी दई आयो थो। छोरा नऽ बान्नो खोली नऽ बाप का पॉय नऽम माथो धरीनऽ पॉय पकड़ी लिया। राजा नऽ ओकी पूट थपकारी नऽ कयो- सावास बेटी, मनऽ जसो कयो थो ओसोज तू आयऽ। पण धारी माय म्हारा रहौ आई ली तो तू म्हारो बेटो कसो हुयो। ई म्हारी माय खऽ पूछो। हऊँ कॉई जाणूँ। नौकरचाकर नऽ हुकुम दियो जाओ फळांणा-फळांणा सहेर मऽ ऐकी माय छे जाओ लई आवऽ। छोना नऽ कयो-म्हारी माय नौकर चाकर नऽ का साथनी आवऽ की। फौज फाटो लाव लस्कर, मुनीम मंत्री नऽ तुम्हारो ई बड़ो छोरो जायऽ नऽ लावऽ। म्हारी माय उज्जैन नगरी का राजा विक्रमादित्य की राणी आयऽ। नौकर नऽ का साथ नी आवऽ सवाई नऽ खऽ राजा नऽभेग्यो राणी खऽ लेवऽ। ऐनऽ राजा नऽ कॉई कर्‌यो गॉव भायेर दुई उच्चा-उच्चा चबूतरा बनाड़ी दिया की गॉव का सबई लोग नऽ खऽ दिखऽ। गॉव मऽ डोडी पिटाड़ी दी कि सबई प्रजा गॉव भायेर जंगळ मऽ आई नऽ बठणूँ चायजे। राणी आई कि एक चबूतरा पर राणी खऽ खड़ी करी दी नऽ दूसरा चबूतरा पर राजा। राणी खऽ राजा पूछऽज - ई म्हारो छोरो कसो, जिना दिन सी याब कर्‌यो उना दिन सी मनऽ धारो मुँडो नी देख्यो तो ई म्हारा पेट को छोरो कसो राणी सब प्रजा की तरफ हात उठई नऽ बोळी- कि फळांणा संवत् मऽ एक मरद घोड़ा लईन आयो थो कि नई। सब परजा नऽ हात उच्चा करी दिया। ई बारा महिना घोड़ा वाळा कि नगरी मऽ रह्‌यो थो कि नई नऽ राजा सी सबई घोड़ा सार-पौसा मऽहारी गई थी कि नई। सबई नऽन हव कयो। फिरी मऽ कयो-सबई हारी गयो तो मनऽ कयो कि हऊँ म्हारी राणी खऽ दॉव पर लगाऊँज। राजा नऽ मंजूर करयो कि हव हम तुम्हारी राणी खऽ रखी लेऊँगा। मनऽ राजा सी करार कर्‌यो थो कि हऊँ रात खऽ तुम्हारा पास रहूँगा दिन मऽनी। राजा नऽ मंजूर करयो कि हव हय तुम्हारी राणी खऽ रखी लेऊँगा। मनऽ राजा सी करार कर्‌यो थो कि हऊँ रात खऽ तुम्हारा पास रहूँगा। दिन मऽनी राजा नऽ मंजूर करयो। रात खऽ राणी बनी नऽ हऊँ इनका पास रही नऽ दिन खऽ मरद को वेस लईन हऊँ उज्जैन नगरी मऽ फिरी। उज्जैन नगरी कि सब परजा नऽबी लग्यो कि हऊँ राजा का हॉ सी निकळई। मनऽ ई रूमाळ नऽ मूदड़ो पैचाण बतई राजा खऽ। मूंदडो नऽ रूमाळ देखी नऽ मंजूर नी करयो राजा नऽ कि असा तो भोत आई जायऽज। राणी नऽ फिरी ऊ यादगारी बतई कि मनऽ गाळ मऽ बटको भरयो थो नऽ कयो थो कि मजाक करी, मजाक करी। राजा खऽयाद आई गई ऊ वात।

राजा बी उतर्‌या राणी बी उतरी। राजा नऽ राणी खऽ छाती संग लगई। राणी उनका पॉय नऽ मऽ पड़ी गई। महेरू मऽ गया नऽऊ छोरा खऽराज दई दियो। राजा राणी सुख सी रह्‌या नऽराज कर्‌यो।

भावार्थ

एक राजा और उसकी बेटी थी। उससे राजा ने पूछा- बेटा, तू अपने आप वर पसन्द करोगी कि मेरी इच्छानुसार। उसने कहा-पिताजी मैं अपने आप पसन्द नहीं करूँगी और न ही आपकी पसन्द से। मुझे एक रात में जो चार वाक्य बता देगा, उससे ही शादी करूँगी। राजा ने दूसरे देशों के राजाओं को पत्र लिख दिया कि मेरी बेटी का स्वयंवर है। जो उससे एक रात में चार वाक्य बोल देगा, हम हमारी बेटी का विवाह उससे कर देंगे तथा हमारा साम्राज्य, धन-दौलत सब कुछ दे देंगे। फिर स्वयंवर आयोजित किया। रात में ही सभा बैठी। सब राजा एक-एक करके आए, पर वह किसी से भी नहीं बोली। ऐसा करते-करते एक वर्ष बीत गया। फिर राजा विक्रमादित्य आए। उसने सुना कि ये राजा उज्जैन के हैं। वह भी वाक्य बुलवाने के लिए आया है। रात में ये भी बैठ गई और राजा भी कुर्सी पर बैठ गए। उसने कहा- राजकुमारी बोल। उसको वीर आता था तथा त्रिशूल में वीर भर दिए और कहा- मैं तुझे कहानी कहती हूँ, तू हुँकार देना, क्योंकि मुझे रात बितानी है। इसने कहा-हो और हुँकारा देने लग गया। देखो भाई! चार लड़के विद्या सीखने परदेश गए। वहाँ से वापस आए तो धन कमाकर लाए। चलते-चलते उन लोगों को रात हो गई। गाँव दूर था, जंगल में ही रह गए। उन्होंने कहा- भाई हम तीन लोग सोते हैं और एक व्यक्ति पहरा देगा। सुतार के लड़के का नम्बर था, उसने कहा- मेरी रात कैसे बीतेगी। उसने एक लकड़ी ली और उसकी एक पुतली बना दी। उसका पहर बीता तो उसने सुनार के लड़के को जगा दिया। उसने कहा- इसने लकड़ी की पुतली बनाई है तो मैं इसको सब जेवर पहना

देता हूँ। तो चाँदी के सब जेवर बनाकर पहना दिए। तीसरे पहर उसने कोलई (बुनकर) को जगा दिया। उसने कहा- ये दोनों ने ऐसा काम किया है तो मैं अपनी रात कैसे बिताऊँगा। तो उसने उस पुतली का ब्लाउज बनाकर पहना दिया। चौथा पहर हुआ कि उसने ब्राह्मण के लड़के को जगा दिया कि भाई अब तू जाग, मैं सोता हूँ। चौथा पहर होने पर ब्राह्मण का लड़का उठा। वह सुबह के काम से निपटा, नहाया। जब तक जरा-जरा सा उजाला हो चुका था। उसने उस पुतली को खड़े हुए देखा। उसने कहा- ये तीनों ने अपनी विद्या दिखायी, मैं भी बतलाऊँ कि मैं क्या सीखकर आया। उसने भी प्राणायाम करके उसमें प्राण डाल दिए। वह गोल-गोल करके घूमने लगी वहाँ पर। फिर वो तीनों जागे। ये चारों लड़ने लगे कि ये मेरी पत्नी है, ये मेरी पत्नी है। विक्रमादित्य उस त्रिशूल से पूछते हैं- देख इसमें किसके सच्चे हाथ थे, जिससे उसको विवाह करना चाहिए। त्रिशूल ने कहा- जिसने इसमें प्राण डाले, उसे ब्राह्मण की औरत होना चाहिए। उस राजा की लड़की को गुस्सा आया तो उसने त्रिशूल को लात मार दी। उससे कैसे विवाह कर ले, वह तो उसका पिता हुआ। उसमें तो उसने प्राण डाले हैं। ये तीन में से कोई भी उससे विवाह कर ले। एक बार राजकुमारी बोली, दासियों ने कहा। नगाड़ा पर डंका बजा कि राजकुमारी एक बार बोली। फिर विक्रमादित्य ने कहा- देखो राजकुमारी बोलो, पर वह नहीं बोली। फिर दासी वहाँ बैठी थी, उससे कहा-देख दासी मैं कहानी कहती हूँ, हुँकारा देना। मुझे रात बिताना है। दासी ने कहा- हाँ राजा मैं हुँकारा देती हूँ, कहानी कहो। एक राजा, ब्राह्मण, माली और बनिया के लड़के, चारों विद्या सीखने (पढ़ाई) परदेश गए। एक शहर में आए। वहाँ राजा की लड़की का महल था। उसके ओटले पर वह सो गया। ये वापस घर जा रहे थे। ब्राह्मण का लड़का बोला- मैं दाल-बाटी साल भर से खाता रहा तो मेरी माँ से कहूँगा कि अच्छी दाल-चावल, रोटी बनाओ। बनिया का लड़का बोला- मैं मेरी माँ से कहूँगा कि अच्छा ताजा घी डालकर पूरन-पोली खिलाओ। माली के लड़के ने कहा- मैं मेरी माँ से कहूँगा कि अच्छी मेथी की भाजी दाल में डालकर ज्वार की रोटी के साथ खिलाओ। राजा के लड़के ने कहा-मैं अपनी माँ से कहूँगा कि मुझे पाँच पकवान बना के खिला। राजा की लड़की ये सब सुन रही थी। उसने नौकरों से कहा-जाओ इनको मेरे पास लाओ। रात को पहरा देना। बड़ी सुबह से उठकर ये चले न जाएं। चारों लड़कों को ऊपर बुलाया। ब्राह्मणी को बुलाया-बाई ये लड़के को ले जा। इसको दाल-चावल, रोटी-भाजी बनाकर खिलाना। बनियानी को बुलाया-बाई तू इसको ले जा बनिया का लड़का है। अच्छी पूरन-पोली में ताजा घी डालकर खिलाना। मालिन को बुलाया-बाई ये माली का लड़का है, ताजी मेथी दाल में डालकर ज्वार की रोटी खिलाना। उस राजा के लड़के के लिए उसने खुद पकवान बनाये। अब ये चारों आए कि अपन तृप्त होकर भोजन कर आए हैं। आज यहीं आराम करेंगे, कल जाएंगे। अब चारों आपस में बात करने लगे। राजा के लड़के ने पूछा- ब्राह्मण तेरी दाल-चावल, रोटी कैसी बनी थी। उसने कहा-दाल-चावल, रोटी तो अच्छी बनी थी, पर लगता है सामान किसी तुच्छ घर से आया था। बनिये से पूछा- पूरन-पोली और ताजा घी तुझे मिलाया नहीं। उसने कहा- भाई पूरन-पोली तो अच्छी बनी थीं, उसमें ताजा घी भी था, पर ऐसा लगा कि चुहिया का बच्चा गिर गया हो, ऐसा स्वाद आया। माली के लड़के से पूछा- क्यों रे तेरी मेथी की दाल और ज्वार की रोटी अच्छी बनी कि नहीं। भाई ज्वार की रोटी और भाजी तो अच्छी बनी थी, परन्तु दाल में ऐसा लगा कि एक-दो बासी भाजी के दंडे डलें हों। अब ब्राह्मण का लड़का राजा के लड़के से पूछता है- क्यों भाई तेरे पाँच पकवान कैसे बने हैं। भाई पाँच पकवान तो बहुत अच्छे बने, पर बनाने वाली दूसरे आदमी के पेट से थी। ये सब राजा की लड़की ने सुन लिया। उसने कहा-कोई है यहाँ पर। दास-दासी, नौकर ने कहा- हाँ, हम हाजिर हैं। जाओ, इनका पहरा दो। बड़े सुबह ये उठकर जाते न रहे। एकदम सुबह से उठे कि नौकरों ने कहा- भाई तुम बाई साब से मिलकर जाना। चारों को गिरफ्तार कर लिया। ब्राह्मणी को बुलाया- तूने दाल-भाजी, रोटी कैसे बनायी। उसने कहा- बाई खाना मैंने सब अच्छी तरह से बनाया, परन्तु कल ही तेली के घर से सोदा सामान आया तो उसमें मोटा चावल और लाल गेहूँ था। उसकी बात सच निकली। ब्राह्मण के लड़के को छोड़ दिया। बनिया की पत्नी को बुलाया। उससे कहा- बाई तुमने ताजा घी डालकर पूरन-पोली खिलाई थी या नहीं। उसने कहा- हाँ, मैंने तो ताजे घी की ही पूरन-पोली खिलायी थी। घी तो ताजा गरम ही किया था, पर उसमें गरम करते समय चुहिया गिर गई, जल्दी से निकाल कर मैंने फेंक दी थी। बनिये के लड़के को भी छोड़ दिया कि भाई तेरी बात भी सत्य हुई। मालिन को बुलाया, उससे पूछा- क्यों बहन, तूने ताजी भाजी की दाल और ज्वार की रोटी

इसको खिलायी। मैंने ताजी भाजी दाल में डाली और रोटी खिलायी, परन्तु मेरी छोटी सी बेटी है वह खेलते-खेलते आयी और कल की बासी भाजी पड़ी थी, उसमें डाल गई। उसको भी छोड़ दिया कि भाई तेरी बात भी सच्ची है। राजा के लड़के को गिरफ्तार रखा। ये एकदम से अपनी माँ के महल में गई। माँ के ऊपर बैठ गई और पूछने लगी- बता मैं किसके पेट की हूँ। कटार उसके ऊपर रख दिया कि सच बोल नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगी। उसने कहा- बेटा तेरे पिता लड़ाई पर गए थे। बारह माह में आए। तो बेटा तू बिस्तर लगाने वाले आदमी की है। विक्रमादित्य ने कहा- देख दासी इसमें किसे होशियार समझें। दासी ने कहा- ब्राह्मण का लड़का जो पहचान गया कि वह नीच घर का सामान है। उस राजकुमारी ने दासी को लात मारकर कह दिया कि उस माली के लड़के को शाबाशी देना चाहिए कि भाजी के अन्दर बासी भाजी के डंगालों को पहचान लिया। इतने में फिर डंकों पर नगाड़ बज उठे कि राजकुमारी दो बार बोली। फिर उसने कहा- देखो राजकुमारी कुछ तो बोलो- पर वो कुछ नहीं बोली। फिर राजकुमारी के गले में हार था, जिसमें वीर भर दिया कि हार तुम हुँकार देना, हमको रात बिताना है। उसने हाँ कह दिया। राजा बोला- एक तीर मारखाँ रहते थे। उसकी पत्नी के नथ में से पाँच बार तीर छोड़े। वह दुबली होती जाए। औरत कहती कि मेरी नाक में तीर भर गए तो मैं मर जाऊँगी। एक बुढ़िया उसके यहाँ बैठने आयी। उसने पूछा-बहन तुम सूखती क्यों जा रही हो? तेरे घर में तो सब बात का सुख है। उसने कहा- माँ, मेरा पति रोज पाँच तीर नाक में से छोड़ते हैं। यदि नाक में चले गए, तो मैं मर जाऊँगी। इससे मैं दुबली हो रही हूँ। फिर रोज मुझसे ये पूछते हैं कि मेरे समान दुनिया में कोई तीर छोड़ने वाला होगा क्या? तो मैं कह देती हूँ कि कोई नहीं होगा। बुढ़िया ने कहा-कल तू कह देना कि तुम बाहर तो निकलो और देखो दुनिया में और भी हैं। इसी बहाने वह ढूँढने जाएगा तो एक दो माह बाहर तो रहेगा। वह घर से बाहर निकला। एक किसान खेत में हल चला रहा था। उसको कहा-तू बैठ जा, अपन बीड़ी पी लें। फिर हल गेरना। उसने कहा-भाई जब सूर्य देवता निकलते हैं, तब मैं तीर छोड़ता हूँ और जब अस्त होते हैं, तब मेरा तीर गिरता है। मेरा तीर इतना ऊपर जाता है। वहाँ से ये तीर मार खाँ पूछता है- क्यों भाई तुझे कुछ विद्या याद है। मैं विद्या सीखने निकला। वह बोला-भाई मुझे तो यह विद्या याद है कि मैं सवा पहर में गंगाजी का पानी ले आता हूँ। सिर्फ इतनी विद्या मुझे याद है। फिर आगे चला। चलो भाई अपन आगे चलें। उसको साथ में ले लिया और आगे बढ़ा। रास्ते में दूसरा आदमी मिला। तीर मारखाँ ने पूछा- क्यों भाई तुझे कुछ विद्या याद है। हाँ, कोई नाग काटे और गंगाजी का पानी हो तो मैं साँप उतार देता हूँ। तीर मारखाँ उसको लेकर भी चला। फिर आगे चले तो तीसरा आदमी मिला और उससे पूछा-क्यों रे भाई, तुझे कुछ विद्या याद है। उसने कहा- देख रे भाई, मैं ऐसे शब्द का बाण मारूँगा कि शेर कितनी भी दूर बैठा होगा, उसको जाकर लग ही जाएगा। तीर मारखाँ ने उसको भी साथ ले लिया। फिर आगे चले। चौथा आदमी मिला। तीर मारखाँ ने पूछा-क्यों रे भाई, तुझे कुछ विद्या याद है। उसने कहा-देख भाई, मैं ज्योतिष विद्या जानता हूँ। ये पाँचों लोग आगे चले। एक बड़े राजा की राजधानी आयी। राजा की लड़की को साँप ने काटा था। उसकी एक ही लड़की थी। उसने घोषणा कर दी थी कि जो मेरी लड़की का साँप उतार देगा, उससे उसकी शादी कर दूँगा तथा राज्य भी दे दूँगा। ये पाँचों पहुँचे। इन्होंने कहा- अपने पास सब विद्या है। इसने ज्योतिषी से पूछा- भाई इसकी उम्र कितनी है। सिर्फ धड़कन चल रही थी। ज्योतिषी ने कहा-तीन दिन हो गए साँप काटने को। सवा पहर में इसका जहर उतार दोगे तो ठीक है नहीं तो मर जायेगी। अब तीर मारखाँ ने साँप उतारने वाले से कहा- क्यों भाई साँप उतारोगे। उसने कहा- भाई सवा पहर के भीतर गंगाजी का पानी ले आओ तो मैं जहर उतार दूँगा। नहीं तो लड़की मर जायेगी। वह गंगाजी का पानी लेने गया। सवा पहर के अन्दर एक पहेर भी बीता नहीं था कि पानी ले आया। अभी सवा पहर तो क्या एक पहर भी नहीं बीता और ले आया। राजधानी के पास आया और सोचा कि थोड़ा आराम कर लूँ। कलश लेकर झाड़ के नीचे सो गया। उसकी नींद लग गई। वहाँ नाग आया तो उसके सिर पर फन उठाकर डोलने लगा कि ये उठे तो इसको काट खाऊँ। अब सवा पहर पूरा होने आया तो ये चारों लोग घबराये कि सवा पहर पूरा हो जाएगा और ये लड़की मर जाएगी। तीर मारखाँ ने पूछा- ज्योतिषी देखो तो ये अभी तक क्यों नहीं आया। उसने देखा और कहा- साँप तो उसके ऊपर फन फैलाकर बैठा है। वह उठेगा तो वह काट खाएगा। अब शब्द बाण वाले से कहा तीर मारखाँ ने- भाई तेरे शब्दों का बाण उस सर्प को लगा। उस आदमी को नहीं लगे। वह तीर उसके फन में लग गया। उससे यह जाग उठा और घबराकर कि सवा पहर पूरा न हो जाए, गंगाजल पास ले आया। साँप

उतारने वाले ने साँप उतार दिया। अब पाँचों लड़ने लगे। राजा ने कहा- तुम पाँचों में से कोई भी उनसे विवाह कर लो। अब पाँचों लड़ने लगे- मैं करूँ, मैं करूँ। अब विक्रमादित्य ने उस हार से पूछा- बताओ इसमें से कौन विवाह योग्य है। वह हार बोला- कि जिसने साँप उतारा, उसे विवाह करने का अधिकार है। यदि वह साँप नहीं उतारता तो कैसे बचती। तो राजा की लड़की बोली कि जिसने साँप उतारा वह तो उसका पिता है। उसने उसको जीवनदान दिया। उन चारों में से कोई भी एक विवाह कर ले। तीसरी बार राजा की लड़की बोली। दासी ने खबर दी। गाँव में डंका बजा दिया। सारी सभा खुश हो गई। राजा ने कहा- देख राजकुमारी कुछ तो बोल, परन्तु वह कुछ बोली नहीं। इसने कहा- पलंग के पाये तू हुँकार देना। इसमें उसने वीर भर दिया। उसने कहा- हाँ, तू बता कह। मैं हुँकार देऊँगा। अब राजा ने कहा- एक डोकरी रहती थी, उसके सिर पर ऊँट की पोटली और कंधों पर मल्ल (पहलवानी) कुश्ती। कुश्ती लड़ते-लड़ते जो हवा आयी तो एक किसान हल छोड़कर झाड़ के पास थोड़ी देर पहले सोया था कि वह पोटली उसकी आँखों पर गिरी। वह खड़ा हुआ और ऊँट की पोटली फेंककर कहने लगा- अरे! मेरी आँखों में कंकर गिर गया है। पोटली को हाथ से हटाकर फेंक दी। कंकरी समझकर आँखों को मसल लिया और हल चलाने लगा। विक्रमादित्य पाये को पूछते हैं कि इसमें किसको बलवान समझा जाए। पलंग का पाया बोले- बुढ़िया को समझना चाहिए कि बुढ़िया होकर भी उसके कंधे पर मल्ल कुश्ती कैसे लड़ रहे हैं। और सिर पर ऊँट की पोटली लेकर चल रही है। उसे पहलवान समझें। राजा की लड़की को झाल आयी। उसने पलंग के पाये को लात मारी और कहा- जिसकी आँखों में ऊँट की पोटली पड़ी हो उसे कचरा समझकर गली में फेंक दिया और हल चलाने लगा, उसे बलवान समझना चाहिए। दासी ने कहा- चार बार रानी बोली। नगारा पर डंका पिटाया। दिन हो गया। विवाह की तैयारी होने लगी। सभा बैठी। विक्रमादित्य से राजकुमारी का विवाह हो गया। अब रात में महल में राजकुमारी पानी की झारी और फल-फूल लेकर गई, जहाँ विक्रमादित्य सोये हुए थे। विक्रमादित्य ने राजकुमारी को आते देख झूठ-मूठ मुँह पर रूमाल डाल लिया और सो गया। रानी समझी कि ये रात भर के जागे हुए हैं तो इनको नींद आ गई। वह भी जगी हुई थी, उसको भी नींद लग गई। विक्रमादित्य उठे और उसने एक चिट्ठी लिखी- तूने देश-देश के राजा लोगों को तकलीफ दी और न कोई से बात की। मेरे में विद्या थी तो मैंने तुझे बोलवा दिया। ब्याह रचाने की गुनहगार है। मैंने तुझको रानी बनाया नहीं है। मेरा लड़का पैदा करना तथा वह मुझे छले तब तुझे ले जाऊँगा। रानी के पल्ले में बाँध दी और रात को ही अपनी उज्जैन नगरी आ गया। अब सुबह हुई। रानी ने पल्ले पर बंधी चिट्ठी पढ़ी। रोने लगी। दासियों ने इसके माँ-पिता को कहा- विक्रमादित्य तो रात को ही चले गए और बाईजी को ये चिट्ठी दे गए। माँ-पिता आये इसके पास। उनको बड़ा दुःख हुआ। देश-देश से आये राजा अपने-अपने घर चले गए। जो बाद में आए, वे भी अपने घर चले गए। एक साल हो गया। राजकुमारी ने अपनी माँ से कहा- माँ पिताजी से तुम कहो कि मैं कब तक तुम्हारे यहाँ ऐसी रहूँगी। मुझे पाँच सौ घोड़े दे दो और उज्जैन नगरी में पहुँचा देना। साथ ही दस हजार रूपए भी। नौकरों को समझा देना कि हमारा एक सवार आयेगा, उसके सुपुर्द सब घोड़े करके वापस चले जाएं। इसने पुरुष वेश पहना और घोड़े पर बैठकर उज्जैन नगरी चली। इसने पिताजी के हाथ की चिट्ठी नौकरों को बता दी। नौकरों ने घोड़े इसके सुपुर्द कर दिए और वापस आ गए। दिन निकलते से ही इसने नौकर लगा दिए। कोई चंदी (चारा) डाल रहा है, कोई पानी पिला रहा है। इसने उज्जैन नगरी में ऐलान करा दिया है कि घोड़े बिकने आए हैं, जिसको लेना हो मेरे पास लेने आ जाए। उज्जैन नगरी के लोग लेने आए। पसन्द आए तो इसके पास लेने आ जाए। इसके पाँच सौ रूपये की कीमत हो तो एक हजार बताना। दो सौ की हो तो चार सौ बताना। दूनी कीमत बताना तो लोग देख-देखकर चले जाएँ। विक्रमादित्य को पता लगा कि इस उज्जैन नगरी में घोड़े वाले आए हैं और जिसके पास घोड़े बेचने को हैं। विक्रमादित्य ने कहा- मैं भी देखने जाऊँगा, गया। मर्द के वेश में भी उसने पहचान लिया राजा आ रहे हैं। खूब स्वागत सत्कार किया। उसने कहा- मैं तुमको मेरे घोड़ों की चाल बताऊँगी। एक से एक बढ़िया घोड़े थे। एक पर राजा विक्रमादित्य सवार हो गए। एक पर ये मर्द के वेश में सवार हो गई। बातचीत करते-करते ये जंगल तरफ चले गए। घोड़ों की चाल बतायी। वापस आए। इससे बातचीत करने में राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा ने रानी से कहा- हमारे महल में आना। अपन सार-पांसा खेलेंगे। मर्द के वेश में गई। जुए पर एक घोड़ा लगा दिया, हार गई। दूसरी बार भी हार गई। दूसरा घोड़ा लगा दिया। उसने नौकरों के हाथ घोड़े भेज दिए। राजा को घोड़े अच्छे लगे। उसने

दूसरे दिन और बुलाया। फिर उसने घोड़े लगा दिए। पाँच सौ घोड़े हार गई। एक घोड़ा बच गया। विक्रमादित्य ने कहा- ये घोड़ी भी तू दाँव पर लगा दे। ये मर्द के वेश में बोली- देखो एक घोड़ा तो मुझे चाहिए कहीं आने-जाने के लिए। मेरी स्त्री खूबसूरत है, कहो तो मैं उसे दाँव पर लगा दूँ। विक्रमादित्य तो खुश हो गया। ये दाँव भी रानी मर्द के वेश में हार गई। राजा मैं उच्च कुल का हूँ। मेरी रानी दिन में तुम्हारे घर नहीं रहेगी। रात को मैं छोड़ जाऊँगा तथा दिन में वापस मैं अपनी रानी को लेकर चला जाऊँगा। विक्रमादित्य ने स्वीकार किया। ये मर्द के वेश में रानी ने पूछा- राजा तुम्हारा महल, सोने का पलंग ये सब मुझे बता दो। मैं अपनी रानी को रात में छोड़ जाऊँगा। विक्रमादित्य ने मर्द के वेश में रानी का हाथ पकड़ा और सब कुछ बता दिया। अब रात हुई घर गई। इसने अच्छी जरी की साड़ी पहन ली, सब श्रृँगार किया। इसको जगह तो मालूम थी, रात में चली गई। ऐसा करते-करते बारह माह हो गए। दिन में मर्द बन जाए और रात में रानी के वेश में राजा के पास चली जाए। ऐसा करते-करते वह गर्भवती हो गई। इसको नवा महीना लगते ही इसने सोचा कि अब तो अपने माँ-बाप के पास जाऊँ। राजा की निशानी क्या ले जाए। उसने मजाक-मजाक में राजा के हाथ की अंगूठी निकाल ली, एक रूमाल रख लिया। फिर रानी ने सोचा कि ये निशानी भी वह झूठी कह देगा तो उसने राजा के गाल को काट लिया। दाँत गड़ गए। राजा बड़ा नाराज हुआ। रानी तुमने ये क्या किया। मेरे गाल में जख्म हो गया। रानी ने कहा- राजा मैंने तो मजाक किया। ऐसा बोली। राजा को जैसे ही नींद लगी, वह निकल गई। रात में इसने घोड़ा दौड़ाया और पिताजी की राजधानी आ गई। माँ से कहा- कि- पिताजी को कह देना कि उसे बच्चा होने वाला है। जाते समय माँ से यह कह गई थी दास-दासी पूछें तो कह देना विक्रमादित्य आए थे और वह ससुराल गई। आने पर दासियों ने पूछा- आ गए बाई साब ससुराल से। उसने कहा-हाँ। भगवान से प्रार्थना करने लगी कि मैं सच्ची पतिव्रता हूँ तो भगवान मुझे पुत्र ही देना। दस माह बाद इसे पुत्र हुआ। रानी के पिताजी को बड़ी खुशी हुई। महल में धूमधाम मच गई। ऐसा होते-होते लड़का सोलह वर्ष का हो गया। उसकी माँ एक दिन माँग भर रही थी कि बेटे ने पूछा- माँ तू शादीशुदा है। मैं तो अपने नाना के राज्य में ही रहा हूँ। मेरे पिताजी कहाँ है। उसने कहा- बेटा तू सोलह साल का है, बीस वर्ष का हो जा, फिर तेरे पिताजी बताऊँगी। परन्तु लड़के ने तो जिद्द पकड़ ली कि अभी ही बता। उसने राजा की चिट्ठी बताई। जो भी लिखा था, सब पढ़ लिया। बेटे ने कहा- मैं अपने पिताजी के राज्य में जाऊँगा। परन्तु तुम मुझे बताओ कि मैं उनका ही खून हूँ। बेटा मैं एकदम पतिव्रता हूँ और तू तेरे पिता का ही है। अच्छा तो मैं अपने पिताजी के राज्य में जाऊँगा। नानाजी से कहा- पाँच सौ रूपये कंथील (सिक्के) के दो और उस पर चाँदी के वर्क लगा दो तथा दो हजार असली चाँदी का दो। वह घोड़े पर रूपये लेकर गया। माँ से पूछा- मेरे पिताजी कैसे हैं और कहाँ बैठते हैं। माँ ने कहा- जो बीच में बैठते हैं, वे तेरे पिताजी हैं तथा दूसरी तरफ वाला सौतेला भाई तथा उनकी बगल में जो बैठते हैं, ये मंत्री हैं। बेटा ने कहा- अच्छा मैं जाकर प्रणाम करता हूँ। वह उज्जैन में पहुँच गया। एक बुढ़िया बाहर रहती थी। माँ मैं तुझे पाँच रूपये रोज देऊँगा, तू मुझे रोज सोने देना और मेरे घोड़े को दाना-पानी डाल देना। माँ ने हाँ कह दिया। अब वह बनजारों का दुल्हा बनकर श्रृँगार करके क्षिप्रा के घाट पर बैठ गया और खूब रोने लगा। औरतों ने कहा- तुम्हारे रूपयों के जितने गहने हैं उससे दूना मैं दूँगी तुम मुझे दे दो। ऐसा करके उसने कथील के सब रूपये बाँट दिए। अब ये फिर बुढ़िया के घर आ गया। अब उन औरतों के आदमी काम पर से वापस आए। औरतों ने बड़े खुशी-खुशी बताया कि जो गहने तुम पाँच रूपये में लाये थे वे सौ रूपये में बेच दिए। आदमी लोगों ने उन रूपयों को कूटा तो वे कथील के निकले। फिर उन्होंने पूछा- तुम कहाँ से लायी हो। औरतों ने कहा- हम पानी लेने क्षिप्राजी पर गए तो वहाँ एक बनजारा दुल्हे सा सुन्दर बैठा था और रो रहा था। उसकी बारात को किसी ने लूट लिया था। तो हमने अपना जेवर उसको बेच दिया। अब सब रूपये राजा की कचहरी में जमा हुए। लड़के ने सोचा कि अपने पिताजी के दर्शन करें और रूपये की बात भी सुनें। फटा कुरता और धोती पहन ली और सब गाँव के लोगों के बीच जा बैठा। पिता को प्रणाम किया। लोगों ने कहा- एक ठग ऐसा आया है कि कथील के रूपये देकर सोने के जेवर ले गया। राजा ने दो पुलिसवालों को हुक्म दिया कि कौन ठग आए हैं। गाँव में जंगल में जहाँ भी हो पकड़ के लाओ। इसने दोनों पुलिस वालों को देख लिया। सभा समाप्त हो गई। सब लोग अपने-अपने घर गए। दो पुलिस वाले भी गए। वह भी उनके पीछे-पीछे चला कि देखो तो सही कि ये कहाँ रहते हैं। दोनों चिंपाली के घर में घुस गए। उसने देखकर फिर अपने घर बुढ़िया के यहाँ सोने चला गया। सुबह से उठा और नाई का सब सामान उस्तरा, तेल, कंघी सब खरीद लिया और नाई बन गया तथा पुलिस वाले के पीछे-पीछे गया। वे तो उसे ढूँढने जंगल में गए, यह भी गया। लड़के ने बावड़ी देखी। इनका हाथ पकड़ लिया और कहा- देखो मैं इस शहर में नया-नया नाई आया हूँ। मेरे हाथ

से एक बार तो हजामत बनवा लो। शायद पसन्द आ जाए। इसने अच्छी कटिंग बनायी और तेल-मालिस भी कर दी। साबुन के बट्टे दिए कि जाओ नहाओ। उसने कहा-भाई मेरे पास तो कपड़े हैं ही नहीं, हम कैसे नहाये। उसने कहा- मेरे पास एक धोती है, तुम उसको लपेट लो। नहाकर ऊपर आकर कपड़े पहन लेना। वह बावड़ी में उतरे, साबुन लगाने लगे कि इसने इनके कपड़े उठाए। अपनी पेटी, उस्तरा सब सामान फेंककर बुढ़िया के यहाँ भाग गया। नहाकर ऊपर आये तो देखते हैं कि कपड़े हैं ही नहीं। अब बाहर कैसे निकलें। वहीं बैठ गए। लड़का बुढ़िया के घर आया और पुलिस वालों के कपड़े कोठरी में भर दिए। फिर पांडया पिंगल्या चकरीधारी हाथ में पंचांग का वेश लेकर पुलिस वालों के घर आया। उनकी औरतों से कहा- तुम्हारा आदमी चोर ढूँढने गए हैं। चोर मिल जाएंगे, उनको राजा भी इनाम देगा। परन्तु वे तो कल आएंगे। आज तो चोर भी तुम्हारे आदमी जैसे आएंगे नंगे-पुतंगे। तुम उनको अच्छी झाड़ू लेकर मारना। वे रात को आए। इन्होंने माचिस की चिंगारी में देख लिया। परन्तु ये तो अपने पति जैसे दिखते हैं, परन्तु पति हैं ही नहीं। वे दरवाजे खोल-खोलकर अन्दर घुसे, ये मारने लगी। अड़ोस-पड़ोस वाले कहने लगे कि तुम पागल हो गई हो, ये तुम्हारे आदमी हैं। फिर उनको वस्त्र दिए। पहनकर वे दरबार में गए। वह लड़का भी गया कि क्या होता है। वह भी फटे हुए कपड़े पहनकर लोगों के जूते-चप्पल के पास बैठ गया। उन्होंने राजा से कहा- देखो हमको ठग ने कैसा ठगा। तो हवलदार साब कहने लगे- मैं आज देखूँगा और ठग को पकडूँगा। ये लड़के ने सुन लिया। वह उसी समय वहाँ से उठ गया। एक अच्छी जरी की साड़ी ली, फूल लिए, अगरबत्ती ली तथा सोने के गहने भी पहन लिए। चार बजे रात से ही देवी के मन्दिर में गया। औरत का वेश लेकर पूजा करने लगा। दरोगा साहब गस्ती लगाते थे। उसने देखकर कहा- कहाँ जा रही हो बाई? यहाँ तो बहुत बड़ा ठग घूम रहा है। उसने कहा- मैं तो साहूकार की बहू हूँ। मेरा व्रत है। मेरे ससुर ने कहा- हवलदार साहब गश्त लगा रहे हैं, कोई डरने की बात नहीं। देखो बाई- यदि ठग उधर से आए तो तुम मुझे पुकारना। मैं यहीं आसपास हूँ। थोड़े आगे जाने पर उसने झूठ-मूठ ही पुकारा- दौड़ो हवलदार साहब, दौड़ो ठग आया। हवलदार साहब घोड़े को दौड़ाते लाए उसके पास। उसने झूठ कहा- साहब आपको देखकर इस दिशा में गया। फिर उसी दिशा में घोड़ा दौड़ाया। फिर वापस आए तो उसने कहा- दौड़ो हवलदार साहब ये तो इस दिशा में गया। उसको इधर से उधर खूब दौड़ाया। वह पसीने से लथ-पथ हो गया। फिर उसने कहा- ये मेरे पर हमला करे तो तुम ऐसा करो, मेरे कपड़े पहन लो और मैं तुम्हारे। तभी पकड़ायेगा। हवलदार साहब ने महिला का श्रृँगार कर स्त्री वेश ले लिया और वह घोड़े पर बैठ रवाना हो गया। हवलदार आरती लेकर देवी के पास खड़े रहे, परन्तु कोई दिखा नहीं। ऐसा करते-करते दिन निकल आया। सब दिशा- जंगल वाले लोग आए। हवलदार साहब को देख कर हँसने लगे, क्या है। उसने कहा- देखो भाई चोर ने तो मुझे भी ठग लिया। लड़का तो घोड़ा छोड़कर जहाँ रहता था, वहाँ चला गया। फिर रात में दरबार बैठा। हवलदार साहब भी आए कि उसने तो मुझे भी ठग लिया। बड़े साहब कहने लगे कि- आज मैं गश्त लगाऊँगा। ये भी लड़के ने सुन लिया। भगवा कपड़े और चिमटा ले लिया। एक आदमी को पटाकर मोटी लकड़ी लेकर, चार-पाँच रूपये देकर वट वृक्ष के नीचे धुनी लगवा ली। धुनी लगा ली तथा मृगछाला भी बिछा दी। दो चिलम ले ली। एक नशा तथा दूसरी में सादा गाँजा भर दिया और चीफ साब को दो बजे रात को बुलाया कि तुमको रातभर ड्यूटी देनी है तो तुम ये शिवबूटी (चिलम) जरा सा पी लो। तो तुमको नींद नहीं आयेगी और बड़ी फुर्ती रहेगी। खूब नशे वाली चिलम उसको दे दी और गाँजे वाली खुद ने ले ली। इसने तो जो लगाई तो एकदम नशे की मार से बेहोश हो गया। इसने क्या किया अपने भगवे कपड़े इसको पहना दिए और इसके कपड़े खुद पहन लिए उसके नाक की जरा सी दाड़ी काट ली। ये तो नशे में बेहोश पड़ा था। ये अपने घर आ गया। सुबह हुई। गाँव वालों ने चीफ साहब को पहचाना। राजा को खबर हुई। राजा ने वैद्य को बुलाकर नशा उतराया। राजा को बड़ी फ्रिक हुई कि क्या होगा। भगवान ये तो बड़ा भारी ठग है। जो सबको ठग लेता है। रात में फिर सभा बैठी। वह लड़का भी आ गया। फटे कपड़े पहन लोगों के जूतों के पास बैठ गया कि क्या होता है कि क्या नहीं। अब राजा ने कहा- मैं गश्त लगाऊँगा। जंगल में भी और गाँव में भी। सभी दूर लगाऊँगा कि कैसे नहीं पकड़ाता है। सभा बंद हुई और राजा गश्त लगाने निकला शहर में। तो लड़के ने सफेद धोती पहनी और सिर पर कपड़ों की गठरी रखकर धोबी रूप रखकर उज्जैन नगरी के तालाब पर कपड़ा धोने आया। वहाँ कपड़े धोने की आवाज राजा को आयी। राजा ने पूछा- क्यों भाई इतनी रात को जंगल में तालाब में कपड़े धोने क्यों आयी। गाँव में ठग है। उसने कहा- देखा साहब दिन में तो मैं बड़े-बड़े साहब लोगों के कपड़े धोती हूँ एक साहूकार की बहू को बच्चा हुआ है, उसके खराब कपड़े मैं रात को यहाँ धोती हूँ। चोर हमारा क्या करेगा। हमारे पास क्या है, जो वह लेगा। देखो

बाई तुमको कोई भी दिखे या आए तो मुझे पुकारना। ये जरा सा आगे गए कि ये झूठ बोली- राजा साहब दौड़ो-दौड़ो ठग आए हैं। ये मिट्टी की मटकी को चूना लगाकर ले गई थी। उसको तालाब में डाल दी और बैठे-बैठे कहती जाए- ये है, ये है और पानी उछालती जाए। ये तुम्हारे डर से पानी में कुछ पड़ा है और सिर में धोती लपेट ली है। राजा कूदने लगे तालाब में कि इसे पकडूं। लड़के ने इनका हाथ पकड़ लिया कि कपड़े पहनकर कैसे जाओगे? सब गीले हो जाएंगे और भारी अलग से। मैं धोती का एक टुकड़ा देता हूँ लपेटकर जाओ। राजा ने कपड़े उतारकर किनारे रख दिए और आधी धोती का टुकड़ा पहनकर तलाब में कूदा। राजा जैसे-जैसे तीरे उसके झकोले से हंडी और आगे-आगे बढ़ती जाए। इधर लड़के ने राजा के सब कपड़े पहन लिये और घोड़े पर सवार हो गया। जितने गीले-सूखे कपड़े थे, सब ले आया। गाँव के बाहर पोटली फेंककर राजधानी में चला गया। नौकरों से कहा- घोड़े को घुड़साल में बाँध दो। मैं थक गया हूँ। हाथ पकड़कर सोने की जगह ले चलो। कोई भी आए और कहे कि मैं राजा हूँ तो आने मत देना ठग बहुत चतुर हो गया है। एक नौकर ने घोड़ा बांधा एक कमरे में ले गया। इसने अन्दर से दरवाजा बन्द कर लिया और पिता के पलंग पर सो गया। राजा मटकी के पास पहुँचा और तलवार मारी तो उसके दो टुकड़े हो गए। राजा ने कहा- अरे, मुझे भी धोखा हुआ। इधर तैरता हुआ वापस आया तो कपड़े भी नहीं मिले। राजा राजधानी में गीले कपड़े पहने आया। दरबान ने लोगों को आवाज दी कि दरवाजा खोलो। दरबान ने पूछा- तुम कौन हो और इतनी रात को क्या कहना है ? उसने कहा- मैं राजा हूँ दरवाजा खोलो। नौकर बोले- हमारे राजा तो आकर सो गए हैं, तुम कहाँ के राजा हो ? अरे भाई! तुम दरवाजा तो खोलो, मैं ही राजा हूँ। एक बूढ़े दरबान ने कहा- खोलो तो सही देखें कौन है ? दरवाजा खोला तो पहचान लिया की ये अपने ही राजा हैं। उन्होंने कहा- तुम्हारे समान ही है और तुम्हारा घोड़ा तो हमने बाँधा है। वो वहाँ सो गए हैं और हमसे कह गए कि कोई आए तो दरवाजा मत खोलना। इनके दूसरे कपड़े बुलाए और पहने। सभी सेना हथियार लेकर महल के आसपास तैनात कर दी। शहर के सभी लोग इकट्ठे हो गए। राजा अटारी पर गया। उसने कहा- दरवाजा खोल। वह दरवाजा नहीं खोल रहा था। फिर सुतार को बुलाया कि ये दरवाजा तोड़ो। कौन है, अन्दर जो दरवाजा नहीं खोल रहा है। लड़के ने कहा- मेरे प्राण मुझे बख्श दो, हथियार मत चलाना। मेरी एक विनती सुनो तो मैं दरवाजा खोलूँ। उसको पता था कि राजा बहुत क्रोध में है। पिता है तो क्या हुआ? मैंने भी उसे बहुत ठगा है। राजा ने हाँ कहा। इसने जरा सा दरवाजा खोलकर चिट्ठी राजा के हाथ में दी। वह राजा की लिखी चिट्ठी अपनी माँ से ले आया था। राजा ने चिट्ठी पड़ी तो उसकी आँखों से आँसू निकलने लगे। उसे सभी बातें याद आ गई कि मैं यह चिट्ठी दे आया था। लड़के ने दरवाजा खोलकर पिता के पैरों में पड़कर पैर पकड़ लिए। पिता ने बेटे की पीठ थपथपाई- शाबाश बेटा मैंने जैसा कहा था वैसा ही तू है। परन्तु तेरी माँ मेरे यहाँ आयी ही नहीं तो तू मेरा बेटा कैसा हुआ। ये मेरी माँ से पूछो, मैं क्या जानूँ। राजा ने नौकरों को हुक्म दिया कि फलाने शहर में इसकी माँ है ले आओ। लड़के ने कहा- मेरी माँ नौकरों के साथ नहीं आने की। लाव, लश्कर, फौज-काटा, मंत्री-मुनीम तथा तुम्हारा बड़ा बेटा जायेगा लेने। मेरी माँ उज्जैन नगरी के राजा विक्रमादित्य की रानी है। नौकरों के साथ नहीं आयेगी। राजा ने सबको भेजा। राजा ने क्या किया गाँव के बाहर दो ऊँचे-ऊँचे चबूतरे बना दिए ताकि गाँव के साथ लोगों को दिखें। गाँव में डौंडी पिटवा दी, सभी प्रजा को गाँव बाहर जंगल में आकर बैठना है। रानी आयी। एक चबूतरे पर रानी तथा दूसरे पर राजा। रानी ने राजा से पूछा- ये मेरा लड़का कैसा? जिस दिन से शादी हुई मैंने तुम्हारा मुँह नहीं देखा तो वह मेरा वंश कैसा। रानी सब प्रजा की तरफ हाथ उठाकर बोली- संवत् फलाने में एक मर्द घोड़े लेकर बेचने आया था कि नहीं? सब प्रजा ने कहा- हाँ। बारह माह इस नगरी में रहा था कि नहीं और राजा ने सब घोड़े सार-फाँसा में हार गया था कि नहीं। सबने हाँ कहा। सब हार गये तो मैंने कहा था कि- मैं अपनी रानी दाँव पर लगाऊँगा। राजा ने मंजूर किया कि मैं तुम्हारी रानी को रख लूँगा। मैंने राजा से करार किया था कि मैं रात को तुम्हारे पास रहूँगी दिन में नहीं। राजा ने भी मंजूर किया। रात को मैं रानी बनकर तुम्हारे पास रही और दिन में उज्जैन नगरी घूमी। उज्जैन नगरी की सब प्रजा ने भी मंजूर किया कि सभी बातें सच्ची हैं। मुझे आठ महीने पूरे हुए और नवा लगते से ही मैं यहाँ से निकल गई। रूमाल और मूँदी ये पहचान बताई राजा को। राजा ने कहा- ऐसे तो बहुत आ जाते हैं। फिर रानी ने यह पहचान बतायी कि मैंने गाल में काटा था, मजाक-मजाक में। राजा को वह बात याद आ गई।

राजा भी मंच से उतरे और रानी भी। राजा ने रानी को गले लगाया रानी उनके पैरों में गिरी। महल में गए और उस लड़के को राज्य दे दिया। राजा-रानी सभी सुख से रहे और राज्य किया।

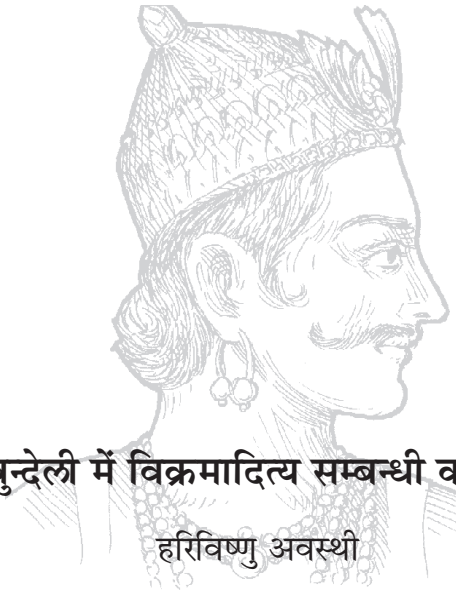

बुन्देली में विक्रमादित्य सम्बन्धी कथाएँ

हरिविष्णु अवस्थी

बुन्देली लोक साहित्य में किसा/किस्सा (कथाएँ) गीत, अहाने, टहूका (टउका), पटतरें, बुझउअल (पहेलियाँ), अटका, लोकोक्तियों और मुहावरों की विधाएँ पायी जाती हैं। इनमें अधिक समय तक मनोरंजन करने हेतु अधिकतर गाथा गायन अथवा किस्सा (कथा) कहना/सुनना होता है। इन कथाओं का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन होता है। उपदेश देना नहीं।

बुन्देली लोककथाओं में उज्जयिनी नरेश वीर विक्रमादित्य की कहानियों को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन कथाओं को गम्भीर एवं शुभ माना जाता है। लोग कहने लगते हैं कि – 'राजा वीर विक्रमादित्य पर दु:ख के काटनहार हते (थे) चउदा विद्या और चौसठ कलाओं के निधान हते। सेर उर (एवं) बुकरियाँ उनके राज में एक घाट को पानी पियत लीं (पी ती थीं)। उन जैसो राजा तो ई पृथ्वी पै होबो मुश्किल है। इन लोककथाओं में वीर विक्रमादित्य का सबसे बड़ा गुण उनकी प्रजा पालकता और दु:ख निवारण बताया गया है। राजा वीर विक्रमादित्य अपनी प्रजा का सुख-दु:ख जानने हेतु रात को बहुधा वेश बदलकर घूमते हुए दिखाई पड़ते हैं।

सर्दियों के मौसम में खेत-खलिहान से वापिस लौटे किसान/मजदूर ब्याल कर कोड़े (अलाव) के पास एकत्र होने लगते हैं। इधर-उधर की बातें होती हैं। बातों-बातों में कहानी सुनने का मन बनाते हैं। तब इन कथाओं का रंग जमता है। एक आदमी कहानी कहता है, एक हूँका देता है। हूँका देने वाले की चतुराई से कहानी कहने वाले का मन लगता है। श्रोतागण दिन भर की थकान तथा सांसारिक चिन्ताओं से मुक्त होकर कहानी सुनने में निमग्न हो जाते हैं। परम्परानुसार कहानी कहने वाला कथा प्रारम्भ करने से पूर्व भूमिका के रूप में निम्नलिखित साखी आरम्भ करता है –

'किस्सन सी झूँटी, बातन सी मीठी, घरी-घरी को बिसराम जाने सीताराम। सक्कर को घोड़ा, सकरपारे की लगाम, छोड़ दो दरियाव में चला जाये छमाछम-छमाछम। हाथ भर के मियाँ साब, सवा हाथ की दाढ़ी, हलुआ के दरिया में बहे चले जाएँ। चार कौर इधर, चार कौर उधर मारते चले जाएँ। इस पार घोड़ा, उस पार घास, न घोड़ा घास खाए, न घास घोड़ा को खाए। इतने के बीच में दो लगाई घींच में, तौउ न आये रीत में सो घर कड़ोरो कीच में, झट्टईं आ गए रीत में। हँसिया सी सूदी, तकुआ सी टेड़ी, पाला (रूई) सौ कौरो (कठौर) पथरा सो कौंरो (मुलायम) हाथ भर की ककरी, नों हाथ बीजा, खैरे गुन होय या बतेसा को नगाड़ो, पोनी को डंका, किडीधूम-किडीधूम। जरिया (झरबेरी) को काँटो, अठारा हात लांचो (लम्बा) धरती फोर भैंस खों आँसो। कनिया की बैन मनिया ताने बसाये तीन गाँव, एक अंजर एक बंजर 'एक में मान्सई (मनुष्य) नईयाँ। जा में नईयाँ मान्स वा में बसे तीन कुमार (कुंभकार) एक लंगड़ा, एक लूला, एक के हातई नईयाँ। जाकैं नईयाँ हाथ बाने बनाई तीन हँडिया एक औंगू एक वौंगू, एक के औठई नईयाँ। जाके नईयाँ औंठ ताने बिसाई तीन जनी, एक औरू, एक बौरू, एक कै मौ (मुँह) अइ नईयाँ। जाकैं नईयाँ मौ बाने चुराये तीन चाउर (चावल), एक अच्चौ, एक कच्चौ एक कैं चौंदई नईयाँ। जाके नईयाँ चौंद ऊने न्यौते तीन बाम्हन, एक अफरो, एक डफरो, एक कैं पेटई नईयाँ। आदि-आदि।'

'जो इन बातन खौं झूँटी माने तो राजा को दण्ड और जात खौं रोटी देनै परै। कहता तो कहता पै सुनता खौं सावधान चइये। न कहबे वारे खौं दोस न सुनवेवारे खौं दोस, दोस बाकों जीने बना कै ठाड़ी करी। और दोस ऊ कौ नईयाँ, काय सैं ऊ ने तोंरै न काटवे खौं बात बनाई। दोस ऊ खौं जो दोस लगावे। और बात सच्चिई हुईये काय कै तबई तो कही गई।'

अपनी इस परम रोचक और विलक्षण भूमिका के साथ कहानी कहने वाला मानो अपने श्रोताओं को कहानी जगत के उस अद्‌भुत और अलौकिक वातावरण में खींचकर ले जाता है, जहाँ भौतिक जगत की कोई चिन्ता उन्हें नहीं व्यापती। कल्पना के घोड़े पर बैठकर श्रोता जाने कहाँ-कहाँ की सैर करने लगता है। इन कहानियों का मुख्य उद्‌देश्य मनोरंजन होता है। उपदेश देना नहीं।

इन कथाओं में कल्पनाओं की ऊँची उड़ान होती है। इन कथाओं में पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, दीवाल पर बने चित्र बोल सकते। पहाड़ उड़ सकते। देखते ही देखते रूप बदल सकते हैं। किसी दुर्लभ वस्तु को प्राप्त करने में नायक के क्रिया-कलाप, अलौकिक होते देर नहीं लगती। मानवीय मूल्यों और नैतिकता की शिक्षा का अंत: सूत्र कथा के सम्पूर्ण घटनाक्रम को संजोये रहता है। कथा समाप्त होने पर कथाकार कहता है 'बाढ़ ईने बनाई टिकटी हमाई किसा निपटी। अब कथा लेत विसराम, सुनबे बारन खौं सीताराम।'

विशेष - बुन्देली में सुनी कहानियों के मूल भाव को ज्यों का त्यों रखने का पूरा ध्यान रखा गया है। कहानी की घटनाओं में वैचित्र लाने या उसे आकर्षक बनाने की दृष्टि से कहानी के मूल भाव में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। मात्र बुन्देली से खड़ी बोली में परिवर्तित किया गया है।

सांतला जोगी जादूगर की कथा

राजा विक्रमादित्य के राज्य में सांतला नाम का जोगी रहता था। वह बहुत बड़ा जादूगर था। अपने जादू के प्रभाव से वह वहाँ की जनता को बहुत परेशान करता और उन्हें कष्ट पहुँचाता था। लोग उसके नाम से डरते थे।

एक बार सांतला जोगी उज्जैन के एक सेठ की नव विवाहिता पुत्रवधू को अपने जादू से उड़ा ले गया। सेठ के सात पुत्र थे। सातों पुत्र उसकी खोज में निकल पड़े। वे किसी तरह सांतला जोगी के स्थान तक पहुँचने में सफल हो गए।

सांतला जोगी ने उनसे बहू को छोड़ने के बदले में एक सहस्त्र स्वर्ण मुद्राएँ माँगी। सातों पुत्र घर वापिस लौटे और एक सहस्त्र मुद्राओं की व्यवस्था कर पुन: सांतला जोगी के पास जाकर उसे मुद्राएँ सौंपकर बहू को मुक्त करने की प्रार्थना की। सांतला जोगी ने स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त होते ही सातों भाईयों को पत्थर का बना दिया।

सेठ को पुत्रों के लौटने का इन्तजार करते हुए महीनों बीत गए। वह अपनी पुत्रवधू और सातों पुत्रों के घर न लौटने से बहुत दु:खी हो गया। सेठ और सेठानी दिन रात आँसू बहाते रहते थे।

एक दिन राजा विक्रमादित्य जनता का सुख-दु:ख जानने के लिए वेश बदलकर रात्रि में नगर का भ्रमण कर रहे थे। जब वह सेठ के दरवाजे के पास से निकले तो उन्हें सेठ और सेठानी के रोने की आवाज सुनाई दी। वे दोनों एक दूसरे को समझाने की कोशिश कर रहे थे।

विक्रमादित्य ध्यान से उनकी बातें सुनते रहे। पूरी बात समझने के लिए उन्होंने सेठ को आवाज लगाई। राजा विक्रमादित्य की आवाज सुनकर सेठ ने तुरन्त अपने फाटक खोल दिये। विक्रमादित्य को द्वार पर खड़ा देखकर वह उनके पैरों में गिर पड़ा और उनके पैर पकड़कर रो-रोकर अपनी दु:ख भरी सारी दास्तान उन्हें सुना दी। सांतला जोगी की इस करतूत को सुनकर विक्रमादित्य को बहुत दु:ख हुआ। उन्होंने सेठ से कहा- तुम रोना-धोना बंद करो। मैं तुम्हारी पुत्रवधू एवं पुत्रों को उस दुष्ट सांतला जोगी के चंगुल से छुड़ाकर लाऊँगा।

राजा विक्रमादित्य दूसरे ही दिन सांतला जोगी की खोज में निकल पड़े। मार्ग में शंकर भगवान से उनकी भेंट हुई। शंकरजी ने मुस्कुराते हुए कहा- 'वीर विक्रमादित्य! सांतला जोगी से पार पाना आसान नहीं है। राजा विक्रमादित्य ने कहा- 'भगवन! मैंने तो सेठ की पुत्रवधू एवं सातों पुत्रों को छुड़ाने का संकल्प कर लिया है। चाहे जो कुछ भी हो।' शंकरजी पुन: मुस्कुराये और बोले- विक्रमादित्य मेरी बात ध्यान से सुनों-

सांतला जोगी की जान सात समुद्र आड़े और सात समुद्र ठाड़े के पार एक बरगद के पेड़ पर टंगी एक बगुली में कैद है और उस बरगद के पेड़ के हर पत्ते पर साँप और बिच्छू रहते हैं, जिनके जहर से तत्काल मृत्यु हो जाती है। विक्रमादित्य ने कहा- प्रभु! मैं तो संकल्प कर चुका हूँ। मेरी जान भले ही चली जाये, मैं अपना संकल्प नहीं तोड़ सकता हूँ।

शंकरजी विक्रमादित्य की इस दृढ़ता को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और बोले- 'जाओ, पर दु:ख काटनहार वीर विक्रमाजीत तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा।' राजा विक्रमादित्य समुद्र के निकट पहुँचे। राजा विक्रमादित्य का यश तो त्रिलोक में फैल चुका था। जैसे ही समुद्री जीव जन्तुओं को विक्रमादित्य के समुद्र तट पर आने का पता चला, वह सब उनके दर्शन हेतु समुद्र तट पर आ गये। जीव जन्तुओं ने विक्रमादित्य को प्रणाम किया और उनका जयकारा लगाया तथा उनसे समुद्र तट पर आने का कारण पूछा। विक्रमादित्य ने उन्हें सारी दास्तान कह सुनाई। जीव जन्तुओं ने कहा- महाराज आप चिंता न करें, हम सब इकट्ठा होकर अपनी पीठों को आपस में मिलाकर समुद्र में पुल बना लेते हैं। आप पुल पर से सातों समुद्रों को आड़े और ठाड़े में पार कर बरगद के वृक्ष तक पहुँच जायेंगे। जीव-जन्तुओं द्वारा इस प्रकार बनाये गये पुल से विक्रमादित्य सातों समुद्रों को पार कर बरगद के पेड़ के पास पहुँच गये।

बरगद के पेड़ के पत्तों पर बैठे सर्प और बिच्छू भी वीर विक्रमादित्य का यशगान सुन चुके थे। उनका दर्शन पाकर वह भी बहुत प्रसन्न हुए। वह निश्चल होकर अपने स्थान पर बैठे रहे। विक्रमादित्य ने पेड़ पर चढ़कर बगुली का पिंजड़ा प्राप्त कर लिया। विक्रमादित्य बगुली का पिंजड़ा लेकर उज्जैन वापिस लौटे।

राजा वीर विक्रमादित्य की रानी भी जादू जानती थी। राजा ने पिंजड़ा रानी को सौंप दिया। रानी ने बगुली पर दबाव बनाकर सेठ की पुत्रवधू एवं सातों बेटों को मुक्त करा दिया और बगुली के शरीर में से सांतला जोगी की जान को निकालकर अपनी मोती की माला के एक मोती में कैद कर दिया।

सांतला जोगी यह सब देख-समझ रहा था। उसने अपनी जान रानी के मोतियों के हार के उस मोती को जिसमें उसके प्राण कैद थे, छुड़ाने हेतु हंस का रूप धारण किया। राजा विक्रमादित्य के महल में हंस रहते थे। रानी रोज उन्हें मोती चुगाया करती थी। हंस वेशधारी सांतला जोगी उन्हीं हंसों के समूह में शामिल होकर मोती चुगने के बहाने रानी के महल में पहुँच गया।

जिस मोती में रानी ने उसकी (सांतला जोगी) जान को कैद कर रखा था, उसी माला को पहनकर रानी राजहंसों के समूह के मध्य पहुँची। उसने सांतला जोगी को तुरन्त पहचान लिया। सांतला जोगी के हंस रूप में उस मोती पर झपट्टा मारने के पूर्व ही रानी ने सांतला जोगी की जान को मोती में से निकालकर बिल्ली के रूप में प्रकट होकर हंस रूपी सांतला जोगी को झपट्टा मारकर मार डाला। बिल्ली की जान भी निकल गई। इस प्रकार चौदह विद्या के निधान, पर दु:ख के काटनहार राजा

वीर विक्रमादित्य ने सेठ के दु:ख काटे। हे राजा विक्रमादित्य! ऐसे ही सब दु:खयारन को दु:ख काटत रहियो, पर दु:ख काटनहार चौदह विद्या के निधान राजा वीर विक्रमादित्य की जय।

मृतक ब्राह्मण पुत्र को जीवनदान

उज्जैन नगरी में एक ब्राह्मण के पुत्र का विवाह हुए मात्र दो ही दिन हुए थे कि उसके युवा पुत्र का आकस्मिक निधन हो गया। नव विवाहित पुत्रवधु विधवा हो गई। परिवार में मातम छा गया। बहू दहाड़े मार-मारकर, सिर पटक-पटककर रोने लगी। युवा पुत्र के निधन से ब्राह्मण और उसकी पत्नी का बुरा हाल था।

ब्राह्मण के घर से रोने की आवाज सुनकर पूरे पड़ोसी भी एकत्र हो गए। धीरे-धीरे राहगीर भी एकत्र होते चले गए। ब्राह्मण के द्वार पर खासा जन समूह एकत्र हो गया। सभी लोग परिवार के सदस्यों को सान्त्वना देने, समझाने का प्रयत्न कर रहे थे। विधवा बहू का विलाप सुनकर पत्थर दिल आदमी भी पसीज उठे थे।

राजा वीर विक्रमादित्य अकस्मात् वहाँ से निकले। रोने-चिल्लाने की आवाज सुनकर एवं भारी भीड़ देखकर वह रूक गए। लोगों ने उन्हें घेर लिया और पूरी दास्तान उन्हें सुनाई। विधवा बहू को भी राजा वीर विक्रमादित्य के आने की खबर लग गई। खबर लगते ही वह दौड़ी चली आई और राजा वीर विक्रमादित्य के चरणों पर गिर पड़ी और बोली-आप तो पराये दु:ख के काटनहार हो। मेरा दु:ख नहीं काट सकते हो? आपके राज में दो दिन में ही मैं विधवा हो गई।

विक्रमादित्य सोच में पड़ गए। मृतक को जीवित करना भला कैसे सम्भव है? उन्हें कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। विधवा बराबर उनके पैर पकड़े गिड़गिड़ा रही थी। थोड़ी देर विक्रमादित्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ खड़े रहे। उस विधवा का विलाप उन्हें अन्दर से झकझोर रहा था। मृतक को कैसे जीवित किया जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर उन्हें नहीं सूझ रहा था।

उन्हें अचानक अपनी ईष्ट देवी का स्मरण हो आया। अपने ईष्ट पर भरोसा कर विक्रमादित्य ने कहा- मृतक के शरीर का उपचार कर इसे सुरक्षित रखें और जब तक मैं वापिस न लौटूँ, मृतक का दाह संस्कार न किया जाए। इतना कहकर वह बिना बताये चल दिए।

विक्रमादित्य की ईस्ट देवी माँ पीताम्बरा का मन्दिर सघन वन में स्थित था। वहाँ पहुँचकर वह माँ पीताम्बरा के समक्ष खड़े होकर मृतक को जीवित करने हेतु प्रार्थना करने लगे। बिना अन्न-जल ग्रहण किए वह माँ के चरणों में पड़े रहे। उनके इस समर्पण से माँ पीताम्बरा प्रसन्न हो गई। उन्होंने राजा विक्रमादित्य को एक पैंती (अंगूठी) दी और कहा- इस पैंती से अमृत की बूँद टपकती है। माँ ने कहा- जाओ बेटा। तुम्हारा नाम पर दु:ख काटनहार के रूप में प्रसिद्ध होगा। सृष्टि रहने तक तुम्हारा यश इस पृथ्वी पर बना रहेगा।

ब्राह्मण के परिवार ने राजा के आश्वासन के कारण मृतक का दाह संस्कार नहीं किया था। परिवार के साथ पड़ोसी, नाते-रिश्तेदार सभी चिन्तित थे। राजा विक्रमादित्य के लौटने की प्रतीक्षा करते-करते थक से गये थे।

इस निराशा के दौर में राजा विक्रमादित्य को घर आया देखकर सभी प्रसन्नता से उछल पड़े। उन्हें विश्वास तो था ही कि राजा खाली हाथ लौटने वाले नहीं हैं। राजा ने मृतक का मुँह खोलकर पैंती ज्यों ही उसके ऊपर की, उसमें से अमृत की बूँदें मृतक के मुँह में गिरी। देखते ही देखते मृतक उठकर बैठ गया।

सबके मुँह से एक साथ निकल पड़ा- राजा वीर विक्रमादित्य की जय हो। ब्राह्मण की बहू ने हाथ जोड़कर कहा- 'महाराज जिस प्रकार आपने मेरा दु:ख दूर किया है, इसी प्रकार आप सबके दु:ख हरते रहियो।'

श्रोताओं ने एक साथ जयकारा लगाते हुए कहा- 'बोलो पर दु:ख काटनहार, चौदह विद्या के निधान राजा वीर विक्रमादित्य की जय।

बुढ़िया के पुत्र की रक्षा

उज्जैन नरेश राजा वीर विक्रमादित्य तीर्थ यात्रा को जा रहे थे। संध्या होने पर वह नगर की एक सराय में विश्राम करने हेतु रूक गए। वह बैठे ही थे कि उन्हें सराय से लगे हुए एक मकान से किसी के रोने की आवाज सुनाई दी। विक्रमादित्य ने सराय वाले से पूछा- आपके पड़ोस में ऐसा लगता है जैसे कोई महिला रो रही हो। सराय वाले ने कहा- आप शहर की चिन्ता में दुबले क्यों हो रहे हैं। यहाँ तो कुछ न कुछ होता रहता है। विक्रमादित्य ने

कहा- भाई पड़ोसी के नाते आपको जानकारी तो होनी ही चाहिए। सराय वाले ने थोड़ी गरम आवाज में कहा- आप स्वयं जाकर क्यों नहीं पूछ लेते।

विक्रमादित्य ने जाकर पड़ोस का द्वार खटखटाया। एक जवान लडके ने दरवाजा खोला। एक अजनवी को देखकर उसने विक्रमादित्य से उनका परिचय पूछते हुए उनके आने का कारण पूछा। विक्रमादित्य ने कहा- भैय्या मैं तो एक परदेशी हूँ। यहाँ पास की सराय में ठहरा हूँ। आपके घर से रोने की आवाज सुनकर मुझे बेचैनी हुई। इसलिए हाल जानने आया। नवयुवक ने रो रही महिला की ओर इशारा कर कहा- 'आप उन्हीं से जाकर पूछ लीजिए।'

राजा विक्रमादित्य जाकर उस बुढ़िया के निकट बैठे और उससे रोने का कारण पूछा। महिला ने कहा- 'भैय्या यहाँ की राजकुमारी के महल की पहरेदारी के लिए रोज एक नवयुवक को तैनात किया जाता है। सबेरे वह मरा हुआ मिलता है। मेरा इकलौता बेटा है और पहरेदारी के लिए आज उसकी बारी है। मेरा बेटा जिन्दा नहीं लौटेगा। बुढ़ापे में कौन मेरी देख-रेख करेगा। मैं तो जीते हुए भी मरी के समान हो जाऊँगी।'

विक्रमादित्य महिला की करुण कहानी सुनकर द्रवित हो गए। उन्होंने बुढ़िया से कहा- माँ तू बिल्कुल चिन्ता मत कर। तेरे बेटे को कुछ नहीं होगा। मैं तुम्हारे पुत्र की जगह राजकुमारी के महल की पहरेदारी करने जाऊँगा। एक अजनबी की ऐसी बातें सुनकर उसने रोना बन्द कर दिया। उसने आश्चर्य से पूछा-बेटा। क्या तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं। जो तुम अपनी जान देने को इस तरह तैयार हो गए? विक्रमादित्य ने कहा- माँ! तू परेशान न हो। भगवान की कृपा से सब ठीक हो जायेगा।

विक्रमादित्य किसी भी अप्रत्याशित घटना से निपटने की पूर्ण तैयारी कर राजकुमारी के महल की रखवाली करने पहुँच गये। विक्रमादित्य पूर्ण सावधानी से चौकसी कर रहे थे। अर्द्धरात्रि बीतने के बाद उन्होंने देखा कि राजकुमारी के मुँह में से एक नागिन निकल रही है। यह दृश्य देखकर वह पूर्ण सतर्क हो गए। उन्होंने देखा कि नागिन लुकती-छिपती धीरे-धीरे उनकी ही तरफ चली आ रही है। विक्रमादित्य तो सतर्क थे ही, जैसे ही नागिन उनके निकट आई और उसने विक्रमादित्य को डँसने को मुँह बढ़ाया तभी विक्रमादित्य ने अपनी तलवार के वार से उसके दो टुकड़े कर दिए। सबेरे राजकुमारी के महल की पहरेदारी करने वाले व्यक्ति की चर्चा पूरे नगर में आग की लपटों की तरह फैल गई।

राजा को जब इसकी सूचना मिली तो उन्होंने रात्रि में पहरा देने वाले व्यक्ति को तलाश कर उसे राज दरबार में उपस्थित करने हेतु मंत्री को आदेश दिया। राजा वीर विक्रमादित्य एक सामान्य व्यक्ति के रूप में दरबार में उपस्थित हुए। राजा ने उनसे अपना परिचय देने तथा रात्रि में जीवित बचे रहने की पूरी दास्तान सही-सही बताने हेतु कहा।

उस सामान्य से दिखने वाले व्यक्ति ने अपना परिचय जब उज्जैन नरेश वीर विक्रमादित्य के रूप में दिया तो राजा तुरन्त अपने सिंहासन से उठा और उसने विक्रमादित्य को गले से लगा लिया तथा उन्हें ससम्मान अपनी बगल में सिंहासन पर बैठाया। विक्रमादित्य ने रात की घटना उन्हें सुनाई।

राजा ने कहा- हे उज्जयिनी के नरेश वीर विक्रमादित्य! आपको इस संसार में कौन नहीं जानता। आज आपके दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया। आपका नाम तो चौदह विद्या के निधान, पर दु:ख के काटनहार के रूप में सर्वत्र प्रसिद्ध है। हमने जैसा आपका नाम सुना था, वैसा ही पाया।

राजा ने विक्रमादित्य के समक्ष प्रस्ताव रखा- 'मैं अपनी राजकुमारी का ब्याह आपके साथ करना चाहता हूँ और आधा राज-पाट आपको समर्पित करना चाहता हूँ।' वीर विक्रमादित्य ने कहा- राजन! उज्जयिनी के विशाल राज-पाट को संभालने, प्रजा के हित चिन्तन करने से मुझे अवकाश नहीं मिलता। आपका आधा राजपाट लेकर मैं क्या करूँगा? तीर्थाटन से वापिस लौटते समय में यहाँ आऊँगा। तब राजकुमारी को ब्याह कर उज्जयिनी वापिस लौट जाऊँगा।

तीर्थाटन से लौटने पर राजकुमारी को ब्याह कर विक्रमादित्य वापिस अपने राज्य में पहुँच कर अपनी प्रजा का हित चिन्तन करने लगे।

परकाया प्रवेश का मंत्र

एक रात को जब राजा वीर विक्रमादित्य अपनी प्रजा के सुख-दु:ख जानने हेतु भ्रमण पर निकले तो वह एक बस्ती में पहुँच गए। उन्हें एक घर में कुछ खुसुर-फुसुर सुनाई दी। वह दीवाल से कान लगाकर सुनने लगे। ध्यानपूर्वक सुनने पर विक्रमादित्य की समझ में आ गया कि यह कलिया का घर है और वह परकाया प्रवेश मंत्र जानती है। परकाया प्रवेश की बात जानकर उनके मन में भी परकाया मंत्र सीखने की उत्कट अभिलाषा हुई।

राजा विक्रमादित्य ने एकान्त में कलिया से सम्पर्क किया और उससे परकाया प्रवेश का मंत्र सिखाने को कहा। कलिया ने कहा- महाराज, हमारे भाग्य जो आपके दर्शन मिले। आपसे कोई दुराव करने का तो प्रश्न ही नहीं है। आप कभी भी ठीक अर्द्धरात्रि को अकेले पधारें, मैं आपको परकाया प्रवेश का मंत्र सिखा दूँगी। महाराज इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि आप बिल्कुल अकेले आएं और कोई भी आपके साथ न हो। महाराज ने कहा-ठीक है, मैं उचित समय पर आऊँगा।

राजा वीर विक्रमादित्य का एक मुँह लगा नाई था, जो सदैव उनकी सेवा में रहता था। विक्रमादित्य जहाँ भी जाते, वह छाया की तरह उनके साथ लगा रहता। एक रात को विक्रमादित्य ने कलिया के यहाँ जाने का विचार किया। वह अर्द्धरात्रि होने के पूर्व अपने महल से वेश बदलकर चुपचाप दबे पाँव निकले। नाई जो महल के पास एक बरामदे में विक्रमादित्य की मालिश करके वहीं लेट गया था, उसने महाराज को वेश बदलकर चुपचाप कहीं जाते देखा। उसकी उत्सुकता बढ़ी और वह भी विक्रमादित्य को बिना बताए थोड़ी दूरी बनाकर चुपचाप उनके पीछे-पीछे चलने लगा।

विक्रमादित्य ने कलिया का धीरे से दरवाजा खटखटाया। उसने तुरन्त द्वार खोलकर उनसे अन्दर आने को कहा। विक्रमादित्य के अन्दर प्रवेश करते ही उसने द्वार बन्द कर लिया। नाई तुरन्त दीवाल से चिपककर उनकी बातचीत सुनने का प्रयास करने लगा। कलिया ने विक्रमादित्य को परकाया प्रवेश का मंत्र सिखाया और उनसे उसी के सामने दुहराने के लिए कहा। विक्रमादित्य ने मंत्र को दुहराया और जब कलिया को विश्वास हो गया कि मंत्र का उच्चारण सही-सही हो रहा है तो उसने उन्हें वापिस जाने को कहा।

इधर नाई दीवाल से चिपके-चिपके सुनने का प्रयास कर रहा था। उसकी समझ में आ रहा था कि कलिया कोई मंत्र महाराज को सिखा रही है। पर मंत्र वह स्पष्ट रूप से नहीं सुन पा रहा था। विक्रमादित्य के बाहर निकलने के पूर्व वह दीवाल से हटकर दूर जाकर छिप गया और महाराज के पीछे-पीछे पूर्व की भाँति दूरी बनाकर चलने लगा। विक्रमादित्य को इसका जरा भी आभास नहीं हो सका।

दूसरे दिन नाई अर्द्धरात्रि को कलिया के घर पहुँचा। उसका द्वार खटखटाया कलिया के द्वार खोलकर बाहर आने पर उसने कलिया से कहा महाराज ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। उन्होंने कहा- कि कल रात जो मंत्र तुमने उन्हें सिखाया था, वह उसे भूल गए हैं। अत: वह मंत्र तुमसे पूछकर आऊँ। कलिया को पहले तो कुछ संदेह हुआ। पर यह जानते हुए कि वह महाराज का खास आदमी है, उसने मंत्र नाई को बता दिया। इस प्रकार उस चालाक नाई को परकाया प्रवेश का मंत्र ज्ञात हो गया।

राज प्रासाद के उपवन में अनेक तोते पले हुए थे। उनमें से एक पहाड़ी तोता राजा विक्रमादित्य को बहुत प्रिय था। एक दिन प्रात: जब विक्रमादित्य ने देखा कि आज मिट्ठू (तोता) बोल नहीं रहा है तो उन्होंने उसके पिंजड़े के पास जाकर देखा तो मिट्ठू मरा पड़ा था। उन्हें यकायक परकाया प्रवेश मंत्र जो कलिया से सीखा था, को आजमाने का विचार आया। विक्रमादित्य की आत्मा मंत्र पढ़ते ही मृत मिट्ठू के देह पर प्रवेश कर गई और उनकी देह निष्प्राण होकर गिर पड़ी।

नाई चुपचाप यह सब देख रहा था। उसने पलभर की भी देर नहीं की और तुरन्त राजा विक्रमादित्य की देह में परकाया प्रवेश का मंत्र पढ़कर प्रवेश कर गया। राजा विक्रमादित्य को नाई की चाल समझते देर नहीं लगी। उन्होंने समझ लिया कि अब नाई मुझे अपना शिकार बनायेगा। उन्होंने बिना एक पल का विलम्ब किए लम्बी उड़ान भरी और देखते ही देखते वह राजा रूपी नाई की दृष्टि से ओझल हो गए।

नाई ने भी पल भर का विलम्ब नहीं किया और अपनी

प्राणहीन देह को जला डाला। महल माँस जलने की दुर्गंध से भर गया। अपनी देह को जलता छोड़कर नाई ने विक्रमादित्य की भाँति दैनिक क्रिया-कलाप सम्पन्न किए। छाया की भाँति साथ रहने वाला नाई उसकी दैनिक गतिविधियों से तो पूर्व से ही पूरी तरह परिचित था।

नित्य की भाँति आम दरबार लगा। विक्रमादित्य रूपी नाई ने दरबार में प्रवेश किया। उसकी चाल-ढाल को देखकर दरबारियों को आश्चर्य अवश्य हुआ, पर वे कुछ समझ नहीं सके। राज सिंहासन पर बैठते ही उसने आदेश दिया कि राज्य में जहाँ कहीं जितने भी तोते हों उन्हें शीघ्रातिशीघ्र ही मारने का प्रबन्ध किया जाए। एक सप्ताह की अवधि में मेरे राज्य में एक भी तोता दिखाई नहीं पड़ना चाहिए। इस घोषणा के तुरन्त बाद उसने दरबार समाप्त करने की घोषणा कर दी।

क्या प्रजा, क्या सामंत, क्या अधिकारी, क्या रनिवास सभी विक्रमादित्य रूपी नाई के ऊटपटाँग व्यवहारों से सोच में पड़ गए। सभी धीरे-धीरे उससे दूरी बनाने लगे। रनिवास का बुरा हाल था। नाई ने महारानी से दैहिक सम्बन्ध बनाने की चेष्टा की। रानी ने मासिक धर्म का हवाला देकर उस समय अपने सतीत्व की रक्षा की। उन्होंने अपने विश्वास पात्र मंत्री को एकान्त में बुलवाकर बात की। मंत्री ने कहा- कि 'मेरी तो बुद्धि ही काम नहीं कर रही है। आखिर महाराज को क्या हो गया है कि वह पूरी तरह से बदल गए हैं। जो प्रजा रात-दिन उनका गुणगान करती थी, वही अब त्राहि-त्राहि कर रही है।'

मंत्री ने रानी को सलाह दी कि जब भी महाराज आपके पास आयें, आप उनसे कहना कि आज रात में एक दिव्य महात्मा के दर्शन मुझे स्वप्न में हुए हैं। महात्मा ने मुझसे कहा- तुम्हारे पति राजा विक्रमादित्य की मृत्यु निकट है। कोई धोखे से उनके प्राण ले लेगा। यदि तुम अपने पति के प्राणों की रक्षा करना चाहती हो तो शील व्रत का पालन करते हुए जो मंत्र मैं तुम्हें बता रहा हूँ, उस मंत्र का प्रतिदिन ग्यारह हजार एक की संख्या में जाप करना है और ध्यान रहे कि छह माह तक तुम्हारे ऊपर पुरुष की छाया भी नहीं पड़नी चाहिए। नहीं तो तुम्हारे पति के प्राण नहीं बच सकेंगे। मंत्री ने महारानी को विश्वास दिलाया कि राज्य में मैं कोई अनहोनी नहीं होने दूँगा। रानी ने ऐसा ही किया। नाई ने अपने प्राणों के भय से रानी की बात मान ली और रनिवास में जाना बंद कर दिया।

तोतारूपी विक्रमादित्य ने देखा कि कहीं भी तोता नाम के प्राणी को जीवित नहीं छोड़ा जा रहा है तो उन्होंने अपनी राज्य सीमा से पलायन कर अपने पड़ोसी राज्य में शरण लेने का निश्चय किया। तोता रूपी विक्रमादित्य जब उड़ते हुए दूसरे राज्य की ओर जा रहे थे तो मार्ग में उन्होंने देखा कि एक पेड़ पर लगभग एक सौ तोते बहेलिया के जाल में फँसकर फड़फड़ा रहे हैं। विक्रमादित्य से यह दृश्य देखा नहीं गया। वह अपने पर दुःख काटनहार के गुण को भला कैसे भुला सकते थे। वह स्वयं उन तोतों के पास पहुँचे। बहेलिया उस समय वहाँ पर नहीं था।

तोतों से उन्होंने कहा कि सब फड़फड़ाना बंदकर लुढ़क कर पड़े रहो। जैसे मृत तोते पड़े रहते हैं। जब बहेलिया आये तब भी तुम्हें इसी रूप में पड़े रहना है। जाल खींचने अथवा तुम्हें एक-एक कर पकड़कर जब वह जाल से अलग करने लगे उस स्थिति में भी तुम सब मृत तोते की भाँति ही पड़े रहना है। मैं इसी पेड़ पर छुपकर बैठा रहूँगा। सभी तोतों ने ऐसा ही किया।

घण्टे-दो घण्टे बाद जब बहेलिया आया तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सभी तोते जाल में फँसे हुए भी निस्तब्ध पड़े हैं। उसने पेड़ पर चढ़कर तोतों को हिलाया-डुलाया, सभी के सभी निश्चेष्ट मृत प्राय। बहेलिया के जीवन में इस प्रकार का अनुभव पहली बार हुआ था, किन्तु मरे हुए तोतों का वह क्या करता? उनसे अपना जाल छुड़ाया। सभी तोते एक-एक कर जमीन पर गिरते रहे। उन्हें गिरने से पीड़ा तो हुई, किन्तु प्राण बचाने के लिए पीड़ा सह लेना उचित प्रतीत हुआ।

बहेलिया के दूर निकल जाने पर विक्रमादित्य (तोता रूपी) ने कहा कि अब तुम सब अपने-अपने बसेरों पर जाओ और भविष्य में सदैव सावधान रहा करो। तोतों ने उन्हें धन्यवाद दिया और अपने बसेरों की ओर उड़ गये। तोता रूपी विक्रमादित्य पड़ोसी राज्य की सीमा में पहुँच गये और राजमार्ग के किनारे एक सघन अशोक वृक्ष को अपना बसेरा बना लिया। रात-दिन विक्रमादित्य अपने राज्य की प्रजा की चिन्ता में डूबे रहते। उन्हें अपनी मुक्ति का उपाय सूझ नहीं रहा था।

एक दिन उज्जयिनी के एक धर्माचार्य पड़ोसी राजा का आमंत्रण प्राप्त होने पर वहाँ जा रहे थे। जब वह अशोक के वृक्ष के समीप से गुजरे तो विक्रमादित्य ने उन्हें पहचान लिया। उन्होंने झट से नीचे आकर धर्माचार्य को प्रणाम किया और उनसे निवेदन किया कि आचार्य आप उज्जयिनी नगर से यात्रा करते हुए आ रहे हैं। आप बहुत थके हुए प्रतीत होते हैं। आप इस अशोक वृक्ष के नीचे विश्राम कीजिए। तब तक मैं आपके लिए मधुर आम्रफलों की व्यवस्था करता हूँ।

बिना धर्माचार्य का उत्तर सुने वे तुरन्त आम्रफल लाने उड़ गए। पाँच मधुर फल लाकर उन्होंने धर्माचार्य के समक्ष रखते हुए उनसे ग्रहण करने का विनम्र अनुरोध किया। धर्माचार्य बैठे-बैठे सोच रहे थे कि भला इस तोते को यह कैसे ज्ञात हो गया कि मैं धर्माचार्य हूँ और उज्जयिनी से आ रहा हूँ।

धर्माचार्य ने तोते से प्रश्न किया- आपको तो मैं बिल्कुल नहीं जानता हूँ। आप भला मुझे कैसे जानते हैं? तोतारूपी विक्रमादित्य ने कहा- 'आप शाँतिपूर्वक आम्र फलों के सुमधुर रस का पान कीजिए। इसके पश्चात् मैं आपको सब बताऊँगा।'

आम्रफलों का रसपान कर लेने के पश्चात् विक्रमादित्य ने अपनी सारी व्यथा-कथा उन्हें कह सुनाई। पूरी कथा सुनने पश्चात् धर्माचार्य बोले-महाराज! उज्जयिनी की पूरी प्रजा आपके रूप में विद्यमान नाई के कारण त्राहि-त्राहि कर रही है। प्रजा समझ ही नहीं पा रही है कि राजा विक्रमादित्य जैसे प्रजावत्सल, परदु:ख के काटनहार, चौदह विद्या के निधान में यकायक ऐसा परिवर्तन क्यों और कैसे आ गया? अब मैं भली-भाँति समझ गया। आप आज्ञा दें, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ? मेरा धर्म है कि इस आपत्तिकाल में आपकी सेवा करूँ, किन्तु मुझे कोई उपाय नहीं सूझ रहा है।

विक्रमादित्य ने कहा- आप मुझे महल में रानी के पास पहुँचाने की इस चतुराई के साथ व्यवस्था कीजिएगा कि मैं महल में सुरक्षित रूप से पहुँच सकूँ और किसी को कानोंकान पता न चले।

धर्माचार्य बोले मैं अपने वस्त्रों में छुपाकर आपको पूर्ण सुरक्षित रूप से महल में पहुँचाकर अपना धन्य भाग्य समझूँगा। आप यदि आज्ञा दें तो मैं यहाँ के नरेश के यहाँ अपनी उपस्थिति देकर तथा उनसे वापिस लौटने की आज्ञा लेकर आऊँ। विक्रमादित्य ने कहा- 'ठीक है।'

धर्माचार्य ने राजा के दरबार में उपस्थित होकर उनसे निवेदन किया कि महाराज आपका आमंत्रण प्राप्त होते ही मैं एक यज्ञकार्य को अपूर्ण छोड़कर उपस्थित हुआ हूँ। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप अभी वापिस लौटने की अनुमति प्रदान करें। यज्ञ समाप्त होते ही मैं यथाशीघ्र दरबार में उपस्थित हो जाऊँगा। राजा ने धर्माचार्य को आज्ञा दे दी।

वापिस लौटकर धर्माचार्य विक्रमादित्य रूपी तोते के पास आये और उन्हें अपने वस्त्रों में छुपाकर उज्जैन प्रस्थान किया। उज्जैन पहुँचकर उन्होंने चतुराई के साथ विक्रमादित्य रूपी तोते को महारानी के महल में पहुँचा दिया। विक्रमादित्य ने रानी को सारी बात बताई। वे आपस में मुक्ति की किसी युक्ति पर विचार करने लगे।

रानी ने विक्रमादित्य को बताया कि किस प्रकार की युक्ति से उन्होंने अब तक अपने सतीत्व की रक्षा की है। राजा ने रानी की बात ध्यानपूर्वक सुनी और विचार कर कहा कि अब आप विक्रमादित्य रूपी नाई को बुलाकर कहिए कि आज रात में मुझे उसी दिव्यात्मा ने स्वप्न में बताया है कि आपकी साधना अब पूर्ण हो चुकी है। यह साधना सफल हुई अथवा नहीं इसका पता लगाने हेतु आपके पति यदि किसी मरे हुए जीव को जिन्दा कर दें तो समझ लेना आपकी साधना सफल हुई। यदि वे मरे हुए जीव को जिन्दा न कर सके तो आपको फिर से इतनी ही साधना करना होगी।

योजनानुसार रानी ने विक्रमादित्य रूपी नाई को महल में बुलवाकर उन्हें रात्रि का स्वप्न सुनाया। राजा तुरन्त तैयार हो गए। भाग्य से महलों में पला एक शिकारी कुत्ता बीते रात में मर गया था। राजा के हुकुम से उसे लाया गया। नाई ने जैसे ही मृत कुत्ते की देह में प्रवेश किया। विक्रमादित्य ने तोते का शरीर त्यागा और अपनी निष्प्राण पड़ी देह में प्रविष्ट हो गए। उन्होंने तत्काल तलवार से कुत्ता रूपी नाई के दो टुकड़े कर उसे मार डाला।

पूरे राज्य में यह समाचार जंगल में आग की तरह फैल

गया। प्रजा ने देवी-देवताओं को प्रसाद चढ़ाकर अपने प्रिय राजा विक्रमादित्य के दीर्घ जीवन की कामना की। राजा विक्रमादित्य पुनः अपनी प्रजा का पूर्ववत् पालन करने लगे।

राजा भोज की जीवन रक्षा

चौदह विद्याओं तथा चौसठ कलाओं के निधान राजा वीर विक्रमादित्य उज्जैन नगर में राज करते थे। उनके समान दान-पुण्य, धर्म-कर्म और साहसपूर्ण अद्वितीय कार्य करने बोला राजा न तो इस संसार में हुआ है और न होना है। कहते हैं-

मनुज नहीं बलवान है, होत समय बलवान।
भीलन लूटीं गोपिका, बेई अर्जुन बेई वान।।

समय के आगे किसी की नहीं चलती। राजा वीर विक्रमादित्य पर ऐसा बुरा समय आया कि उन्हें अपना राजपाट छोड़कर राजा भोज के यहाँ एक साधारण सी नौकरी करना पड़ी। उनकी कर्त्तव्यपरायणता, स्वामी भक्ति और अद्वितीय साहस को देखते हुए वे राजा भोज के विश्वास पात्र हो गए।

राजा भोज के महलों के पीछे दुर्गम खाई थी, जिसे पार कर महल में प्रवेश कर पाना किसी के लिए भी सम्भव नहीं था। खाई के पीछे घनघोर जंगल था, जिसमें सभी प्रकार के वन्य प्राणी निवास करते थे। रात्रि के समय सियारों का हुआ-हुआ बोलना सामान्य बात थी।

एक रात राजा भोज की शयन कक्ष की रखवाली का भार विक्रमादित्य पर था। राजा विक्रमादित्य यथा समय अपने स्थान पर उपस्थित होकर महल की चौकसी करने लगे। रात्रि आरम्भ हुए अभी अधिक समय नहीं हुआ था कि सियारों की हुआ-हुआ का शोर आरम्भ हो गया। यह तो रोजमर्रा की बात थी। इस कारण विक्रमादित्य का ध्यान उस ओर नहीं गया। थोड़ा और समय बीतने पर उन्होंने एक सियारिन की लीक से हटकर बोलने की आवाज सुनी। विक्रमादित्य चौदह विद्याओं के निधान थे। वह पशु-पक्षियों की बोली- भाषा भली प्रकार जानते-समझते थे। उन्होंने सियारिन की बोली को ध्यानपूर्वक सुना। सियारिन कह रही थी कि आज राजा भोज की मृत्यु को कोई नहीं टाल सकता है।

अपने मालिक राजा भोज की उस रात्रि में सियारिन द्वारा मृत्यु होने की बात सुनकर विक्रमादित्य सोच में पड़ गए। कुछ सोचकर वह उसी दिशा में बढ़े जिस ओर से सियारिन की आवाज आ रही थी। सियारिन ने जैसे ही देखा कि कोई व्यक्ति मेरी ओर शीघ्रता से चला आ रहा है, तो उसने भागना शुरू कर दिया। विक्रमादित्य भी उसके पीछे भागने लगे।

राजा भोज को एक भयंकर बुरा सपना आया। वे जाग गये। उन्होंने शयन कक्ष का द्वार खोला तो देखा कि द्वारपाल बड़ी तेजी से अपना स्थान छोड़कर तेजी से भागा जा रहा है। वे भयंकर स्वप्न देखकर तो जागे ही थे, उन्हें द्वारपाल को इस प्रकार भागते हुए देखकर कुछ संदेह हुआ। उन्होंने भी द्वारपाल विक्रमादित्य का पीछा किया।

सियारिन बराबर भागती जा रही थी और विक्रमादित्य उसके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। भागते-भागते सियारिन नगर कोट के बाहर निर्मित एक उपवन में घुसी। विक्रमादित्य बराबर उसका पीछा कर रहे थे। सियारिन उपवन में निर्मित एक मढ़िया में प्रविष्ट हुई। विक्रमादित्य जब मढ़िया में पहुँचे तो उन्होंने देखा कि वहाँ कोई सियारिन नहीं है। वहाँ तो एक देवी प्रतिमा प्रतिष्ठित है।

विक्रमादित्य समझ गये कि देवी जी ही सियारिन के वेश में राजा भोज की मृत्यु की घोषणा कर रहीं थीं। उन्होंने देवी जी से प्रार्थना की कि हे माता! हमारे राजा भोज का जिन्दा रहना नितान्त आवश्यक है। अस्तु मैं उनके स्थान पर अपने प्राण आपके चरणों में समर्पित करता हूँ। हे माँ! हमारे राजा के प्राणों की रक्षा कीजिए।

यह कहकर विक्रमादित्य ने तलवार निकाली और अपना सिर काटकर माँ के चरणों में समर्पित कर दिया। जिस प्रकार विक्रमादित्य सियारिन का पीछा कर रहे थे, ठीक उसी प्रकार राजा भोज भी विक्रमादित्य का पीछा करते हुए चले आ रहे थे। उन्होंने मढ़िया में प्रवेश करते ही देखा कि हमारे द्वारपाल का रूण्ड-मुण्ड रक्त से लथपथ देवी चरणों में पड़ा हुआ है।

राजा भोज ने माँ से प्रार्थना की कि 'हे माता! यह मैं क्या देख रहा हूँ। आपके चरणों में मेरे विश्वसनीय सेवक का रक्त

रंजित रूण्ड-मुण्ड पड़ा हुआ है। अभी-अभी तो वह मेरे आने के कुछ समय पूर्व ही मढ़िया में प्रविष्ट हुआ था। आप कृपा कर इसका कारण बतायें।'

राजा भोज तो देवी जी के परम भक्त थे। उनकी प्रार्थना माँ कैसे ठुकरा सकती थी। देवी जी ने प्रकट होकर कहा कि आज आपकी मृत्यु सुनिश्चित थी। आपके प्राणों की रक्षा हेतु आपके सेवक ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिये हैं।

राजा भोज बोले हमें अपने सेवक के प्राणों की बलि देकर जीवन नहीं चाहिए। माँ इसे आप जीवनदान दीजिए। मैं अपने प्राण समर्पित करता हूँ। यह कहते हुए जैसे ही राजा भोज ने तलवार निकाली देवी जी ने उनका हाथ पकड़ लिया और बोलीं- हमारे रहते हुए तुम्हारे प्राण कोई नहीं ले सकता। राजा भोज ने कहा- माँ मेरे इस सेवक को प्राण दान दीजिए।

विक्रमादित्य के रूण्ड-मुण्ड देखते ही देखते जुड़ गए, वे जीवित हो गये। भोज ने माँ को प्रणाम कर इसी प्रकार कृपादृष्टि बनाये रखने की प्रार्थना की। राजा भोज ने विक्रमादित्य से अपना पूरा परिचय माँगा। ना- नुकूर करने के पश्चात् वीर विक्रमादित्य ने अपनी पूरी व्यथा-कथा कह सुनाई जिसके कारण उन्हें अपना राजपाट त्यागकर उनके यहाँ नौकरी करनी पड़ी। राजा भोज ने विक्रमादित्य को गले से लगाया और बोले- आपका पर दु:ख काटनहार नाम देश भर में विख्यात है। राजा भोज ने पूरे सम्मान के साथ विक्रमादित्य को विदा किया।

कवि-कोविदों की विजय

पुराने समय की बात है कि उज्जैन में चौदह विद्या के निधान, चौसठ कलाओं के ज्ञाता वीर विक्रमादित्य राज्य करते थे। उनके समान दान-पुण्य, धर्म तथा साहसपूर्ण अद्‌भुत कार्य करने वाला राजा न तो पहले हुआ था और न अब तक हुआ है। वह कवि-कोविदों का बहुत सम्मान करते थे तथा उदारतापूर्वक उनकी हर तरह से सहायता करते थे। महाकवि कालिदास उनके राज्य कवि थे।

राजा विक्रमादित्य ने यह घोषणा कर रखी थी कि जो भी कवि कोई रचना दरबार में उपस्थित होकर सुनायेगा, उसे एक स्वर्ण मुद्रा पुरस्कार स्वरूप भेंट की जायेगी। राज्य में कवि-कोविदों की कमी नहीं थी। लगभग नित्य प्रति अनेक कवि आते और नवीन रचना सुनाकर पुरस्कार स्वरूप स्वर्ण मुद्रा प्राप्त करते थे।

कुछ अकवि भी अवसर का लाभ उठाने की दृष्टि से बेतुकी, अर्थहीन रचना कर दरबार में पहुँच जाता। राजा वीर विक्रमादित्य संकोचवश उसे भी स्वर्णमुद्रा प्रदान कर देते थे। इस प्रकार दिनोंदिन अकवियों की भीड़ दरबार में बढ़ने लगी।

श्रावण का महीना था। काले-काले बादल आकाश में छाये रहते। बिजली कौंधती तो उसकी ध्वनि सुनकर बच्चे डर जाते। कई दिनों से निरन्तर जलवृष्टि हो रही थी। क्षिप्रा नदी में पूर आयी हुई थी। कई दिनों बाद आज मौसम साफ हुआ था। सूर्य नारायण के दर्शन कर सभी का मन प्रसन्न हुआ। छोटे-छोटे बालक-बालिकाएँ कोई बाँसुरी बजाते, कोई चकरी-भौंरा घुमाते, तो बालिकाएँ चपेटा खेलने लग गई थीं। किशोर-किशोरियाँ पेड़ों पर झूला डालने और कुछ गुनगुनाने में मस्त थे।

अच्छा खुला मौसम देखकर एक अकवि जी क्षिप्रा स्नान हेतु गए। क्षिप्रा के तटों पर दोनों ओर जामुन के वृक्ष फलों से लदे हुए हवा के हाथ गलबहियाँ कर रहे थे। जामुनों के पके फल क्षिप्रा में गिरते और नीचे जल में समा जाते और देखते ही देखते पुन: ऊपर आकर जल में तैरने लगते। जामुन के फलों के जल में गिरने-डूबने और फिर ऊपर आने की इस प्रक्रिया में डुमुक-डुमुक जैसी कुछ ध्वनि भी सुनाई पड़ जाती थी।

अकवि क्षिप्रा के घाट पर बैठे-बैठे इस प्रक्रिया को बड़े ध्यानपूर्वक देख रहे थे और मन ही मन कुछ सोचते-सोचते कुछ गुनगुनाना आरम्भ कर देते थे। इसी स्थिति में उन्होंने क्षिप्रा में डुबकी लगाई। वस्त्र बदले और गीले वस्त्र कन्धे पर डाल घर वापिस लौट रहे थे कि अकस्मात कालिदास से उनकी रास्ते में भेंट हो गई।

अकविजी ने कालिदास को आवाज लगाई - 'कलू पण्डित जी नमस्कार।'

कालिदास ने पलटकर देखा और कहा 'पण्डित जी नमस्कार।' कहाँ से आना हो रहा है, अकवि पण्डित जी। अकवि पंडित ने कहा- क्षिप्रा में डुबकी लगाकर आ रहा हूँ। वहाँ एक

मनोहारी दृश्य को देखकर कुछ पंक्तियाँ स्वत: हृदय से नि:सृत हुई। मैंने सोचा क्यों न आप जैसे विद्ववान को सुनाकर यदि उनमें किसी प्रकार के संशोधन की आवश्यकता हो तो आपसे सुधरवा लूँ। आप तो राज्यकवि हैं। आपका हाथ लग जाए तो फिर कोई अशुद्धि रह ही नहीं सकती है।

कालिदास ने कहा- आप अपनी रचना सुनाएँ। दोनों वहीं वृक्ष के नीचे बने चबूतरा पर बैठ गए। अकवि जी ने रचना पढ़ी -

जम्बू फलानि पक्क्वानी वसति विमले जले।
ताहि मत्स्या ना खादंति होत फिरे डुमक-डुमक।।

कालिदास ने ध्यानपूर्वक रचना को सुना और बड़े विनम्र भाव से कहा- पण्डित जी। यदि आप अन्यथा न समझें तो द्वितीय पंक्ति में कुछ परिवर्तन करने से भाव ठीक बन जायेगा। पण्डित जी ने कहा- भैय्या आप विद्ववान हैं, आप जो सुधार बतायेंगे वह अच्छा ही होगा। कालिदास ने कहा कि आप होत फिरै डुमुक-डुमुक के स्थान पर जाल गोला शंक: कर लैं। अकवि ने पूछा इसका अर्थ क्या हुआ?

कालिदास ने समझाया कि मछली का शिकार करने मछुआरे जो जाल जल में डालते हैं, उसमें लोहे के छोटे-छोटे गोले उसके सिरों पर लगे रहते हैं। मछली जल में गिरने वाले काले-काले गोल जामुनों को जाल का गोला होने के भ्रम में नहीं खाती और वह पानी पर तैरते रहते हैं।

अकवि ने कालिदास का सुझाव स्वीकार कर उन्हें धन्यवाद देकर अपने घर की राह पकड़ी। दूसरे दिन अकविजी राजा विक्रमादित्य के दरबार में पहुँचे और अवसर आने पर उन्होंने रचना पाठ किया -

जम्बू फलानि पक्क्वानी बसति विमले जले।
ताहि मत्स्या ना खादंति जाल गोला शंक:।।

विक्रमादित्य ने रचना ध्यान से सुनी तो उनकी समझ में आ गया कि इस तुकबन्दी की अन्तिम शब्दावली तो महत्त्वपूर्ण है। यह शब्दावली प्रस्तुतकर्ता कवि की हो ही नहीं सकती। उन्होंने अकवि जी से व्यंग्य में कहा- आपकी रचना तो समयानुकूल है, किन्तु इसमें आपने 'जाल गोला शंक:' जोड़कर सारा मजा किरकिरा कर दिया।

अकवि तुरन्त अकड़कर खड़े होकर बोले-महाराज। आपका यह राज्यकवि कालिदास सदा अपना राज्य चाहता है। इससे किसी का भला नहीं देखा जाता है। इसी ने मेरी अच्छी भली रचना में जाल गोला शंक: शब्द जुड़वाये हैं।

विक्रमादित्य मुस्कुराये और बोले- कविवर! आपने कौन से शब्दों का प्रयोग किया था, वह तो सुनाइये। अकवि जी बोले- 'मैंने तो महाराज होत फिरे डुमुक-डुमुक लिखा था।' पूरा दरबार हँस पड़ा। महाराज भी नीची गर्दन कर मुस्कुराए और बोले कविवर आपकी रचना सुनकर मन प्रसन्न हो गया। विक्रमादित्य ने अपने पास बुलाकर उन्हें एक स्वर्ण मुद्रा भेंट कर विदा किया।

दरबार समाप्त होने पर विक्रमादित्य ने राज्यकवि कालिदास एवं अपने मंत्रियों को रूकने का संकेत किया। सभी के चले जाने पर विक्रमादित्य ने कालिदास और मंत्रियों से कहा- आज जो रचना अकवि ने पढ़ी उसे आप सबने सुना। दिनों-दिन ऐसे कवियों की संख्या बढ़ती जा रही है। प्रश्न एक स्वर्ण मुद्रा उपहार में देने का नहीं है। उससे हमारा खजाना खाली नहीं हो सकता। प्रश्न दरबार की प्रतिष्ठा का है। यदि ऐसा ही होता रहा तो हमारे दरबार में कवि-कोविदों का आना तो बन्द हो जाएगा। यह गम्भीर मसला है। इस पर गम्भीरता पूर्वक विचार-विमर्श कर इसका कोई हल यथाशीघ्र निकालें। जो आज्ञा कह सभी ने विदा ली।

उसी रात राज्यकवि कालिदास और मंत्रियों की एक बैठक सम्पन्न हुई। गम्भीरता पूर्वक विचार विमर्शकर सर्व सम्मति से निर्णय लिया गया कि रचना पाठ के समय तीन विद्वान उपस्थित रहें और यदि रचना श्रेष्ठ है तो उसे पुरस्कृत करने हेतु महाराज से अनुशंसा करें। यदि रचना स्तरहीन है तो तीन में से पहला व्यक्ति जिसे एक बार सुनने पर याद हो जाए, वह कहेगा कि यह रचना तो पुरानी है। मेरी सुनी हुई है।

यह कहते हुए पहला व्यक्ति कवि द्वारा सुनाई गई रचना पढ़ेगा। इसके पश्चात् दूसरा व्यक्ति जिसे दो बार सुनने पर रचना

याद हो जाए। (एक बार कवि ने रचना पाठ किया, दूसरी बार निर्णायक प्रथम ने रचना पाठ किया। इस प्रकार द्वितीय निर्णायक को दो बार रचना सुनने का अवसर मिला और उसे रचना याद हो जाती।) वह कहता हाँ महाराज! यह रचना तो पुरानी है। मैंने भी यह सुनी है और वह रचना पाठ कर देता। अब तीसरा निर्णायक व्यक्ति कहता- महाराज, यह रचना पुरानी है और मैंने सुनी है। ज्ञातव्य है कि तृतीय निर्णायक एक बार कवि से और एक-एक बार प्रथम एवं द्वितीय निर्णायकों से रचना सुन चुका है। इसलिए तीन बार सुनने से उसे भी रचना याद हो गई। तृतीय निर्णायक रचना पाठ कर देता। इस प्रकार तीन निर्णायकों के रचना पाठ करने से यह सिद्ध हो जाता है कि रचना पुरानी है। यह रचना मूलत: दरबार में सुनाने वाले की नहीं है। निर्णायकों की इस चतुराई का परिणाम यह हुआ कि अकवि बेचारे तो निराश होने लगे। दरबार में अब अकवि प्रवेश का साहस नहीं करते थे। इस विधि का एक दुष्परिणाम यह भी हुआ कि निर्णायक मण्डल के तीन सदस्य जिस सुकवि को किन्हीं निजी कारणों से पसन्द नहीं करते थे, उनकी श्रेष्ठ रचना को भी पुरानी ठहराकर वापिस लौटा दिया जाता था। फलस्वरूप कवि, कोविद संगठित हुए।

निर्णायक मण्डल के सदस्यों से कैसे निपटा जाए? इस हेतु प्रबुद्ध कवि एवं कोविदों की एक बैठक आयोजित की गई। बहुत गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करने के पश्चात् सर्व-सम्मति से यह निर्णय लिया गया कि 'एक ऐसी रचना तैयार की जाये जिसका आशय हो कि हे वीर विक्रमादित्य! आपके पिताश्री ने मेरे पिताश्री से एक सहस्त्र स्वर्ण मुद्राएँ उधार ली थीं और मेरे पिताश्री को यह वचन दिया था कि मेरा पुत्र यह कर्ज आपके पुत्र को अदा करेगा।'

इस प्रकार रचना कर हममें से सबसे बुजुर्ग इसे दरबार में प्रस्तुत करें। यदि तीनों निर्णायकों ने कह दिया कि यह रचना पुरानी है तो राजा को एक सहस्त्र स्वर्ण मुद्राएँ देना पड़ेंगी और यदि निर्णायकों द्वारा कहा गया कि रचना नवीन है तो एक स्वर्ण मुद्रा तो मिलेगी ही। इस प्रकार आगे का रास्ता भी खुल जाएगा।

सर्वसम्मति से लिए गए निर्णयानुसार वरिष्ठ कवि ने दरबार में रचना प्रस्तुत की। निर्णायकों ने मन में सोचा कि इस रचना को पुरानी बतायेंगे तो राजा को एक सहस्त्र मुद्राएँ देनी पड़ेंगी। अच्छा है कि इसे नवीन रचना स्वीकार कर लिया जाये। निर्णायकों ने कहा- महाराज रचना नवीन है। प्रस्तुतकर्ता को एक स्वर्ण मुद्रा भेंट की गई।

वीर विक्रमादित्य ने कालिदास से कहा कि प्रभु की कृपा से खजाना भरा पड़ा है। मुद्राओं की कोई कमी नहीं है। अस्तु पूर्व की व्यवस्था बहाल करना उचित होगा। कवियों, अकवियों का उत्साहवर्धन होगा। अकवि भी धीरे-धीरे कविता करना सीखते रहेंगे। कालिदास ने कहा- 'महाराज आपका निर्णय श्रेष्ठ है।'

वीर विक्रमादित्य के इस निर्णय की विधिवत घोषणा कराई गई। पूर्व की भाँति पुन: कवि, कवियों और अकवियों का दरबार में आना-जाना आरम्भ हो गया। कवि, कवियों की योजना सफल हुई।

विक्रमी संवत् का शुभारम्भ

चौदह विद्याओं एवं चौसठ कलाओं के ज्ञाता गुणवान राजा वीर विक्रमादित्य उज्जैन नगर में राज्य करते थे। उन जैसा राजा होना दुर्लभ है। उनके समान दान-पुण्य, धर्म-कर्म और साहसपूर्ण कार्य करने वाला राजा आज तक धरती पर नहीं हुआ है। उनके दरबार में कवि, कोविदों, विभिन्न कला मर्मज्ञों की भीड़ लगी रहती थी। सभी को यथोचित सम्मान प्राप्त होता था।

अमावस्या तिथि को राजा विक्रमादित्य का दरबार भरा हुआ था। राज्य ज्योतिषी अमर सिंह दरबार में उपस्थित थे। राजा ने अमर सिंह से पूछा- 'ज्योतिषीजी आज कौन सी तिथि है?'

अमर सिंह किसी गहन चिन्तन में डूबे हुए थे। राजा द्वारा अकस्मात् प्रश्न करने पर उनकी तन्द्रा टूटी और हड़बड़ाहट में उनके मुँह से निकल गया महाराज पूर्णमासी है। राज ज्योतिषी का उत्तर सुनकर राज्यसभा में सन्नाटा छा गया। सन्नाटे को भंग करते हुए मंत्री ने पूछा- 'ज्योतिषी जी क्या आज पूर्ण चन्द्र उगेगा?' अमर सिंह के मुख से तो पूर्णमासी शब्द निकल ही गया था। अपनी भूल को स्वीकार न करते हुए उन्होंने बड़ी दबंगी से कहा- आज जब पूर्णमासी है तो पूर्ण चन्द्रोदय में क्या सन्देह है?

राज्यसभा विसर्जित होने पर सभी लोग बाहर निकले। सभी को राज्य ज्योतिषी की बात पर आश्चर्य हो रहा था। सभी अपने-अपने घर पहुँचे और संध्या पश्चात् चन्द्रोदय की प्रतीक्षा करने लगे। पूरे नगर में यह चर्चा का विषय था। सभी चन्द्रोदय की भविष्यवाणी की सत्यता जानने हेतु आकाश की तरफ दृष्टि जमाये हुए थे।

अमर सिंह राज्य ज्योतिषी को अपनी भूल का अहसास तो उसी समय दरबार में ही हो गया था। वह चिन्तित, मुरझाया हुआ मुख लिए अपने आवास पर पहुँचे। उनकी पुत्री ने अपने पिता को इस हालत में देखकर उनसे इस प्रकार चिन्तित होने का कारण पूछा। अमर सिंह की आँखों में पानी भर आया। उन्होंने आँसू पोंछते हुए कहा- 'बेटी आज मुझसे ऐसी भूल हो गई, जिसके परिमार्जन का कोई उपाय ही नहीं है।'

बेटी ने कहा- पिताश्री! समस्या का कोई न कोई समाधान तो होता ही है। आप कृपया समस्या तो बताइये। ज्योतिषी जी ने पूरी घटना कह सुनाई। पूरी बात सुनकर थोड़ी देर तक पुत्री भी कुछ न बोल सकी। थोड़ा रूककर वह बोली- 'आप चिन्ता न करें। आज आकाश में पूर्ण चन्द्रोदय ही होगा। मैं आज तक की गई अपनी साधना को दाँव पर लगा दूँगी। चन्द्रमा को आज पूर्णरूपेण उदय होना ही होगा।' इतना कहकर ज्योतिषी की पुत्री छत पर जाकर आसन जमाकर बैठ गई। उसने चन्द्रमा का आह्वान किया। उनकी पूजा-अर्चना कर उसने नेत्र बन्द किए और मौन स्वर में किसी मंत्र का जाप करने लगी।

चमत्कार हो गया। आकाश में पूर्ण चन्द्रोदय होने के पूर्व ही आभा धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। यथासम्भव आकाश में पूर्ण चन्द्रोदय हुआ। अमर सिंह अपनी पुत्री के इस कमाल को देखकर दंग रह गये। पुत्री उठी उसने चन्द्रदेव को अर्घ्य देकर प्रणाम किया। अमर सिंह ने पुत्री को गले से लगाकर कहा- बेटी! तू धन्य है। आज तूने मेरी लाज रख ली। मुझे यह तो बता कि इस असम्भव कार्य को तूने कैसे सम्भव किया? 'पुत्री बोली पिताश्री यह आपके आशीर्वाद से ही सम्भव हो सका है।'

दूसरे दिन राज दरबार में उपस्थित सभी सदस्य राज्य ज्योतिषी अमर सिंह को विस्मय भरी निगाहों से देख रहे थे। राजा विक्रमादित्य इस चमत्कार को देखकर नतमस्तक हो गए और उन्होंने घोषणा की कि 'अब से विक्रम संवत् का समापन पूर्णमासी के स्थान पर अमावस्या को होगा। चैत्र माह की अमावस्या पश्चात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से विक्रम संवत् के नए वर्ष का शुभारम्भ होगा।'

तभी विक्रम संवत् का अमावस्या को समापन एवं प्रतिपदा से नव वर्ष के शुभारम्भ का प्रचलन हुआ, जो निरन्तर चला आ रहा है।

सन्दर्भ

1. V.S. KRISHNA State editor, M.P. District Gagetteers-Gowlior Published by the Govt. of Madhya Pradesh, F.E. 1965, Page 23-24
2. डॉ. हरिहर निवास तोमरों का इतिहास, द्वितीय भाग, प्रकाशक-विद्यामंदिर प्रकाशन मुरार, ग्वालियर, प्रथम संस्करण 1876 पृष्ठ 132
3. V.S. KRISHNA State editor, M.P. District Gagetteers-Gowlior, Page 366
4. डॉ. हरिहर निवास तोमरों का इतिहास, द्वितीय भाग, पृष्ठ - 136-37

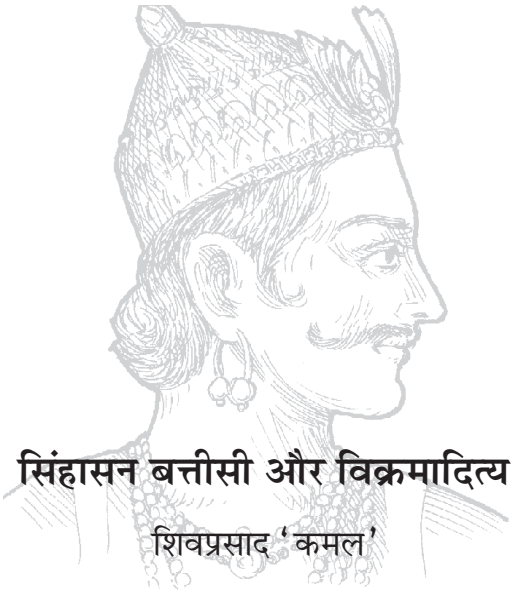

सिंहासन बत्तीसी और विक्रमादित्य

शिवप्रसाद 'कमल'

भारत में इतिहास लेखन की अधिकारिक, तथ्यपूर्ण, तिथि, वर्ष आदि की सही-सही कमी सदा दिखलाई देती है। ईस्वी सन् से बारहवीं शती का इतिहास अंधकारमय ही है। प्राय: अन्य व्यक्तियों, विशेषकर राजकुलों के इतिहास के लिए हमें विदेशी इतिहासकारों के कथन पर विश्वास करना पड़ता है। अनेक महापुरुषों और सम्राटों के सम्बन्ध में मात्र अनुमान का सहारा लेना पड़ता है या उन्हें मित्र के रूप में स्वीकारना पड़ता है। यही हाल उज्जैन नरेश विक्रमादित्य का है। वास्तव में विक्रमादित्य कोई नाम नहीं है, यह उपाधि है। युद्ध आदि में अधिक वीरता प्रदर्शित करने के कारण उस व्यक्ति को विक्रमादित्य की उपाधि दी जाती थी। वैदिक काल में इन्द्र, अग्नि, वायु, मित्र स्वरूप आदि का जो जिक्र आया है, वह व्यक्ति नहीं हैं, अपितु उनके पद के नाम हैं। जैसे आज प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति आदि हैं, इसी प्रकार अन्य वैदिक नाम भी पद के नाम हैं। देवताओं का प्रधान जो भी चुना जाता था, उसे इन्द्र कहते थे। वायु और जल का कार्यभार देखने वाले को वायुदेव तथा जलदेवता कहा जाता था। इसी प्रकार विक्रमादित्य भी एक व्यक्ति का नाम न होकर, किसी को वीरता के कारण दी जाने वाली उपाधि है।

यही हाल उज्जैन नरेश विक्रमादित्य का है। माना गया है कि यह उज्जयिनी के प्रसिद्ध और प्रतापी शासक थे, जिनके सम्बन्ध में अनेक किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं। इन्हीं ने विक्रम संवत् चलाया। इनके नाम से ही सिंहासन बतीसी और बैताल पचीसी की कहानियाँ किसी समय अत्यन्त लोकप्रिय थी। कुछ स्थानों पर माना गया है कि इनके बड़े भाई भर्तृहरि को जब शासन और सत्ता से वैराग्य हुआ तो सारा राजकार्य विक्रमादित्य के हाथों में आया। भर्तृहरि तो नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित होकर उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले में चुनारगढ़ चले आये, जिसका प्राचीन नाम चरणाद्रिगढ़ था। भर्तृहरि जब चुनारगढ़ आये, उस समय चारों ओर वन और विंध्य पर्वतखंड से लगाकर भागीरथी गंगा बह रही थीं। इसी पहाड़ी पर वे तपस्यारत हुए और अपने बड़े भाई की हिंस्र पशुओं से

रक्षा हेतु विक्रमादित्य ने एक परकोटा बनवा दिया। माना जाता है कि भर्तृहरि की मृत्यु के बाद यहाँ (चुनार में) समाधि स्थल का निर्माण हुआ। आगे चलकर विंध्य पर्वत माला के इस खंड का सैनिक महत्त्व होने के कारण यहाँ जिन-जिन राजाओं का आगमन हुआ, उन्होंने इस दुर्ग के अनेक भागों का निर्माण कराया। इस दुर्ग पर संगमरमर की जो प्लेट लगी है, उस पर सर्वप्रथम विक्रमादित्य 56 बी.सी. लिखा हुआ है। इसके बाद अनेक राजाओं यथा पृथ्वीराज से लेकर ब्रिटिशों के नाम हैं। एक पुस्तक संवत 1990 में छपी थी। इसके लेखक गोरेलाल तिवारी हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास' में लिखा है कि राजा भर्तृहरि के पिता का नाम गंधर्वसेन था और यह तीन भाई थे। बड़े भाई का नाम नागशंख, दूसरे का नाम भर्तृहरि और तीसरे का नाम विक्रमादित्य था। किन्तु यदि भारत के प्राचीन इतिहास पर नजर डालें तो पता चलता है कि चन्द्रगुप्त को विक्रमादित्य की उपाधि दी गयी थी। चन्द्रगुप्त नाम के कई नरेशों और 'विक्रमादित्य' की उपाधि भी कई सम्राटों के साथ जुड़ी मिलती है। इन नामों पर इतिहासकारों में अनेक मतभेद रहे हैं। इन मतभेदों को हटाकर कुछ साहित्यकारों ने यह माना कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, गुप्त वंश का तीसरा सम्राट और समुद्रगुप्त का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था। इसका शासनकाल 375 ई. से 413 ई. तक माना जाता है।

इस चन्द्रगुप्त ने मालवा, गुजरात और काठियावाड़ पर विजय प्राप्त की। उज्जयिनी के शक शासकों को उखाड़ फेंका एवं उनका राज्य गुप्त साम्राज्य में मिला लिया। अपनी इन विजयों के कारण उसे विक्रमादित्य की उपाधि मिली। विक्रमादित्य का अर्थ है- सूर्य की तरह तेजस्वी। यह चन्द्रगुप्त वास्तव में तेजस्वी, पराक्रमी, न्यायप्रिय और उदार था। इतिहासकारों ने यह भी माना कि इस चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में कला, स्थापत्य और मूर्तिकला का सांस्कृतिक विकास चरम पर पहुँच गया था।

इसके सम्बन्ध में इतिहास कहता है कि यह 375 ई. में गद्दी पर बैठा। इसने अपने साम्राज्य के विस्तार की योजना बनायी। यह दरअसल मालवा और गुजरात-काठियावाड़ के शक शासकों पर विजय प्राप्त करना चाहता था, किन्तु मालवा और गुजरात के पूर्व में वाकाटक राजा रूद्रसेन का राज्य था। इस शक्तिशाली राज्य को मिलाने के लिए चन्द्रगुप्त ने अपनी बेटी प्रभावती का विवाह रूद्रसेन से कर दिया। इस प्रकार शकों के सम्बन्ध में इतिहासकारों का मानना है कि उसकी सीमा पूर्व में बंगाल तक तथा पश्चिम में हिन्दुकुश पर्वत के उस पार वाल्मीक तक था। प्रमाण में इतिहासकार कहते हैं कि कुतुबमीनार के पास स्थित लौह स्तम्भ पर खुदे लेख को पढ़ने से ज्ञात होता है कि किसी चन्द्र सम्राट द्वारा इन सीमाओं तक राज्य विस्तार का उल्लेख है।

उपरोक्त क्षेत्रों के कारण इसके राज्य में धन की वर्षा होती थी। उस समय उज्जयिनी बहुत बड़ा व्यापारिक केन्द्र था। अत: चन्द्रगुप्त ने वहाँ एक और राजधानी बनायी थी, जबकि मुख्य राजधानी पाटिलपुत्र में ही रखी। इसके साथ गुजरात-सौराष्ट्र के बंदरगाहों से समुद्री व्यापार के चलते भी उसका राजकोश भर रहा था। यह वही समय था जब प्रसिद्ध चीनी यात्री फाह्यान भारत आया था। फाह्यान का काल 405-411 ई. माना जाता है। हालांकि इस दौरान फाह्यान कभी चन्द्रगुप्त के दरबार में नहीं गया। इसके बावजूद उसने चन्द्रगुप्त की शासन व्यवस्था का वर्णन विस्तार से किया है। वास्तव में फाह्यान बौद्ध भिक्षु था और वह बौद्ध ग्रंथों की तलाश में चीन से चलकर भारत आया था। वह यात्रा में अनेक कष्टों को सहते हुए तक्षशिला होते हुए पेशावर पहुँचा और इस तरह उत्तरी भारत की यात्रा करते हुए वह पाटलिपुत्र आया। यहाँ वह तीन वर्ष रहा तथा उसने संस्कृत भाषा सीखी और तब बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन किया। फाह्यान ने उस समय जो देखा उसका अत्यन्त रोचक वर्णन किया, किन्तु आश्चर्य है कि उसने उस समय के शासक का नाम नहीं लिखा। चूंकि उस समय चन्द्रगुप्त द्वितीय का ही शासन था, इसलिए फाह्यान का वर्णन चन्द्रगुप्त की ही शासन व्यवस्था से सम्बन्ध है।

फाह्यान ने लिखा है कि- उस समय जनता धन से सम्पन्न तथा सुखी थी और सभी को अपना धर्म मानने की आजादी थी। चंद्रगुप्त स्वयं पौराणिक धर्म मानता था, लेकिन बौद्ध या दूसरे लोगों को अपना धर्म मानने की स्वतंत्रा थी। चंद्रगुप्त के दो मंत्रियों में एक शैव उपासक तथा दूसरा धर्म को मानने में बौद्ध था। फाह्यान ने बड़े विस्तार से चंद्रगुप्त के शासन की विशेषताओं का वर्णन करते हुए लिखा कि यहाँ पूर्ण शांति

व्यवस्था है तथा चोरी-डकैती नहीं होती। यहाँ का राजप्रसाद अत्यंत भव्य है और लगता है देव निर्मित है। उसने उस समय व्यवहार एवं खरीद-फरोख्त में चलने वाले सोने-चाँदी के सिक्कों का भी वर्णन किया है। मार्ग में बनवाए गए विश्राम गृहों तथा चिकित्सालयों का वर्णन भी फाह्यान ने विस्तार से किया है।

यह सत्य है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय अत्यंत पराक्रमी, न्यायप्रिय, कुशल प्रशासक के साथ-साथ साहित्य प्रेमी और कला पारखी भी था। उसके दरबार में नवरत्न थे, जिनमें कालिदास, अमरकोश के रचयिता तथा महान चिकित्सक धन्वंतरि, आर्यभट्ट, वराहमिहिर जैसे ज्योतिष तथा खगोलविद, बौद्ध-विद्वान वसवंधु, दिग्नाथ तथा कई विद्वान भी थे। चन्द्रगुप्त बहुमुखी प्रतिभा का धनी और सर्वगुण सम्पन्न सम्राट था। उसके सम्बन्ध में इतने मिथ बने कि उसी आधार पर 'सिंहासन बत्तीसी' और 'बैताल पच्चीसी' की रचना हुई। विक्रमादित्य के सम्बन्ध में इतने मिथक प्रचलित थे कि लोगों ने उनके सम्बन्ध में इतिहास से अलग कहानियाँ गढ़ी। उनके पराक्रम का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया। चन्द्रगुप्त ने करीब 39 वर्ष राज्य किया। माना गया कि 413 ई. में उसका निधन हुआ, किन्तु चुनार दुर्ग पर लगे शिलालेख में ईसा पूर्व 56 का उल्लेख है। हो सकता है यह विक्रमादित्य कोई अन्य रहे हों। इसी प्रकार भर्तृहरि के सम्बन्ध में है। एक की समाधि चुनार और दूसरे की आबू पर्वत पर है। एक भर्तृहरि योगी है और दूसरे ने श्रृँगार, नीति एवं वैराग्य शतकों की रचना की। यही हाल विक्रमादित्य का भी है।

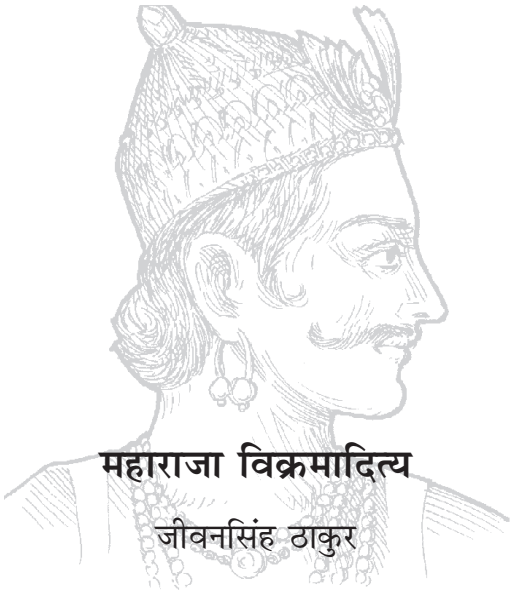

महाराजा विक्रमादित्य

जीवनसिंह ठाकुर

भारतीय समाज में दो तरह के इतिहास रहे हैं। एक इतिहास जन इतिहास होता है और दूसरा सत्ता के द्वारा लिखा गया होता है। इतिहास की तीसरी धारा भी है- वह है आक्रमणकारियों द्वारा कब्जा करने पर उस क्षेत्र, देश और स्थान की गौरवशाली स्मृतियों, लिखित, अलिखित इतिहास, साहित्य को नष्ट करना। हमारे देश में तीसरा कारण ज्यादा रहा है।

इस तीसरी धारा का एक सर्वमान्य 'एजेण्डा' बहुत ही स्पष्ट होता है। वह है हर गौरवशाली समय, घटना, परम्परा को 'संशयग्रस्त' करना। वैचारिकता जब संशयग्रस्त होने लगती है तो वह तथ्यों, प्रमाणों, परम्परा, भाषा, संस्कृति के प्रति अलगाव पैदा करने लगती है। अलगाव किसी भी समाज, देश, समुदाय को ऊर्जाहीन, मानसिक गुलामी के लिए तैयार कर लेता है।

पिछले हजार वर्षों से हमारी विरासत निरंतर आक्रांत की गई है। 'किन्तु-परंतु' में उलझती गई है। यह भाव हमारे गौरवशाली इतिहास, साहित्य, चिंतन, परम्परा, ग्रंथों में गहरा 'अविश्वास' पैदा करता है। ऐसे में समाज वैचारिक अराजकता या भटकाव से ग्रस्त होता जाता है। यह देखा गया है कि सूरज के प्रकाश की तरह चमकते तथ्य, चमचमाता इतिहास, साहित्य, परम्परा को 'अंधेरे से ग्रस्त' सिद्ध किया गया।

ऐसा सिद्ध करने का कारण अनजाना नहीं है। यह कारण भी सुस्पष्ट और समझा जाने योग्य है। जब भी कोई आक्रमण, विध्वंसक शक्ति राष्ट्र को नष्ट करती है और कब्जा करती है तो वह अपने हमले को न्यायोचित, प्रामाणिक तर्कों के साथ अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करती है। हजार बरस से इस संस्कृति के साथ यह होता आया है।

महाराज विक्रमादित्य भारतीय जनमानस में राजा और जननायक की छवि वाले राजा ही रहे है। विक्रमादित्य राजाशाही से बाहर निकलकर जनचेतना का हिस्सा बन गया। वह किताबों से निकलकर लोक में समा गया। सत्ता छिन सकती है, तख्त छिन जाते हैं, धन जा सकता है। लेकिन 'विक्रमादित्य' लोक चेतना बन जाते हैं, तो फिर सत्ता और ताज के भौतिक स्वरूप के कुछ मायने नहीं रह जाते।

चेतना का अपहरण नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह लोक को जिंदा रखती है। उन स्मृतियों को जिन्दा रखती है जो हमारे 'होने', हमारे 'अस्तित्व' को निरंतर उपस्थित बनाये रखते हुए 'संस्कृति' का निर्माण, परिमार्जन और परिष्कृत करती चलती है।

विक्रमादित्य और विक्रम संवत् स्वयं ही प्रमाणित हैं। बिना किसी के कहे सुने मालवा तथा भारतीय मानस ने 'विक्रम संवत्' और विक्रमादित्य को मूल केन्द्र में मानकर काल गणना की है। भारतीय जन मानस पूरी श्रद्धा और विश्वास की सहजता से यह करता आया है। मानस में कहीं कोई दुविधा या संशय कतई नहीं रहा। एक उदाहरण विक्रमादित्य के सम्बन्ध में दिया जा सकता है– 'शकों की पहली शाखा का, जो कि मथुरा की तरफ गई थी, ईसा के पूर्व की पहली शताब्दी के प्रारम्भ के बाद क्या हुआ, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। संभवत: इन्हें ईस्वी सन् में 58 वर्ष पूर्व के निकट शकारि विक्रमादित्य ने हराया होगा और इसी घटना की यादगार में उसने अपना संवत् भी प्रचलित किया होगा।' डॉ. ए.एन. उपाध्याय ने भी अपने लेख में जिसका शीर्षक 'विक्रमादित्य का नाम आज तक जीवित रखा है यह संवत् भारतवर्ष के अनेक भागों में प्रचलित है। गुजरात तथा मध्यप्रदेश के जैन लेखकों ने मुख्यत: इसी विक्रम संवत का उपयोग किया है।'

विक्रमादित्य की प्रामाणिकता तथ्यात्मक, ऐतिहासिक और साहित्य के संदर्भ में पूरी तरह स्थापित सत्य है। इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता। प्रमाणिकता के क्रम में प्रख्यात विद्वान डॉ. राजबली पाण्डेय ने आचार्य केशव प्रसाद मिश्र (जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभागाध्यक्ष थे) के पास अभिज्ञान शाकुन्तलम् की हस्तलिखित प्रति (अगहन सुदी 5 संवत् 1699 वि.) का हवाला दिया है, जो विक्रमादित्य के बारे में गहरी और सटीक जानकारी देती है। विक्रमादित्य के प्रति एक विशेष बात रेखांकित होती है, जो उसके काल, समाज, राजनीति और व्यवस्था को परिभाषित करती है 'विक्रमादित्य ने शकों को उनके प्रथम पड़ाव में पराजित करके इस क्रांतिकारी घटना के उपलक्ष्य में 'मालवगण स्थिति' नामक संवत् का प्रवर्तन किया, जो आगे चलकर 'विक्रम संवत्' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। विक्रमादित्य स्वयं काव्य मर्मज्ञ तथा कालिदास आदि कवियों, कलाकारों के आश्रयदाता थे।'

डॉ. पाण्डेय ने रेखांकित किया है कि विक्रमादित्य 'गणमुख्य' थे। तर्क यह दिया गया कि 'विक्रमादित्य' नाम के साथ कोई उपाधि का प्रयोग नहीं है। इस उदाहरण से 'विक्रमादित्य' उनके पराक्रम, संस्कृति निष्ठा प्रमाणित होती है। साथ ही यह भी पता चलता है कि 'विक्रमादित्य' गणमुख्य की भूमिका में एक बड़े 'जन नायक' भी है। जैसा कि इस लेख के प्रारम्भ में भी कहा गया है कि विक्रमादित्य की छवि जन या 'लोक नायक' की छवि थी। वे 'लोक चेतना' के प्रतीक बन गये थे।

महाराजा विक्रमादित्य का जनसेवी, सामाजिक जीवन मूल्यों वाला व्यक्तित्व 'कथा सरित सागर' के साथ–साथ 'बेताल पच्चीसी और सिंहासन बत्तीसी' जैसी लोक कथाओं में मुख्य केन्द्रित चरित्र में है। यहाँ यह कहना संदर्भित होगा कि जब इतिहास के पात्र साहित्य और लोक कथाओं (लोकसाहित्य) में आते हैं, तो वे पात्र अमर पात्र बन जाते हैं। लोक साहित्य की सबसे बड़ी ताकत यह होती है कि वह सत्ता से ऊपर, अपना नायक चुनती है। इतिहास का नायक हार–जीत, पतन के कुहासे में चला जाता है या जा सकता है। लेकिन सामाजिक लोक, जन में वह अमर पात्र होता है, जिसे किसी विरोधी की या हमलावारों की तलवार न काट सकती है न तोप उड़ा सकती है। विक्रमादित्य ऐसे ही राजा भी हैं, नायकऔर जनसेवी भी हैं।

आमतौर से 'विक्रमादित्य' एक उपाधि मानने का आग्रह इतिहासकारों में देखा जाता है। जहाँ तक गुप्त सम्राटों का प्रश्न है, उनके अपने वंशक्रम के संवत् मौजूद हैं– 'उनके किसी भी उत्कीर्ण लेख में मालवा अथवा विक्रम संवत् का उल्लेख नहीं

है।' इससे ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य पृथक से मौजूद थे। चन्द्रगुप्त आदि के तालमेल से किसी षडयंत्र की बू आती है। इतिहास प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त मौर्य जहाँ महाप्रतापी और प्रेरणादायी राजा था। जो भारतीय संस्कृति और इतिहास का प्रमुख नक्षत्र है। वहीं बाद की तीसरी शती में (ई.पूं. 100 वर्ष) विक्रमादित्य का उदय एक बड़ी घटना थी, जो भारत को गौरवान्वित और प्रेरित करती है। इन प्रेरणाओं और श्रेष्ठता वाले चरित्र को काल्पनिक या दीगर कहीं जोड़ने से भारत को कम करके आंकने की भावना निहित है। लेकिन अब हमें पूरे मनोयोग से सही इतिहास दिग्दर्शन करना चाहिये। क्योंकि यह महज इतिहास के किसी राजा का प्रश्न नहीं। यह प्रश्न सांस्कृति अस्मिता, राष्ट्रीय मुख्य धारा का भी है।

इतिहास और संस्कृति में देखें तो कुछ महत्त्वपूर्ण उदाहरण सामने आते हैं, जब विक्रमादित्य की चर्चा करते हैं तो उनकी छबि यानी लोक छवि की तुलना राम या कृष्ण से की जा सकती है। राम या कृष्ण सिर्फ 'राजा' या सम्राट ही नहीं 'लोक नायकत्व' से भी सम्पन्न थे। 'विक्रमादित्य' उसी धारा में प्रतिनिधि की तरह उभरते हैं।

पश्चिम में एक नाम 'सीजर' का मिलता है यही सीजर, केसर (Kaiser या Keiser) यह बारह तरीके से लिखा-पढ़ा गया है। कैजर (Kaizer, CAISAR, KOESER) भी है। रूस के शासक 'जार' (CZAR) भी सीजर का ही रूप हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि 'सीजर' उपाधि की तरह अन्यत्र उपयोग किया गया, जबकि 'सीजर' ही एक व्यक्ति था। उसी तरह 'विक्रमादित्य' एक ही है अपनी श्रेष्ठता गुण, कर्म से वह उपाधि का प्रतीक बन गया और अन्य राजाओं ने नाम के आगे धारण करके अपने को 'विक्रमादित्य' की तरह महसूस किया। 'ईस्वी सन् के पश्चात् भारत के सम्राटों का अपने नाम के साथ विक्रमादित्य की उपाधि को जोड़ना इस बात का सूचक है कि कोई व्यक्ति 'विक्रमादित्य' हुआ था। अगर हम विदेशी बाबर के हमले के वक्त का इतिहास देखें तो भारतीय इब्राहिम लोदी के सेनापति हेमचन्द्र पोरवाल ने जिसे आमतौर से 'हेमू' कहा गया है, उसने भी 'हेमचन्द्र विक्रमादित्य' नाम धारण करके संघर्ष किया था।

विक्रमादित्य की ऐतिहासिक, उसकी साहित्य में उपस्थिति, लोकपक्ष में उपस्थिति, इतनी व्यापक और सुदृढ़ है कि विक्रमादित्य उज्जयिनी के सम्राट और एक श्रेष्ठ अपने पृथक व्यक्तिव के धनी पुरुष थे। साहित्य और लोक में स्वीकार प्रामाणिकता, कर्म, सेवा, शौर्य, सामाजिक मूल्यों के बिना नहीं होता है। विक्रमादित्य महाराजा भी हैं और एक श्रेष्ठ जननायक भी।

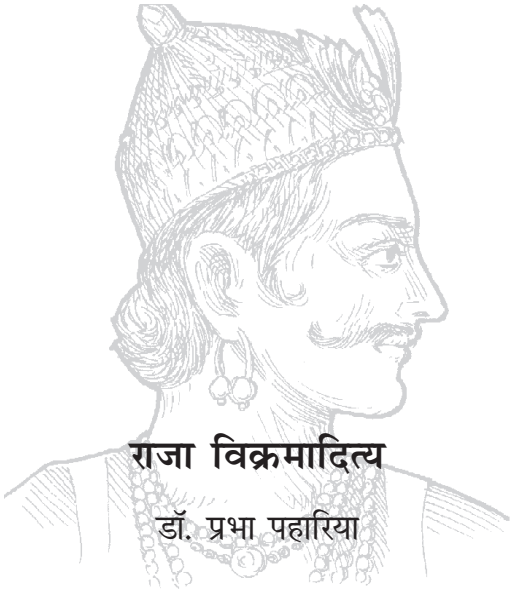

राजा विक्रमादित्य

डॉ. प्रभा पहारिया

उज्जैन नवसंवत्सर एवं चैत्र नवरात्रि का शुभारम्भ आठ अप्रैल को साम्य नवसंवत्सर के रूप में हुआ। नया संवत् प्रारम्भ करने के लिए महाराजा विक्रमादित्य ने परम्परानुसार अपने राज्य की प्रजा के सभी बकाया करो को माफ कर दिया और राज्य कोष से धन देकर दीन दुखियों को साहूकारों के कर्ज से मुफ्त किया था, इस दिन संवत् की शुरूआत मानी जाती है।

महाराजा विक्रमादित्य ने भारत की तमाम कालगणना परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए विक्रम संवत् का शुभारंभ चैत्र मास के शुक्ल पक्ष, तिथि प्रतिपक्ष से किया, क्योंकि पुराणों के अनुसार इसी दिन ब्रह्माजी ने सृष्टि का निर्माण किया था। सूर्य मेष राशि में प्रवेश करता है। संवत्सर चक्र के अनुसार सूर्य इसी दिन अपने राशि चक्र की प्रथम राशि मेष में प्रवेश करता है। इस पावन तिथि को नव संवत्सर पर्व के नाम से मनाया जाता है। चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन हैं। दो मास मिलाकर ही एक ऋतु बनती है।

विक्रमादित्य ने विक्रम संवत् की स्थापना की, इस बारे में विद्वान एक मत नहीं हैं। वैसे पूर्व के तथ्य और अनेक शोधों ने विक्रम संवत् को पूर्ण रूप से मान्यता प्रदान कर दी है। इसके बाद भी अनेक विद्वानों का कथन है कि 57 ई.पू. के लेखों पर संवत् का प्रयोग अवश्य हुआ है, पर संवत् नाम विक्रम नहीं था। संवत् की स्थापना 794 के लेख पर विक्रमादित्य का ही नाम है। इतिहासकार यह भी मानते हैं कि संवत् तो ई.पू. 57 में शुरू किया गया। इसका नाम मालवगण की पूर्ण स्थापना होने से उसी संवत् का नाम मालवा और प्रवर्तक विक्रमादित्य होने से वही संवत् विक्रम नाम से विख्यात हुआ।

महाराजा विक्रमादित्य के जन्म को लेकर अलग-अलग मान्यताएँ है, इनका जन्म सूरी नामक 102 ई.पू. के आस-पास हुआ

था। महेसरा सूरी नामक एक जैन साधु के अनुसार उज्जैन के एक बहुत बड़े शासक गर्दभिल्ल ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग करके एक संन्यासिनी का अपहरण कर लिया था, जिसका नाम सरस्वती था। संन्यासिनी का भाई मदद की गुहार के लिए एक शक शासक के दरबार में गया। शक शासक ने उसकी मदद की और युद्ध में गर्दभिल्ल से उस संन्यासिनी को रिहा कराया। कुछ समय के बाद गर्दभिल्ल को एक जंगल में छोड़ दिया गया, जहाँ पर वह जंगली जानवरों का शिकार हो गया। राजा विक्रमादित्य इसी गर्दभिल्ल का पुत्र था, अपने पिता के साथ हुए दुर्व्यवहार को देखते हुए राजा विक्रमादित्य ने बदला लेने की ठानी।

एक कथा के अनुसार राजा विक्रमादित्य बहुत ही न्यायप्रिय राजा थे। इनकी बुद्धि की परीक्षा के लिए स्वर्ग के राजा इंद्र ने इन्हें बुलाया था। राजा इंद्र ने इन्हें स्वर्ग में हो रही एक सभा में भेजा, वहाँ दो अप्सराओं रम्भा और उर्वशी के बीच नृत्य की प्रतियोगिता थी, इन्द्र ने पूछा- कौन सी नर्तकी बेहतर है।

राजा ने दोनों नर्तकियों को फूल के गुच्छे में बिच्छू रखकर नाचने को कहा- रम्भा ने उस गुच्छे को फेंक दिया, पर उर्वशी ने उस गुच्छे के साथ ही पूरा नृत्य किया। इस निर्णय से प्रसन्न होकर राजा इंद्र ने विक्रमादित्य को 32 बोलने वाली मूर्तियाँ भेंट की। ये मूर्तियाँ अभिशप्त थी। इनका श्राप किसी चक्रवर्ती राजा के न्याय से ही कट सकता था। इन 32 मूर्तियों के नाम थे- रत्न मंजरी, चिचलेखा, चन्द्रकला, कामकुदंला, लीलावती, त्रिलोचन, पद्मावती, कात्रिमती, सुनैना, सुन्दरवती, सत्यवती, विध्यति, तारावती, रूपरेखा, ज्ञानवती, चन्द्रज्योति, अनुरोद्यवती, धर्मवती, करूणावती, त्रिनेत्र, मृगनयनी, वैदेही, मानवती, जयलक्ष्मी, कौशल्या, रानी रूपमती आदि थे। इन प्रतिमाओं की सुन्दरता का वर्णन समस्त ब्रह्माण्ड में विख्यात था।

चन्द्रगुप्त के अभिलेखों व मुद्राओं से उसके अनेक नामों तथा विरूदों के विषय में पता चलता है, उसकी मुद्राओं में उसे देवश्री, विक्रम, विक्रमादित्य, सिंह विक्रम, सिंहचन्द्र, परम भागवत, अजितविक्रम, विक्रमांक, अप्रतिरथ आदि विरूदों से अलंकृत कहा गया है। सांची अभिलेख में उसे देवराज व वाकाटक अभिलेखों में देवगुप्त कहा गया है।

राजा विक्रमादित्य की गाथाएँ संस्कृत के साथ कई अन्य भाषाओं की कहानियों में भी देखने मिलते हैं। उनके नाम कई महागाथाओं और कई ऐतिहासिक मीनारों में देखने मिलते है, जिनका ऐतिहासिक विवरण तक नहीं मिल पाता है। इन कहानियों में 'विक्रम बेताल' और 'सिंहासन बत्तीसी' की कहानियाँ अति रोचक, महत्त्वपूर्ण और ज्ञानवर्धक हैं, इन कहानियों का मूल सरोकार न्याय की स्थापना से था। बेताल पच्चीसी में कुल 25 कहानियाँ है।

ऐसा माना जाता है कि राजा विक्रमादित्य कलयुग के आरम्भ में कैलाश की ओर से पृथ्वी पर आये थे, उन्होंने महान साधुओं का एक दल बनाया, जो पुराण और उप पुराण का पाठ किया करते थे। इन साधुओं में गोरखनाथ, भर्तृहरि, लोमहर्सक, शौनक आदि प्रमुख थे। इस तरह न्यायप्रिय राजा विक्रमादित्य ने अपने पराक्रम से लोगों की रक्षा भी की और सदा धर्म स्थापना के कार्य में लगे रहे।

विक्रमादित्य का परिवार

पिता - गर्दभिल्ल, गन्धर्वसेन, गर्दभवेश, महेन्द्रादित्य
माता - सौम्या दर्शना, वीरमती, मदनरेखा
बहन - मैनावती
भाई - शंख, भर्तृहरि, सहित
पत्नियाँ - मलयावती, मदनलेखा, पद्मिनी, चेल्ल चिल्लमहादेवी
पुत्रियाँ - प्रियंगुमंजरी या विद्योत्मा, वसुन्धरा
पुत्र - विक्रमचरित्र या विक्रमसेन और विनयपाल
भानजा - गोपीचंद
मित्र - भट्टमात्र
वंशनाम - गर्दभिल्ल अथवा प्रसर
पुरोहित - त्रिविकम, वसुमित्र
मंत्री - भट्टि, बहिसिन्धू
सेनापति - विक्रमशक्ति, चन्द्र

विक्रमादित्य के नौ रत्न के बारे में विशेष चर्चाएँ होती हैं- विक्रमादित्य के रत्नों में बेताल भट्ट के नामोल्लेख से आश्चर्य होता है कि एक व्यक्ति का नाम बेताल भट्ट अर्थात् भूत-प्रेत के पंडित कैसे हो गया? इनका यथार्थ नाम यही था या अन्य कुछ विदित नहीं हो पाया है। भूत-प्रेतादि की रोमांचित कथाओं के मध्य बेताल भट्ट की ऐतिहासिकता प्रच्छन्न हो गई है।

आयुर्वेद साहित्य में प्रथम धन्वंतरि आदि माने जाते हैं। इतिहास में दो धन्वंतरियों का वर्णन आता है। प्रथम वाराणसी के क्षत्रिय राजा दिवोदास और द्वितीय वैद्य परिवार के धन्वंतरि। दोनों ने ही प्रजा को अपनी वैद्यक चिकित्सा से लाभान्वित किया। भावमिश्र का कथन है कि सुश्रुत के शिक्षक धन्वंतरि शल्य चिकित्सा के विशेषज्ञ थे। सुश्रुत गुप्तकाल से सम्बन्धित थे।

विक्रम की सभा का द्वितीय रत्न क्षपणक के नाम से कहा गया है। हिन्दू लोग जैन साधुओं के लिए क्षपणक नाम का प्रयोग करते थे। दिगम्बर जैन साधु नग्न क्षपणक कहे जाते थे। मुद्राराक्षस में भी क्षपणक के वेश में गुप्तचरों की स्थिति कही गई है। महाक्षपणक और क्षपणक लेख में श्री परशुराम कृष्ण गोड़े ने अनेकार्थ ध्वनिमंजरी नामक कोश के रचयिता को क्षपणक माना है। इस ग्रंथ का समय 800 से 900 ईस्वी माना जाता है।

राजशेखर की काव्यमीमांसा के अनुसार अमरसिंह ने उज्जयिनी में काव्यकार परीक्षा उत्तीर्ण की थी। संस्कृत का सर्वप्रथम कोश अमरसिंह का नाम लिंगानुशासन है, जो उपलब्ध है तथा 'अमरकोश' के नाम से प्रसिद्ध है। 'अमरकोश' में कालिदास के नाम का उल्लेख आता है। मंगलाचरण में बुद्धदेव की प्रार्थना है और कोश में बौद्ध शब्द विशेषकर महायान सम्प्रदाय के पाए जाते हैं। अतएव यह निश्चित है कि कोश की रचना कालिदास और बुद्धकाल के बाद हुई होगी। अमरकोश पर 50 टीकाएँ उपलब्ध हैं। यही उसकी महत्ता का प्रमाण है। अमरकोश से अनेक वैदिक शब्दों का अर्थ भी स्पष्ट हुआ है।

नवरत्नों की गणना में शंकु का नाम उल्लेखनीय है। 'ज्योतिर्विदाभरण' के अतिरिक्त शंकु का उल्लेख अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। प्रकीणज् पद्यों में शंकु का उल्लेख शबर स्वामी के पुत्र के रूप में हुआ है। शबर स्वामी की क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण और शूद्र जाति की एक-एक पत्नी थी। उनकी क्षत्रिय पत्नी से वराहमिहिर, वैश्य पत्नी से भर्तृहरि और विक्रमादित्य ब्राह्मण पत्नी से हरीशचन्द्र वैद्य और शंकु तथा शूद्र पत्नी से अमरसिंह का जन्म हुआ। शबर स्वामी शबरभाष्य के रचयिता थे।

घटकर्पर के विषय में भी अद्यावधि अल्प सामग्री उपलब्ध है। इनका यह नाम क्यों पड़ा, यह चिंतन का विषय है। इनके विषय में एक किंवदंती प्रचलित है। कहा जाता है कि कालिदास के सहवास से ये कवि बन गए थे। इनकी यह प्रतिज्ञा थी कि जो कवि मुझे यमक रचना में पराजित कर देगा, उसके घर घड़े के टुकड़े से पानी भरूँगा।

महाकवि कालिदास विक्रमादित्य की सभा के प्रमुख रत्न माने जाते हैं। प्राय: समस्त प्राचीन मनीषियों ने कालिदास की अंत:करण से अर्चना की है। कालिदास का समय अद्यावधि विद्वानों में विवाद का विषय बना है। दीर्घकाल के विमर्श के पश्चात् इस सम्बन्ध में दो ही मत शेष हैं, जिनमें प्रथम मत है प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व का तथा द्वितीय मत है चतुर्थ शताब्दी ईस्वी सन् का। प्रथम शती के पक्ष में विद्वानों का बहुमत है।

पंडित सूर्य नारायण व्यास के अनुसार विक्रम की सभा के रत्न आदि वराहमिहिर थे। ज्योतिष के ज्ञाता थे। वृद्ध वराहमिहिर के रूप में इनका उल्लेख मिलता है। वृद्ध वराहमिहिर विषयक सामग्री अद्यावधि काल के गर्त में छिपी है। वृहत्संहिता, वृहज्जातक आदि ग्रंथों के कर्त्ता वराहमिहिर गुप्त युग के थे। ऐसा वे मानते हैं।

वररुचि ने पत्रकौमुदी नामक काव्य की रचना की। पत्रकौमुदी काव्य के आरम्भ में उन्होंने लिखा था कि विक्रमादित्य के आदेश से ही वररुचि ने पत्रकौमुदी काव्य की रचना की। इन्होंने विद्यासुंदर नामक एक अन्य काव्य भी लिखा है। इसकी रचना भी उन्होंने विक्रमादित्य के आदेश से की थी।

1. धन्वन्तरि – वैद्य और औषधिविज्ञान का अविष्कार किया।
2. क्षणपक – ये कोषकार थे, इन्होंने गणित विषय पर काम किया।
3. अमरसिंह – कोष (डिक्शनरी) का जनक माना जाता है, इन्होंने शब्द ध्वनि पर काम किया।
4. शंकु – नीति शास्त्र व रसाचार्य थे।
5. बेताल भट्ट–युद्ध कौशल में महारथी थे, साथ ही सीमावर्ती सुरक्षा के कारण इन्हें द्वारपाल भी कहा गया था।
6. घटकर्पर – साहित्य के विद्वान रहे, इन्होंने नई शैली का निर्माण किया।

7. कालिदास- महान कवि रहे, जिन्होंने परपंरागत काव्य की अवधारणा को छोड़ नवीन काव्य का सृजन किया, जो अभी भी श्रेष्ठ माना जाता है।

8. वराहमिहिर –ज्योतिषविदों में अग्रणी माने गये। उन्होंने ही काल गणना, हवाओं की दिशा, पशुधन की प्रवृत्ति, वृक्षों से भूजल का आकलन आदि विषयों की खोज की।

9. वररुचि - व्याकरण के विद्वान व कवियों में श्रेष्ठ शास्त्रीय संगीत के जानकार।

भर्तृहरि की गुफा

उज्जैन में भरथरी की गुफा स्थित है, इसके सम्बन्ध में यह माना जाता है कि यहाँ भरथरी ने तपस्या की थी। यह गुफा शहर के एक सुनसान इलाके में है। जब हम इस गुफा के अन्दर जाते हैं, तो सांस लेने में भी कठिनाई महसूस होती है। यहाँ पर एक गुफा और है, जो पहली गुफा से छोटी है। यह गोपीचंद की गुफा है जो कि भरथरी का भान्जा था।

विक्रमादित्य के इतिहास को बाद के शासकों ने जान-बूझकर तोड़ा, तथ्यों को मिटाया और भ्रमित किया, और उसे एक मिथकीय चरित्र बनाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी, क्योंकि विक्रमादित्य उस काल में महान व्यक्तित्व और शक्ति का प्रतीक थे दरअसल विक्रमादित्य का शासन, अरब और मिस्र तक फैला था और धरती के लोग उनके नाम से परिचित थे।

विक्रमादित्य भारत की प्राचीन नगरी उज्जयिनी के राज सिंहासन पर बैठे। विक्रमादित्य अपने ज्ञान, वीरता, उदारशीलता के लिए प्रसिद्ध थे, जिनके दरबार में नवरत्न रहते थे, कहा जाता है कि विक्रमादित्य बड़े पराक्रमी थे और उन्होंने शकों को परास्त किया था।

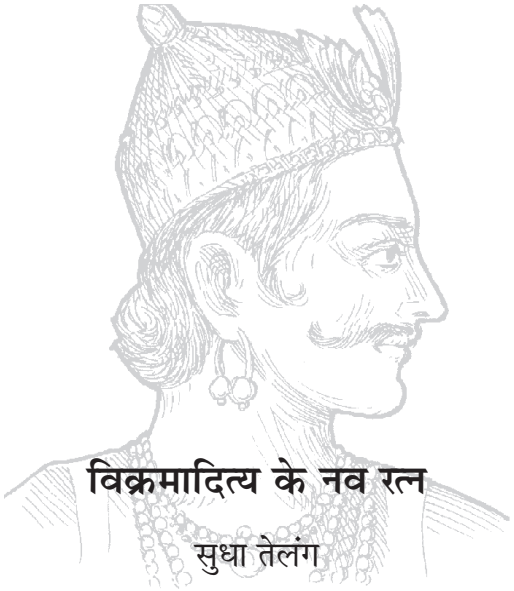

विक्रमादित्य के नव रत्न

सुधा तेलंग

उज्जैन के राजा विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय अपनी वीरता, साहस, ज्ञान, दानशीलता तथा न्याय के लिये आज भी प्रसिद्ध और लोकप्रिय हैं। गुप्त कालीन शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की। चन्द्रगुप्त की राजधानी पाटलीपुत्र थी। दूसरी राजधानी उज्जैन बनी। विक्रमादित्य एक महत्वाकांक्षी व वीर राजा थे। महान विजेता के साथ कुशल प्रशासक भी थे। उनकी वीरता के व्याख्यान महरौली स्थित लौह स्तम्भ पर लिखी चार श्लोकों वाली उत्कीर्ण प्रशस्ति, सैकड़ों वर्षों से आंधी, तूफान, धूप, वर्षा झेलकर आज भी चकवर्ती सम्राट विक्रमादित्य के जीवन की शौर्य गाथा को प्रगट कर रही है।

भविष्य पुराण के अनुसार भगवान शिव ने ही विक्रमादित्य को धरती पर भेजा। पार्वती ने बेताल को उनकी सुरक्षा के लिये सलाहकार बना कर भेजा। विक्रमादित्य ने अश्वमेघ यज्ञ करवाया। जहाँ-जहाँ उनका अश्व पहुँचा, वहाँ-वहाँ उनका साम्राज्य हो गया। पश्चिम में सिन्धु नदी तक, उत्तर में बद्रीनाथ, पूर्व में कपिल और दक्षिण में रामेश्वर तक राज्य फैल गया। उन्होंने चार अग्नि वंशी राजाओं की पुत्रियों से विवाह किया। भर्तृहरि व भट्टि उनके भाई थे। बड़े भाई भर्तृहरि तो राज-पाट छोड़कर योगी बन गये ।

विक्रमादित्य एक सर्वधर्म सहिष्णु, उदारमना व न्याय प्रिय राजा थे। कहा जाता है कि वे अपने बत्तीस पुतलियों वाले सिंहासन पर बैठकर न्याय करते थे। कुलदेवी हरसिद्धि माता न्याय करने में उनकी सहायता करती थी। विक्रमचरित में विक्रमादित्य को जन सम्राट कहा गया है, क्योंकि वे प्रजाजन के बीच बेहद लोकप्रिय थे। कहा जाता है कि वे प्रतिदिन रात को वेश बदलकर प्रजा का हाल तथा उनकी समस्याओं का पता लगाने जाते थे-

राजा सुप्तेषु जागृति, राजा पालयति प्रजा:।

अर्थात् राजा सबके सोने पर भी जागता है। प्रजा पालन करता है। विक्रमादित्य के बारे में जनश्रुति है–

न स देशो न स ग्रामो,न स लोको न स सभा।
न तन्नक्तम् दिवं यत्र विक्रमार्को न गीतये।

अर्थात् ऐसी कोई सभा, ग्राम, देश या लोक नहीं था, जहाँ दिन–रात विक्रमादित्य के कीर्ति गान नहीं गाये जाते हों।

विक्रमादित्य के शासन काल 375 से 413 ई. को भारतीय इतिहास का स्वर्णिम काल कहा जाता है। विक्रमादित्य का साम्राज्य विस्तृत था। बंगाल से लेकर उत्तर–पश्चिम व सुदूर अरब सागर तक के समस्त प्रदेश शामिल थे, इसीलिये विक्रमादित्य चक्रवर्ती कहलाये। विक्रमादित्य भारतीय राजाओं में पुरातन और नूतन आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं। विक्रम ने राम राज्य से प्रेरणा ली और लोक कल्याणकारी भावनाओं के साथ आगे बढ़े। उनके काल की आर्थिक सम्पन्नता प्रचुर स्वर्ण मुद्राओं से आंकी जा सकती है। कहा जाता है कि वे अपने बत्तीस पुतलियों वाले सिंहासन पर बैठकर न्याय करते थे। कुलदेवी हरसिद्धि माता न्याय करने में उनकी सहायता करती थी ।

चीनी यात्री फाह्यान ने उनकी उत्तम शासन व्यवस्था का वर्णन किया है। वे धर्म व नीति के अनुशासन को मानते थे। आज से संभवत: 2200 वर्ष पूर्व के विक्रमादित्य के शासन काल में सुशासन का यह मूल मंत्र था। अपने राज्य के विकास तथा कल्याण को देखते हुये विक्रमादित्य विदेश नीति के भी कुशलज्ञाता थे। तभी तो उज्जियिनी का रोम से व्यापारिक सम्बन्ध था। विक्रमादित्य के द्वारा शकों को पराजित करने का प्रसंग उनकी वीरता के साथ उदारता के लिये भी समूचे विश्व में प्रसिद्ध है। सम्राट विक्रम के सुशासन का प्रत्यक्ष प्रमाण का वर्णन आता है। ज्योतिर्विदाभरण ग्रन्थ में विक्रम की उदारता को प्रगट करने का प्रंसग है–

यो रूमदेशाधिपतिं शकेश्वरं जित्वा, गृहीत्वोज्जयनिं महाहवे।

अर्थात् विक्रम ने रोम देश के अधिपति शक राजा को पराजित कर बंदी बनाने के बाद उज्जैन में घुमाकर मुक्त कर दिया। ये घटना दर्शाती है कि वे एक उदारमना शासक थे ।

विक्रमादित्य वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, वहीं उनका प्रमुख सचिव वीरसेन शैवधर्म को और सेनापति बौद्ध धर्म को मानता था। विक्रमादित्य एक सर्वधर्म सहिष्णु, उदारमना राजा थे। कल्हण द्वारा रचित राजतरंगिणी व मेरूतुंगाचार्य कृत प्रबंध चिन्तामणि में विक्रमादित्य को धार्मिक सहिष्णु बताया गया है। वे सभी धर्मों का समान रूप से आदर करते थे, इसी सर्वधर्म भाव के कारण उनका शासन धर्मप्राण होते हुये भी धर्म निरपेक्ष था। वे चारों धर्मों में ही नहीं, अपितु चारों वर्णों में भी समभाव, समरसता रखने का प्रयास करते थे। उनके राज्य में सभी धर्मों की सहायता के लिये हमेशा दरवाजे खुले रहते थे। विक्रमादित्य जैन मन्दिरों के निर्माण के लिये अपार सहयोग राशि देते थे।

विक्रमादित्य की शक विजय के उपलक्ष्य में चलाये गये विक्रम संवत् का उल्लेख कथासरित्सागर में भी आता है। उनकी महानता व पराक्रम को देखते हुये उनके काल को विक्रम काल नाम दिया गया । इस्लाम के उद्भव के पूर्व ईसा से 58 वर्ष पूर्व विक्रम संवत् की शुरुआत हुई, जिसे आज भी उज्जैन में काल गणना के लिये प्रयोग किया जाता है।

किंवदन्तियों में विक्रमादित्य और शनि की गाथाएँ आती हैं। कहा जाता है कि वे अपने बत्तीस पुतलियों वाले सिंहासन पर बैठकर न्याय करते थे। सिंहासन बत्तीसी भी बेताल पच्चीसी या बेतालपंचविंशति की तरह बहुत लोकप्रिय हुआ। लोक गाथाओं, जनश्रुतियों, अनुश्रुतियों, क्षेत्रीय भाषा की लोक कथाओं तथा संस्कृत कथाओं से विक्रमादित्य का नाम जुड़ा है। विक्रमादित्य के साहस, शौर्य, न्यायप्रियता, उदारता और विद्वता को आधार बनाकर रचित बेताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी, कथा सरित्सागर की रोचक कथाएँ आज भी बच्चों के साथ बुजुर्गों में भी सदियों से लोकप्रिय हैं। इन पर कामिक्स के साथ कार्टून फिल्मों का निर्माण भी हो चुका है। ये कथाएँ रोचक व मनोरजंक होने के साथ ज्ञानवर्द्धक, प्रेरक है। इनका मूल लक्ष्य अन्याय के खिलाफ न्याय की स्थापना है।

वृहद्कथा में उल्लेख आता है कि इन्द्र भगवान ने प्रसन्न होकर बोलने वाली 32 पुतलियों, मूर्तियों वाला अद्भुत सिंहासन राजा विक्रम को पुरस्कार स्वरूप भेंट में दिया । वे पुतलियों अभिशप्त थी और उनका श्राप किसी राजा के न्याय से ही दूर हो सकता था।

बेताल पच्चीसी की कहानियाँ भारत की सबसे लोकप्रिय कथाओं में से हैं। इनका स्त्रोत राजा सातवाहन के मंत्री 'गुणाढ्य' द्वारा रचित' बड्डकथा' (संस्कृत: बृहत्कथा) नामक ग्रन्थ को दिया जाता है, जिसकी रचना ई. पूर्व 495 में हुई थी। कहा जाता है कि यह ग्रन्थ प्राचीन प्राकृत में लिखा गया था और इसमें 7 लाख छंद थे। पर आज इसका कोई भी मूल अंश प्राप्त नहीं है। काश्मीर के कवि सोमदेव ने इसको फिर से संस्कृत में लिखा और कथासरित्सागर नाम दिया। बड्डकथा की अधिकतम कहानियों को कथा सरित्सागर में संकलित कर दिया जाने के कारण ये आज भी हमारे पास हैं।

बेताल पन्चविन्शति यानी बेताल पच्चीसी कथा सरित्सागर का ही एक भाग है। समय के साथ इन कथाओं की प्रसिद्धि अनेक देशों में पहुँची और इन कथाओं का बहुत सी भाषाओं में अनुवाद हुआ। बेताल के द्वारा सुनाई गई ये रोचक कहानियाँ सिर्फ लोक अनुरंजन, मनोरंजन के लिए ही नहीं हैं, बल्कि इनमें अनेक गूढ़ अर्थ छिपे हैं। क्या सही है और क्या गलत, इसको यदि हम ठीक से समझ लें तो सभी प्रशासक राजा विक्रम की तरह न्याय प्रिय बन सकेंगे और छल तथा द्वेश छोड़कर, कर्म और धर्म की राह पर चल सकेंगे। इस प्रकार ये कहानियाँ न्याय, राजनीति और विषम परिस्थितियों में सही निर्णय लेने की क्षमता का विकास करती हैं। हमारा मार्ग दर्शन करती हैं।

बेताल पच्चीसी पच्चीस कथाओं से युक्त एक कथा ग्रन्थ है। इसके रचयिता बेताल भट्ट बताये जाते हैं, जो न्याय के लिये प्रसिद्ध राजा विक्रम के नौ रत्नों में से एक थे। ये कथाएँ राजा विक्रम की न्याय-शक्ति का बोध कराती हैं। उनके सुशासन को बताती हैं। विशाल वट वृक्ष के नीचे बेताल साधना द्वारा बेताल विक्रम को प्रतिदिन एक कहानी सुनाता है और अन्त में राजा से ऐसा प्रश्न कर देता है कि राजा को उसका उत्तर देना ही पड़ता है। उसने शर्त लगा रखी है कि यदि बीच में राजा बोलेगा तो वह उससे रूठकर फिर से पेड़ पर जा लटकेगा। लेकिन यह जानते हुए भी प्रश्न पूछने पर राजा से चुप नहीं रहा जाता।

सिंहासन बत्तीसी

एक लोक कथा संकलन है। प्रजावत्सल, जननायक, प्रयोगवादी एवं दूरदर्शी महाराज विक्रमादित्य भारतीय लोककथाओं के एक बहुत ही लोकप्रिय पात्र रहे हैं। प्राचीनकाल से ही उनके गुणों का व्याख्यान करती कथाओं की बहुत ही समृद्ध परम्परा रही है। सिंहासन बत्तीसी भी 32 कथाओं का संग्रह है, जिनमें 32 पुतलियाँ विक्रमादित्य के अलग-अलग गुणों का कथा के रूप में वर्णन करती हैं।

सिंहासन बत्तीसी मूलत: संस्कृत की रचना सिंहासनद्वात्रिंशति का हिन्दी रूपांतरण है, जिसे द्वात्रिंशत्पुत्तलिका के नाम से भी जाना जाता है। संस्कृत में भी इसके मुख्यत: दो संस्करण हैं, उत्तरी संस्करण 'सिंहासन द्वात्रिंशति' के नाम से तथा दक्षिणी संस्करण विक्रमचरित के नाम से उपलब्ध है। पहले के रचियता क्षेमेन्द्र मुनि कहे जाते हैं। बंगाल में वररुचि के द्वारा प्रस्तुत संस्करण भी इसी के समकक्ष माना जाता है। इसका दक्षिणी रूप अधिक लोकप्रिय हुआ। सिंहासन बत्तीसी भी बेताल पच्चीसी या बेताल पंचविंषति की भाँति बहुत लोकप्रिय हुआ। लोकभाषाओं में इसके अनुवाद होते रहे और पौराणिक कथाओं की तरह भारतीय लोक जन में वाचिक, मौखिक परम्परा के रूप में आज भी लोकप्रिय हैं। इन कथाओं की रचना बेताल पंचविंशति या बेताल पच्चीसी के बाद हुई, पर निश्चित रूप से इनके रचनाकाल के बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता है। इतना लगभग तय है कि इनकी रचना धारा के राजा भोज के समय में नहीं हुई। चूंकि प्रत्येक कथा राजा भोज का उल्लेख करती है, अत: इसका रचना काल 11वीं शताब्दी के बाद होगा।

सिंहासन बत्तीसी में एक सिंहासन में लगी 32 पुतलियों के मुख से 32 कथाएँ कही गई हैं। राजा भोज को पता चलता है कि साधारण सा अनपढ़ चरवाहा चन्द्रभान अपनी न्याय प्रियता

के लिये जाना जाता है। ये सिंहासन एक मिट्टी के टीले में दबा हुआ मिलता है व पुश्तैनी रूप से उनके ही राज्य के कुम्हारों की गायें-भैसे तथा बकरियाँ चराता है। जब राजाभोज ने जांच कराई तो पता चला कि वह चरवाहा सारे निर्णय एक टीले पर बैठकर करता है।

राजा भोज की जिज्ञासा बढ़ी और उन्होंने खुद वेश बदलकर उस चरवाहे को एक जटिल मामले में फैसला करते देखा। उसके फैसले और आत्मविश्वास से भोज इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने उससे उसकी अद्‌वितीय प्रतिभा के बारे में पूछा। तब चरवाहे ने बताया कि उसमें यह प्रेरणा उसे टीले पर बैठने के बाद मिलती है।

राजा भोज ने सलाह मशबरा करके उस टीले की खुदाई करवाई। मिट्टी के नीचे एक राज सिंहासन दबा हुआ मिला। जिसे देखकर सब अंचभित हुये। सिंहासन में बत्तीस पुतलियाँ लगी थी तथा कीमती रत्न जड़े हुए थे। जब धूल मिट्टी को हटाया गया तो सिंहासन की सुन्दरता, कारीगरी का सौन्दर्य देखते बनता था। उसे उठाकर महल लाया गया तथा शुभ मुहूर्त में राजा का बैठना निश्चित किया गया, जैसे ही राजा भोज ने सिंहासन पर बैठने का प्रयत्न किया, सारी पुतलियाँ राजा का उपहास करने लगीं। हँसने का कारण पूछने पर सारी पुतलियाँ एक-एक करके विक्रमादित्य की कहानी सुनाने लगीं तथा बोली कि यह सिंहासन जो कि राजा विक्रमादित्य का है। इस पर बैठने वाला व्यक्ति भी उनकी तरह ही योग्य, पराक्रमी, दानवीर, उदार, विद्वान तथा न्यायप्रिय होना चाहिए। अंत में राजा भोज की योग्यता-विद्वता की परख करने के बाद ही पुतलियाँ उन्हें विक्रम के सिंहासन में बैठने की अनुमति देती हैं।

ये कथाएँ आज भी इतनी लोकप्रिय हैं कि कई संकलन कर्त्ताओं ने इन्हें अपने तरीके से रोचकता के साथ प्रस्तुत किया हैं।

सम्राट विक्रमादित्य एक विद्वान व शास्त्रज्ञ थे। संस्कृतज्ञ थे। ऐसे में निश्चित ही उन्होंने वेद, पुराण, श्रीमद्‌भागवत, महाभारत तथा वाल्मिकी रामायण जैसे ग्रन्थों से ज्ञान प्राप्त किया होगा। उस समय उज्जैन खगोल, गणित, चिकित्सा, ज्योतिष विद्या, कला, साहित्य तथा संस्कृति का केन्द्र था। दूर-दूर से यहाँ विद्वान अपना ज्ञान बांटने आते रहते थे। विक्रमादित्य स्वयं एक विद्वान, साहित्य व कला के संरक्षक थे। सम्राट विक्रम योग्य जनों को सम्मान, शिक्षा-प्रसार तथा उद्योग का विस्तार, सचिव, अमात्य गणों तथा दरबार के नौ रत्नों से सलाह लेकर ही अपने राज्य में सुशासन, शान्ति कायम रखते हुये अपनी प्रजाजनों का विश्वास जीतते हुये समरसता की धारा प्रवाहित करते थे। इसी कारण वो समूचे भारत में लोकप्रिय हुये। उनकी दूरदर्शिता, न्यायशीलता से ही उनके शासन काल में उज्जयिनी राज्य ऐश्वर्य से युक्त तथा समृद्धिशाली राज्य बना।

विक्रमादित्य विद्वानों का सम्मान करते थे। उनके दरबार में नौ विषय विशेषज्ञ विद्वानों की मण्डली थी। नौ रत्न राजा के दरबार में उपस्थित असाधारण व्यक्तियों का समूह जो शाही दरबार में अपने विशिष्ट क्षेत्रों में राजा की सलाह के अनुसार उनकी सहायता करते थे। वे सभी अपनी-अपनी कला, विद्या, गुणों में पारंगत और निपुण होते थे। विक्रमादित्य को अपने नौ रत्नों पर गर्व था तो कालिदास, वराहमिहिर आदि नौ रत्नों को भी अपने आश्रयदाता सम्राट की गुणग्राह्यता, उदारता व उत्तम राज्य व्यवस्था पर गर्व था। विक्रमादित्य के दरबार में नौ रत्न थे, जो आज भी प्रसिद्ध व लोकप्रिय हैं-

धन्वन्तरिः क्षपणकोअमरसिंहः,
शंकु वेतालभट्ट घटकर्पर कालिदासाः।।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेस्सभायां,
रत्नानां वै वररूचिर्नव विक्रमस्य।

अर्थात् धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, बेताल भट्ट, घटकर्पर, कालिदास, वराहमिहिर और वररूचि विक्रमादित्य राजा की सभा में नौ रत्न प्रसिद्ध हुये ।

विक्रमादित्य के दरबार में आयुर्वेदाचार्य धन्वन्तरी एक महान चिकित्सक थे। उन्हें विश्व का पहला चिकित्सक माना जाता है। आयुर्वेद चिकित्सा के देवता के रूप में उन्हें पूजा जाता है।

क्षपणक ज्योतिष शास्त्र के क्षेत्र में निपुण थे। ज्योतिष फलित विद्या का गहन अध्ययन था, द्वात्रिंशतीकास नामक ग्रन्थ की रचना की। कहा जाता है कि ये बौद्ध धर्मानुयायी थे ।

विक्रमादित्य के नौ रत्नों में अमरसिंह संस्कृत भाषाविज्ञानी होने के साथ एक प्रखर कवि भी थे। उनकी रचना अमरकोष एक प्रसिद्ध शब्द कोश है, जिसमें संस्कृत के समानार्थक शब्दों का संग्रह है। इसे त्रिकंडा भी कहा जाता है। क्योंकि इसके तीन भाग हैं, इसमें दस हजार शब्द हैं।

शंकु भूगोल का ज्ञाता व वास्तुकला में माहिर था। भू विज्ञान के क्षेत्र में शंकु ने अपनी पहचान बनाई।

बेतालभट्ट एक प्रसिद्ध धमाचार्य तथा जादूगर थे। काला जादू और तांत्रिक विद्या में निपुण बेताल भट्ट ने सोलह छन्दों में नीति प्रदीप की रचना की। घटकर्पर वास्तुकला और मूर्तिकला के विशेषज्ञ थे।

वररुचि एक प्रकाण्ड संस्कृत विद्वान के साथ व्याकरणाचार्य भी थे। वररूचि को कात्यायन के अलावा प्राकृत भाषा का प्रथम व्याकरण ग्रन्थ का रचियता माना जाता है। वररुचि वासवदत्ता के रचयिता सुबन्धु के मामा थे तथा सम्राट अशोक के परवर्ती थे।

वराहमिहिर के पिता आदित्य दास उज्जैन के निकट कपित्थ गाँव के निवासी थे। वे एक प्रसिद्ध गणितज्ञ तथा ज्योतिषाचार्य थे । बालक मिहिर बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि और जिज्ञासु प्रवृत्ति के थे। पिता से गणित तथा ज्योतिष का ज्ञान प्राप्त कर गहन शोध किया। इनका लक्ष्य विज्ञान और गणित को जनहित से जोड़ना था। युवा मिहिर को पटना में खगोलज्ञ, गणितज्ञ आर्यभट्ट से मिलकर उनसे अपार प्रेरणा मिली। वराहमिहिर एक महान खगोलविज्ञानी, गणितज्ञ और ज्योतिषी थे। उन्होंने सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी के बारे में नवीन खोज कर अनेक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

वराहमिहिर की विद्वता के बारे में जब विक्रमादित्य को पता चला तो वे ससम्मान अपने दरबार में ले आये । कहा जाता है कि वराहमिहिर ने राजा के बेटे की मृत्यु की भविष्यवाणी भी की थी। इन्द्रप्रस्थ महरौली में लौह स्तम्भ के अलावा समय मापक यंत्र, वेधशाला के निर्माण में वराहमिहिर का ही योगदान माना जाता है। वराहमिहिर ने वृहद्संहिता, पंचसिद्धांतिका तथा वृहद्जावक ग्रन्थों की रचना की। वृहद्संहिता में वास्तुशास्त्र, भवननिर्माण कला व वायु मण्डल तथा वृक्ष आयुर्वेद विषयों पर विस्तार से लिखा गया है। पंचसिद्धांतिका में पाँच सिद्धांतों पोलिश सिद्धांत, रोमन, वशिष्ठ, सूर्य तथा पितामह सिद्धांतों का वर्णन है। वराहमिहिर ज्योतिष को अथाह सागर मानते थे। उनकी मृत्यु 587 में हुई ऐसा माना जाता है।

संस्कृत के विद्वान कालिदास सम्राट विक्रमादित्य के दरबार के नव रत्नों में दैदीप्यमान मणि के समान थे। कालिदास के बारे में कहा जाता है कि वे बचपन में एक मन्दबुद्धि बालक थे। युवा होने पर उनका विवाह राजकुमारी विद्योत्तमा से हुआ जो एक विदुषी थी। विद्योत्तमा को अपनी विद्वता पर गर्व था। उसने विवाह के लिये शर्त रखी कि जो भी विद्वान उसे शास्त्रार्थ में पराजित कर देगा, वो उसी से विवाह करेगी। शास्त्रार्थ में उसने जब सभी विद्वानों को पराजित कर दिया तो विद्वानों ने जान-बूझकर कालिदास से विद्योत्तमा का शास्त्रार्थ करवाया। मौन शब्दावली में गूढ़ प्रश्न पूछने पर कालिदास ने मौन संकेत से उत्तर दिये ।

विवाह के बाद जब उसे सच्चाई पता चली तो कालिदास को भला-बुरा कहा। कालिदास ने काली देवी की आराधना की। देवी ने प्रसन्न होकर उन्हें ज्ञानी बना दिया। वे घर आकर बोले- कपाटम् उद्घाटय सुन्दरी!

विद्योत्तमा ने सोचा कि कोई विद्वान होगा, कहा- अस्ति कश्चित् वागविशेष! इसके बाद कालिदास ने अपनी पत्नी को ही अपना प्रेरक व गुरु माना।

कालिदास संस्कृत के बहुत बड़े ज्ञाता, कवि तथ नाटककार थे। कालिदास की विद्वता से प्रभावित होकर विक्रमादित्य ने अपने नौ रत्नों में उन्हें सम्मान दिया। कालिदास ने क्षिप्रा के तट पर उज्जयिनी में अपने साहित्य की सर्जना की।

उनके नाटक अभिज्ञानशाकुंतलम् का मंचन राज दरबार में ही हुआ। कालिदास के द्वारा रचित अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोवर्शीय, मालविकाग्निमित्रम् नाटक, कुमार संभवम् व रघुवंशम् महाकाव्य व ऋतुसंहार एवं मेघदूतम् गीतिकाव्य समूचे विश्व में विख्यात हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् को विश्व के श्रेष्ठ नाटकों में एक माना जाता है। इसका अनुवाद विश्व की लगभग सभी भाषाओं में हो चुका है। कालिदास की तुलना शेक्सपियर से की जाती है। कालिदास का प्रकृति वर्णन अद्वितीय माना जाता है। प्रकृति के मानवीकरण, कल्पनाचातुर्य के साथ वे उपमा में सिद्धहस्त कवि माने जाते हैं। पौराणिक कथाओं व दर्शन पर आधारित काव्य का सृजन करते हुये कालिदास ने राष्ट्रीय चेतना को स्वर दिया ।

आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी द्वारा प्रकाशित चौमासा के विशेषांक

चौमासा अंक - 57	-	वृक्ष
चौमासा अंक - 71	-	जल
चौमासा अंक - 74	-	शैव, शाक्त और वैष्णव परम्पराएँ
चौमासा अंक - 77	-	लोकदेवता
चौमासा अंक - 78	-	अश्व
चौमासा अंक - 80	-	सर्प
चौमासा अंक - 84	-	राजा भोज
चौमासा संयुक्तांक - 86-87	-	प्रतीक चिन्ह
चौमासा अंक - 89	-	मेले
चौमासा अंक - 90	-	अध्येता
चौमासा अंक - 93	-	जन्म संस्कार
चौमासा अंक - 95	-	मृत्यु संस्कार
चौमासा संयुक्तांक - 98-99	-	विवाह संस्कार
चौमासा संयुक्तांक - 100-101	-	वाचिक परम्परा
चौमासा अंक - 102	-	बाँस